श्रीः

दीनानाथविरचित

सर्वसंग्रहः

हिन्दीटीकासहित

टीकाकार

पं० ज्योतिर्विभूषणश्रीबच्चूझामैथिल

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

श्रीः

दीनानाथविरचित

सर्वसंग्रहः

हिन्दीटीकासहित

टीकाकार

पं० ज्योतिर्विभ्दूषणश्रीवच्चूझामैथिल

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई - ४

संस्करण : मई २०१६, सवंत् २०७३

मूल्य : २०० रुपये मात्र ।

सर्वाधिकार-प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Bombay-400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

" गागरमें सागर ! "

उक्त वाक्य असंगत होनेपरभी ऐश्वरीय शक्तिसम्पन्न घटोद्भव (अगस्ति) आदि ऋषियोंसे समुद्रपानादि द्वारा संगत हो चुका है, आशय यह है कि शक्तिसम्पन्न पुरुषोंकी क्रियायें असंगतको संगत कर दिखाती हैं. पाठक गण ! ध्यान देकर देखे कि इस 'सर्वसंग्रह' नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता अवन्ती (उज्जयिनी) निवासी पं० दीनानाथजी हैं, पण्डितजीकी वासभूमि (उज्जयिनी) से प्रायः भारत वर्षके मनुष्यमात्र परिचित होंगे कारण कि इसी उज्जयिनी (अवन्ती) नगरमें साक्षात् परब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप नरविग्रहधारी " श्रीकृष्ण " भगवान्भी " सान्दीपनि " नामक गुरुसे चौसठ दिनमें चौंसठ कलाओंको सीखे थे । तथा गुरुशुश्रूषाकी पराकाष्ठा काष्ठ तोडकर लाने आदिसे गुरुको प्रसन्न रखते थे । आशय यह है कि इस अवन्ती नगरमें प्राचीनकालसेही बडे बडे दुर्द्धर्ष विद्वान् होते आये हैं. । एक तो साधारण तौरसे उक्त नगरके माहात्म्योंसे हरेक पुराण विभूषित हो रहा है और स्वयं महाकालभी यहाँ विराज रहे हैं जिससे उक्त नगरका " अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मुक्तिदायिकाः" इत्यादि वाक्योंद्वारा नामस्मरण मात्रसेभी संसारी मनुष्योंको जो लाभ पहुँच रहाहै सो प्रकटही है । द्वितीय इस नगरमें समय समयपर ऐसे ऐसे विद्वान् उत्पन्न होते हैं जो कि अपनी विद्वत्ताद्वारा अखिल भारतवासियोंको लाभ पहुँचाये विना नहीं रहते । अस्तु यहाँ नगरकी वा नगर निवासी विद्वानोंकी प्रशंसासे कुछ मतलब नहीं है केवल यह कहना है कि इसी उज्जयिनी नगरमें सान्दीपनी (श्रीकृष्णजीके गुरु) के कुलमें उत्पन्न होकर पं० दीनानाथजीने इस " सर्वसंग्रह" नामक ग्रन्थको रचकर जगत्को जो लाभ पहुंचाये हैं सो पाठकगण 'एक बार समस्त ग्रन्थका अवलोकन करके स्वयं समझेंगे । यह ग्रन्थ " यथा नाम तथा गुणाः " इस कहावतसे भरपूर है अर्थात् जैसा सर्वसंग्रह इसका नाम है वैसेही इसमें गुणभी हैं, कारण कि ज्योतिषशास्त्र १ मुहूर्त्त, २ जातक, ३ ताजिक, ४ गणित ५ सिद्धान्त, ६ संहिता इन छः अंगोंसे विभूषित है । जिस प्रकार शरीरके षडंग (१ मुख, २ नेत्र, ३ नाक, ४ कान, ५ हाथ, ६ पांव) से पृथक् पृथक् काम किये जाते हैं ठीक इसी तरह ज्योतिष शास्त्रके षडंगों (छहों अंगोंसे) पृथक् पृथक् (जुदे जुदे) काम किये जाते हैं । जैसे कि ,१ मुहूर्त्तग्रन्थोंद्वारा गर्भाधान

(जब गर्भमें बालक आता है तब) से लेकर श्मशानान्त पर्यंत संस्कारोंके सिवाय वस्त्रधारण आभूषणधारण यात्रा इत्यादि जो जो कर्म मनुष्य करते हैं उन सभी मुहूर्त्तका खुलासा होता है । २ जातक ग्रंथद्वारा जन्मभरके विंशोत्तर्यादि दशान्तर्दशा लाकर शुभाशुभ फलादेश घातकमारकका सम्पूर्ण विचार होता है । ३ ताजिक ग्रन्थसे केवल एक एक वर्षके वर्षप्रवेश, मासप्रवेश आदि बनाकर वर्षभरके समस्त शुभाशुभ फल कहे जाते हैं । ४ गणितग्रन्थसे अनेक प्रकारके भूमि आदिको मापना नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर करना (जो कि अंगरेजीमेंभी अलजीबरा आदि नामसे प्रसिद्ध हैं) आदि होते हैं । ५ सिद्धान्तग्रन्थ–जिसके द्वारा पञ्चांग आदि बनाये जाते हैं, सूर्यचन्द्रका ग्रहण आदि बनाये जाते हैं भूगोल खगोल लोकव्यवस्थाभी होती है । ६ संहिताग्रन्थ जिसके द्वारा संवत्का शुभाशुभ सामुद्रिक (हस्तरेखा) अंगस्फुरण (देह फरकना), स्वरोदय पल्ली (छिपकली) का गिरना, शुभाऽशुभ शकुन शरीर चिह्नद्वारा मरण होनेका ज्ञान इत्यादि होते हैं । यही क्रमसे ज्योतिषके छः अंग हैं । और इनके साधक ग्रंथ एक एक विषयके अलग अलग (जुदे जुदे) प्राचीन वसिष्ठादि महर्षि और आधुनिक वराहमिहिरादि आचार्योंद्वारा बनेहुए हैं कालका प्रभाव बडा विलक्षण है कि पूर्वकालके मनुष्य दो तीन चार शास्त्रोंको अलग अलग पढकर समाप्त करना तो सरल समझतेही थे, बल्कि कोई कोई तो षट् शास्त्रीभी हो निकलते थे आजकल कलिकालका समय ऐसा आगया कि अल्पायु और अनेक विघ्नग्रस्त होनेसे एक शास्त्रको भी जुदे जुदे ग्रन्थोंको पढकर समाप्त करनेमें हिचकने लगे । परन्तु अन्य शास्त्रोंकी अपेक्षा व्याकरण और ज्योतिष इन दो शास्त्रोंके विना जगत्का कामही नहीं चलता क्योंकि एक संकल्प जोडनेमेंभी व्याकरणका काम पडता है और ज्योतिष तो "ज्योतिषं नयनं स्मृतम्" वेदका नेत्र होनेसे आँखके मुवाफिक समस्त कार्योंमें सहायकता प्रकट करता है । इन दोनों शास्त्रोंमेंभी जब मनुष्य पारङ्गत कम होने लगे तो किसी किसी विद्वानोंकी दृष्टि इस तरफ आकर्षित हुई कि एक शास्त्रमेंभी जो जो विषय अलग अलग हैं उनमेंसे कार्योपयोगी छाँटकर अलग संग्रह करैं फिर क्या था अनेक मनुष्य ज्योतिषसार संग्रह आदि बना दिये जो इस समय प्रचलित हैं परन्तु पाठक स्वयंभी समझेंगे कि संग्रह करनाभी सहज नहीं है कारण कि प्रथम तो संग्रह करनेवालेको वह सब विषय आता हो, द्वितीय शास्त्र आने परभी संग्रह करनेका समय मिले, तृतीय चिन्ता रोग शोकादिसे रहित हो तो संग्रह कर सकता है । सो विद्वानोंका ऐसे समयमें इस प्रकारका मौका होना कैसा कठिन है सो छिपा नहीं है अतः प्रत्येक संग्रहमें त्रुटि देख सौभाग्यवश पं. दीनानाथजीकी इस तरफ दृष्टि पडी और उक्त पण्डितजीको

मौकाभी अच्छा मिल गया क्योंकि इनके पास पचासों छात्र पढ रहे थे जिससे उनके शिष्योपशिष्यकी परम्परा इस समयमेंभी मौजूद है और उक्त पण्डितजी देवभक्त और सुखीभी थे और उनमें ज्योतिषशास्त्रकी कुशलता कहाँतक रही सो ग्रन्थ देखनेसे विदितही होगी । यही महाशय इस सर्वसंग्रहको बनाकर लोकोपकारी हुए इस ग्रन्थमें पूर्वोक्त ज्योतिषमें छः अङ्गोंद्वारा साधारण जो विषय दर्शाये हैं वे सब विषय इस ग्रन्थमें यथेष्ट रूपसे विचारके साथ रक्खे गये हैं । और आधुनिक समयमें प्रश्नोत्तर करनेमें रमलकी समता और उपयोगिता समझकर एक रमल प्रकरणभी दिया है । इस ग्रन्थमें प्राचीन ग्रन्थोंका सब मतलब लेकर संक्षेप करनेके लिये अधिक श्लोकोंकी रचना आचार्य (दीनानाथ) जीने स्वयं की है और कहीं कहीं तो प्राचीनोंकाही लाघव देखकर ग्रहण कर लिया है। इस ग्रन्थमें आचार्यने पाँच प्रकरण रक्खे हैं १ मिश्राध्याय, २ देहस्वराध्याय, ३ कालस्वराध्याय. ४ रमलाध्याय और ५ मुहूर्त्ताध्याय । इसमें १ मिश्राध्यायमें गणित, सिद्धान्त, जन्म पत्र, वर्षपत्र, सामुद्रिक, अङ्गस्फुरणादि शकुन यह सब विषय १८२ श्लोकोंमें प्रस्फुट कहे गये हैं । २ देह स्वराध्यायमें स्वरज्ञान स्वरके हिसाबसे प्रश्नोत्तरकथन, स्वर बदलनेका उपाय छाया साधन हैं स्वरपरसे मरणसमयको जानना और दीर्घायु होनेका उपाय सभी दिखाये हैं ।४ कालस्वराध्यायमें पञ्चस्वर (बाल, कौमार, युवा आदि) द्वारा समस्त फलादेश दिखाये हैं । ४ रमलाध्यायमें समस्त प्रश्नोंके उत्तर रमलद्वारा किये हैं । ५ मुहूर्त्ताध्यायमें समस्त मुहूर्त्तोंको स्थान दिये हैं । अब पाठक समझ सकते हैं कि पूर्वोक्त समस्त ज्योतिषका विषय केवल एकही इस आकारके ग्रन्थमें आ जाना " गागरमें सागर " है या नहीं । यह ग्रन्थकारकी क्रियासिद्धिका फल है। यद्यपि इस ग्रन्थका निजकर्तृत्व आचार्य १७७२ शकमें बताये हैं किंतु संस्कृत संक्षेप और कठिन होनेसे कहीं शिला पृष्ठमें छपकर केवल मूलमात्र प्रकाशित हुआ सही,परंतु लोगोंको बृहत् उपकार नहीं कर सका । अकस्मात् यह ग्रन्थ घूमते फिरते मेरा आश्रयरूप, धर्मपरायण, ग्रन्थोद्धारक श्रीवेंकटेश्वराध्यक्ष श्रीमान् सेठ श्रीखेमराजश्रीकृष्णदासजीके पास आया । उक्त सेठजीने इस पुस्तकको अवलोकनार्थ मुझको अर्पण किया मैं इस पुस्तकको देखकर बहुत हृष्ट हुआ और उक्त श्रीमान्से पुस्तकोक्ति विषय सुनाया फिर क्या था धर्मपरायण ग्रन्थोद्धारकके पास आकर गुण गौरव युक्त यह ग्रन्थ सम्मानित क्यों न हो । झट श्रीमान् सेठजीके मुखसे लोकोपकारक यह शब्द निकला कि भाषाटीका बनजाय तो अनन्त लोगों उकापकार होय, मैंने स्वीकार कर लिया और भाषाटीका करना शुरू किया । यद्यपि " सर्वसंग्रह" ग्रन्थकी-टीका सर्वज्ञ मनुष्योंसे होनी चाहती थी परन्तु सर्वज्ञत्व एक परब्रह्मके

सिवाय अन्यमें होना असम्भवही है । इसलिये मैंनेभी मुहूर्त्तचिन्तामणिसे लेकर सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि पर्यन्त अध्ययन करके अनेक राजकीय परीक्षामें पास होकर ज्योतिर्विद्भूषण पदका भागी होनेसे टीका बनानेका अधिकार पाया । और टीकाको स्फुट (प्रकट) इस प्रकारसे किया है कि साधारणसे साधारण आदमी यदि इस ग्रन्थको लेकर आद्योपान्त देखाजाय तो ज्योतिषका समस्त कार्य कर सकता है । और यहभी भार यह कार्यालय उठाता है कि इस ग्रन्थद्वारा किसीकोभी (जन्मपत्र वर्षपत्र आदि बनानेके) विषयमें सन्देह उपस्थित हो तो बहुत खुलासा करके पत्रद्वाराभी बता दिया जायगा, और यह ग्रन्थ पूर्ण विद्वानोंके लियेभी बहुत उपयोगी है क्योंकि इतने विषय आजतक किसीभी एक पुस्तकमें नहीं छपा है केवल एकही पुस्तक पास रखनेसे विदेश घूमनेवाले विद्वान् समस्त कार्य कर सकते हैं । बेसी लिखना व्यर्थ है ग्रन्थ मौजूद है । अब समस्त सज्जनोंसे प्रार्थना यह है कि, यद्यपि मैंने इस पुस्तककी टीकामें विपुल श्रम किया है तथापि मनुष्यधर्मसे जो कुछ जहाँ बिगडगया हो या बुद्धि दोषसे रहा हो सो क्षमा करके केवल पत्रद्वारा सुधारनेकी सूचना देंगे तो मैं कृतार्थ होऊंगा ।

अभ्यर्थक–ज्योतिर्विद्भूषण श्रीबच्चूझा । मैथिल ।

श्रीः ।

सर्वसंग्रह--विषयानुक्रमणिका ।

विषयः	पृष्ठम्.
मंगलाचरणम्	१
अधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि	,,
सप्रार्थनाफलम्	२
अङ्कानां व्यञ्जनसंज्ञा	,,
संख्यायाः स्थानानां संज्ञा परिकर्म-चतुष्कञ्च	३
संख्याचक्रम्	४
ऊर्ध्वतिर्यग्योगचक्रम्	५
ऊर्ध्वतिर्यग्योचक्रम्	,,
द्विविधत्रैराशिककरणसूत्रम्	६
द्विविधत्रैराशिकस्योदाहरणे	७
त्रैराशिकयोर्न्यासः	,,
स्वद्वादशांशसन्ध्यांशसाहितयुगाब्दि-मानानि	,,
मनुमानं ब्रह्मणोऽहोरात्रमानञ्च	८
चतुर्दशमनुसंज्ञा	९
कल्पाद्युगाब्दानयनम्	,,
श्लोकानुसारगतमन्वादिकी वर्षसंस्था	१०
कलौ शककर्त्तारः	,,
कलियुगके छः शककर्त्ताओंके नाम-तथा वर्ष	११
श्लोकोच्चारेण पलज्ञानं भक्तिसुखो-पलब्धिश्च	,,
वासुदेवव्यूहचक्रम्	१२
रात्रौ लग्नज्ञानम्, इष्टघटीज्ञानञ्च	१३
भाद्या भध्रुवा बुधैः स्वस्वदेशीयाः कार्याः	१४
श्रीसूर्यसिद्धांतोक्ता विशेषतारकध्रुवाः	१५
क्रान्तिनतोन्नतांशज्ञानम्	,,
क्रांतिसारिणी	१७
भुजांशपरयोः साधनम्	१८
इष्टघट्युपरि तुरीययन्त्रोन्नतांशा-नयनम्	,,
यन्त्रोन्नतांशोपरीष्टज्ञानं प्राणप्रमाणं च	१९

विषयः	पृष्ठम्.
मुहूर्तकाल परिभाषा	१९
क्षेत्रपरिभाषा	२०
वर्षाणां भूदिनानि	,,
संवत्सरानयनम्	,,
संवत्सरनामानि	२१
संवत्सरचक्रम्	२२
अयनगोलदैवमानज्ञानम्	,,
सायनार्काद्दतुज्ञानम्	२३
क्षयाधिमासज्ञानम्	,,
अधिमासांतरे सावनमासादि	,,
मलमासकालज्ञानम्	२४
मासनामकरणम्	,,
पूर्णिमांतमासनक्षत्राणि	,,
पितृमनुष्यमाने	,,
मासनामानि	२५
पक्षज्ञानम्	,,
तिथ्यादिश्रवणमाहात्म्यम्	,,
तिथिनामानि	,,
चंद्रचक्रम्	२६
वारग्रहनामानि	२७
पञ्चाङ्गर्क्षोपरि सूक्ष्मर्क्षानयनम्	,,
सूक्ष्मर्क्षघटीसाधनम्	,,
सर्वर्क्षघट्यादिचक्रम्	२८
नक्षत्रनामानि	२९
योगसूर्यर्क्षयोर्ज्ञानम्	,,
योगनामानि	,,
करणनामानि	३०
करणव्यवस्था	,,
करणबोधकचक्रम्	३१
शतपदचक्रम्	,,
नक्षत्रचरणबोधकचक्रम्	३२
राशिज्ञानम्	३३
नाम्नि विचारः	,,
भाद्रज्ञानम्	,,

विषयः	पृष्ठम्.	विषयः	पृष्ठम्.
राशित्र्यवस्था	३४	भावपत्रं सर्वत्र अयनांशाः....	५९
जन्मपत्रीलेखनक्रमः	३५	नतोन्नतं विना लग्नग्रहेभ्यः सूर्यभावसाधनम्....	६०
महतीपत्रिकाकरणानुक्रमः	३६	ससन्धिसर्वभावसाधनम्	,,
ग्रहशुभाशुभत्वम्	,,	चलितभाववलयोः साधनम्....	,,
गोचरफलम्	३७	चलितस्यावश्यकम्	,,
शनेर्विशेषः	३८	सदानन्ददं रामचलितलग्नम्	६१
ग्रहशांत्यर्थं दानानि जपसंख्या दक्षिणा स्नानम्	,,	भावगतग्रहैफलानि....	,,
ग्रहाणां व्यासोक्तामंत्राः	३९	उच्चनीचे	६२
ग्रहाणां दृष्टयः	४०	ग्रहाणां मूलत्रिकोणराशयः	,,
दृष्टिचक्रम्	,,	निसर्गमैत्री	६३
दृष्टिपत्रम्	४१	राश्यधिपतिचक्रम्	६४
जन्मनि सर्वग्रहराशयो जन्मराशयस्तेभ्यः फलम्	४३	तात्कालिकमैत्री	,,
भावनामानि	,,	आभ्यां पञ्चधा मैत्री	,,
अन्यसंज्ञा	४४	सप्तवर्गसंज्ञा फलञ्च	६५
पुनः	,,	होराद्रेष्काणसप्तमांशज्ञानम्	,,
राशिशीलम्	,,	त्रिंशांशद्वादशांशज्ञानम्	६६
द्विपदादिसंज्ञा	४५	ग्रहभावविचारः	,,
द्वादश राशयः	४६	जन्मवर्षप्रश्नादौ कार्यसिद्धिज्ञानम्	,,
राशिभक्तयः	४७	षोडशयोगमूलभूतेत्थशालज्ञानम्	६७
ग्रहभक्तिः	४८	द्विधाकार्यावधिज्ञानम्	,,
ग्रहभक्तयः	४९	प्रकारान्तरेणावधिज्ञानम्	,,
नवग्रहाः	५१	केन्द्रायुर्मानज्ञानम्	६८
अवधेस्तात्कालिकग्रहसाधनम्	,,	मध्यमस्पष्टांशायुर्ज्ञानम्	,,
नक्षत्राद्ग्रहानयनम्	५२	शत्रुनीचास्तहानिः	६९
क्रान्तिपातज्ञानम्....	५३	चक्रपातार्द्धहानिः	,,
लग्नपत्रभावपत्रसारणीसाधनम्	५४	रिष्टतद्भङ्गज्ञानम्	७०
लग्नपत्रात्सूक्ष्मलग्नसाधनम्	,,	विंशोत्तर्यां विशेषः	७६
लग्नपत्रम्	५५	सप्रयोजनं निसर्गदशाज्ञानम्	७७
ज्ञातेऽङ्के समयसाधनम्	५६	सगणितफलपाकविचारछायादशाज्ञनम्	,,
लग्नपत्राद्दिनरात्रिमानसाधनम्	,,	योगिनीदशासाधनम्	७८
सषड्भमर्ककोष्ठे रात्रिमानम्	५७	अष्टयोगिनीनामानि	,,
जन्मसमयादाधानकालज्ञानम् प्रश्नचन्द्रात्प्रसवज्ञानञ्च	५८	विंशोत्तरीदशासाधनम्	७९
नतोन्नतज्ञानम्....	,,	विंशोत्तरीदशाचक्रम्	८०
नतादशमचतुर्थभावसाधनम्	,,	सूक्ष्मर्क्षादष्टोत्तरीदशाज्ञानम्	,,
		अष्टोत्तरीदशाचक्रम्	,,
		दशाभुक्तभोग्यसाधनम्	,,
		अन्तर्दशाविंशोपदशाप्राणदशासाधनम्	८१

विषयः	पृष्ठम्.
योगिनी ३६ मध्येऽन्तर्दशाः	८२
अष्टोत्तरी १०८ गजदशामध्येंऽतर्दशाः	८३
विंशोत्तरी १२० केरलीमध्येन्तर्दशाः	८४
सूर्यमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	८५
चन्द्रमध्ये सावनांतर्दशा	,,
भौममध्ये सावनां तर्दशा विदशा	८६
बुधमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	,,
शनिमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	८७
गुरुमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	,,
राहुमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	८८
शुक्रमध्ये सावनांतर्दशा विदशा	,,
वर्षप्रवेशादिसाधनम्	८९
ध्रुवस्पष्टीकरणम्	९४
ध्रुववारादेश्चालनरूपं वर्षमासदिनघटी-प्रवेशसाधनम्	,,
मुन्थानयनम्	९५
दिनचर्याफलम्	,,
समस्ताब्दफलदर्शनार्थं पञ्चाधिकारिणः	,,
त्रिभगा मेषादिवर्षलग्नात्	९६
अब ग्रहोंके बल जाननेके लिये पञ्चवर्गी	,,
इन पाँचों बलोंके आनयनप्रकार	,,
बृहत्पंचवर्गीचक्रम्	९७
द्रेष्काणो हद्दावत	९८
नवांशो द्रेष्काणवत्	,,
चत्वारिहर्षस्थानानि अत्रबलम्	,,
हीनांश पात्यांश दशा	१०३
मुग्धादशाद्दृष्टिमैत्रीसाधनम्	,,
मुग्धादशाचक्रम्	१०४
वर्षलग्नेन त्रिपताकाज्ञानम्	१०५
त्रिपताकी चक्रम्	,,
दृग्गणितैक्यवेधजबीजसंस्कारः	,,
गोलज्ञानं विनाऽपि तन्त्रकरणविदां बीजसाधनोपायः	१०६
क्षमापनम्	,,
ग्रहणसम्भवज्ञानम्	१०७
भुजशरशृङ्गोन्नतिज्ञानम्	,,
अंगुलादिबिम्बसाधनम्	१०८
ग्रासानयनम्	,,

विषयः	पृष्ठम्.
ग्रासस्पर्शमोक्षादिज्ञानम्	१०८
स्पर्शमध्यमोक्षकालज्ञानं ग्रहण-विशेषफलञ्च	१०९
उत्पातवृष्टिज्ञानम्	११०
प्रमितवृष्टिसद्योवृष्टिप्रश्नाः	,,
जलनाडीविचारः	,,
केतुचारः	१११
लम्बनानयनम्	११२
संस्कृतदर्शशरौ स्वल्पग्रासव्यवस्था	११३
ग्रहणफलवेधज्ञानम्	,,
उदयास्तज्ञानम्	११४
कालांशाः	,,
उदयास्तादिदिनज्ञानम्	११५
स्पष्टार्कात् स्पष्टांशांतरैर्गुर्वच्छयो-रुदयास्तौ	,,
युद्धांशुविमर्दोल्लेखभेदाख्ययुद्ध-ज्ञानम्	११६
महापातज्ञानम्	,,
भूपरिध्युपलक्षणं व्यासपरिध्यानयनं सूत्रम्	११७
भूगोलवर्णनम्	,,
लोकनगखण्डाब्धिस्थितिः	,,
ऋक्षग्रहस्थानाक्षांशप्राचीसाधन-क्रोशमानज्ञानम्	११८
गोलपृष्ठफलसमवृत्तफलधनुःकेन्द्र-फलानयनम्	१२१
धनुस्त्र्यस्रसमकर्णचतुर्भुजफलानि	,,
छात्राणां स्फूर्त्यर्थं किञ्चिद्गणितम्	,,
पलभादिसाधनम्	१२४
कर्णभुजकोटिवर्गानयनम्	१२८
पूर्णापूर्णाङ्कयोर्मूलानयनसूत्रम्	,,
भिन्नपरिकर्माष्टककरणसूत्रे	१२९
एकानेकवर्णसमीकरणे सूत्रे	१३०
उदाहरणे	,,
सामुद्रिकज्ञानम्	१३२
रेखांकित पंजा	१३४
पल्लीपात–शरटारोहणफलम्	,,

विषयः	पृष्ठम्.
अंगस्फुरणस्वप्नफलम्	१३५
शुभाशुभशकुनानि	,,
शकुनव्यवस्था....	१३६
कार्यपरत्वे विशेषः शान्तिश्च	,,
नाडीनामस्थानस्वामिस्थितिकालज्ञानम्	१३७
स्वरचक्रम्	,,
नाड्यां तत्त्वस्थितिज्ञानम्	,,
दिनचर्यायां शुभाशुभज्ञानम्	१३८
नाड्यां कर्त्तव्यम्	,,
वर्षाऽयनशुभाशुभज्ञानम्....	,,
प्रश्ने शुभकालज्ञानम्	१३९
स्वरव्याप्तिज्ञानम्....	,,
यात्रासाधनम्....	,,
स्वरे वर्ज्यदिग्युद्धे जयसाधनं च	१४०
प्रवेशे निर्गमे शुभनाडी ज्ञानंप्रश्नज्ञानंच	,,
अन्यत्प्रश्नसिद्धिलक्षणम्....	,,
सिद्धिलक्षणम्	१४१
तत्त्वे करणम्	,,
तत्त्ववशाल्लाभालाभज्ञानम्	,,
तत्त्ववशान्मनश्चिन्ताज्ञानम्	,,
पृथ्वीतत्त्वस्वरूपम्	१४२
जलतत्त्वस्वरूपम्	,,
अग्नितत्त्वस्वरूपम्	,,
वायुतत्त्वस्वरूपम्	,,
आकाशतत्त्वस्वरूपम्	,,
प्रकारान्तरेण तत्त्वज्ञानम्	१४३
मदनयुद्धे जयोपायः स्त्रीवशीकरणञ्च	,,
कालज्ञानम्.	,,
कालज्ञानं दीर्घायुकरणं च	,,
अस्य प्रशंसा	१४४
वर्गवर्णस्वरज्ञानम्	१४५
नामादौ ङञणवर्णे स्वरे च विशेषः....	,,
वर्णस्वरावस्थाज्ञानोदाहरणे	,,
अवस्थाबलम्	१४६
दिनचर्याफलम्	,,
पाशकसिद्ध्यर्थं मनुः	१४७
जपसंख्यापाशकप्रक्षेपणविधिः	,,
प्रश्नानिषेधकालः	,,
शकुनक्रमे शकलनामस्वरूपाणि भाषायां	,,
प्रस्तारकरणम्....	१४८
उदाहरण सिद्ध सोलह शकलोंके नाम और स्वरूप	१५०
पाशासंभवे प्रस्तारकरणविधिः	,,
इन्किलाबकरणं कार्यपरत्वेन तन्निषेधश्च	१५१
बलाबलार्थं शत्रुमित्रत्वम्....	,,
भावे विचारणीयम्	,,
तसीरकरणम्	१५२
मरातिबसुपकरणम्	,,
इमतिजाज तकरार दृष्टिज्ञानम्	१५३
खण्डानामागमनिर्गमचरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञा	,,
प्रस्तारात्प्रश्नविधिः	,,
इन्किलाबात्प्रश्नकरणम्....	१५४
पृच्छकागमसंख्याज्ञानं पूर्णपाणिज्ञानञ्च	,,
जंबीरकरणम्	१५५
अस्योदाहरणम्	१५६
शकुनकेंद्रात्प्रस्तारः	,,
प्रश्नसिद्धिकरणम्	१५७
प्रकारान्तरेण मूकप्रश्नः	,,
शेषार्थविचारः....	१५८
दाखिलादिसंज्ञाचक्रम्	,,
बिज्दहाङ्कचक्रम्	१५९
द्वयोर्वादे तयोर्न्यूनाधिकद्रव्यज्ञानम्	१६०
बिज्दहे कर्णमार्गाङ्कबोधकचक्रम्	,,
स्वप्नज्ञानम्	,,
भर्त्तारमन्यमिच्छामीति प्रश्ने	१६१
भूमिगतद्रव्यज्ञानं तद्दिशाज्ञानं च	,,
स्थूलसूक्ष्मज्ञानमगाधज्ञानञ्च	१६२
पुत्रोत्पत्तिप्रश्नः ५	,,
रोगमुक्तिप्रश्नो जीवनमरणज्ञानञ्च ६	१६३
चौरप्रश्नः ७	,,
स्वकीयसमीपदूरस्थचौरज्ञानम्	,,
ग्रामस्थ–वहिर्गत–तद्दिग्ज्ञानं चौरगृहद्वारज्ञानञ्च	१६४
चौरस्वरूपज्ञानम्	,,

विषयः	पृष्ठम्.
नष्टप्राप्तिज्ञानम्	१६५
समार्चांज्ञानम्	,,
ऋणमुक्ति ८ परदेशस्थ मृतिज्ञानम् ९	१६५
जयाजयज्ञानं द्रव्यलाभसहाय-ज्ञानंच १०....	१६६
भोजन ज्ञानम् १०	,,
आशापूर्त्तिज्ञानम् ११ वन्धुमुक्ति-ज्ञानञ्च १२	१६७
कार्यविधिज्ञानं वारज्ञानंच	,,
मुष्टयां वस्तुकथनम्	१६८
वस्तुरूपकथनम्	१६९
वर्षफलसाधनम्	,,
तत्र प्रश्नकरणविधिः समयज्ञानञ्च	,,
वर्षमासफलम्	,,
सावितकरणम्	१७०
सावितस्य संख्यया फल दशासंख्या च	१७१
दशाफलमन्तर्दशामानफलं च	,,
ग्रन्थकृद्वंशानुवर्णनम्	,,
ग्रन्थसम्पूर्णतासमयम्	१७२
तत्रावश्यग्रहणम्	,,
वर्ज्यम्	१७३
मुहूर्त्तचिन्तामणौ	१७४
उदाहरणम्	,,
नक्षत्रनामानि	,,
नक्षत्रवारसंज्ञा	१७५
ध्रुवादिविशेपसंज्ञाबोधकचक्रम्	१७७
क्षणिकनक्षत्राणि	,,
कृषिमुहूर्त्तः	१७८
सुर्यभुक्तभाद्धलचक्रम्	,,
क्रयविक्रयमुहूर्तः	,,
विक्रयविपणिमुहूर्त्तौ	१७९
जलाशयनृत्यमुर्त्तौ	,,
सेवामुहूर्त्तः	१८०
मूलाश्लेषादिजातफलम्	,,
प्रतिष्ठामुहूर्त्तः	१८१
नष्टप्राप्तिप्रश्नः	१८२
सफलान्धादि संज्ञाचक्रम्	,,
वस्त्राभरणधारणम्	,,

विषयः	पृष्ठम्.
रोगमुक्तस्नानम्	१८३
पञ्चकम्	,,
नरपर्णदाहः	१८४
नागवलिः	१८५
संक्रान्तौ पुण्यम्	,,
गोचरे नवग्रहमुद्रिका	१८६
ज्योतिर्विदाभरणे	१८७
प्रथमरजःस्नानमुहूर्त्तः	१८७
फलदानम्	१८८
सीमतोन्नयनम्	,,
जातनामकरणम्....	,,
सूतीस्नानम्	१८९
जलपूजामुहूर्त्तः	,,
अन्नप्राशनम्	१९०
कर्णवेधः	,,
चौलाक्षरारम्भौ	१९१
मौञ्जीवन्धः	१९२
केशान्तमौञ्जीविमोक्षक्षुरिकाबधनानि	१९३
विवाहे दीनानाथः	,,
भेलनम्	१९४
वर्णवश्यगणतारागुणज्ञानम्	,,
जन्मराशितो वर्णज्ञानम्....	१९५
वर्णगुणज्ञानचक्रम्	,,
वश्यगुणज्ञानचक्रम्	१९६
तारागुणाः	,,
योनिः	,,
योनिगुणाः	१९७
गणज्ञानम्	१९८
भकूटनाडीज्ञानम्	,,
सर्पचक्रम्	,,
सूर्यादिबलविचारः	१९९
विवाहे दश महादोषाः....	,,

विषयः	पृष्ठम्.	विषयः	पृष्ठम्
विवाहे विहितमासाः	.... २०२	वास्तौ मार्त्तण्डे	.... २१६
विवाहनक्षत्राणि	.... २०३	वासभूमिप्लवास्थिविचारः	.... ,,
साधारणलग्नशुद्धिः	.... २०४	शल्यज्ञानचक्रम्	.... २१७
जन्ममासादिविचारः	.... ,,	मुहूर्त्तदीपके गृहारम्भमुहूर्त्तः	.... ,,
अनेकदोषापवादः	.... ,,	वर्गविचारः	.... २१८
स्थानपरत्वेन त्याज्यग्रहाः	.... २०५	वर्गचक्रम्	.... २१९
ग्राह्यनवांशाः	.... ,,	आयविचारः	.... ,,
उषःकालप्राशस्त्यम्	.... २०६	वामरविविचारः प्रवेशविधिश्च	.... ,,
अभिजित्प्राशस्त्यम्	.... ,,	दोषापवादा	.... २२१
गोधूलिप्राशस्त्यम्	.... २०७	कुलिक आदि मुहूर्त्तचक्रम्	.... २२२
शुभाशुभयामार्द्धानि	.... २०८	यामार्धचक्रम्	.... ,,
दिनका चौघडिया	.... २०९	वेध–विषदोषभंगे मार्त्तण्डे	.... २२४
रात्रिका चौघडिया	.... ,,	अर्द्धोदयमहोदययोगः	.... २२५
मुहूर्त्तमुक्तावल्यां वधूप्रवेशः	.... ,,	गजच्छायायोगः	.... २२६
मुहूर्त्तमार्त्तण्डे	.... ,,	कपिलाषष्ठी	.... ,,
पुनर्विवाहमुहूर्त्तः	.... २१०	रविसप्तमी बुधाष्टमी सोमवती	.... ,,
मुहूर्त्तरत्नमालायाम्	.... ,,	स्कन्दपुराणे क्षेत्रमाहात्म्यम्	.... ,,
अग्न्याधानं मुहूर्त्तमार्तण्डे	.... ,,	अवन्तिकाखण्डे	.... २२७
पट्टाभिषेको मार्त्तण्डे	.... २११	क्षिप्रानदीप्रशंसा	.... ,,
ज्योतिषरत्ने–दत्तकग्रहणमुहूर्तः	.... ,,	मुण्डनविधिः	.... ,,
यात्रा मार्तण्डे	.... २१२	पर्वनिर्णयः	.... २२८
दिक्शूलग्रहशुद्धी	.... ,,	बादजयदौषधी....	.... २३०
कुंभलग्नदोषः	.... २१३	मनुयुगादिपुण्यतिथयः	.... ,,
उषःकालादौ त्याज्या दिक्	.... ,,	दिनमाने ३० समयाः	.... ,,
सर्वदिग्भानि विदिङ्नियमश्च	.... ,,	भद्रायन्त्रम्	.... ,,
प्रस्थानदिनसंख्या	.... २१४	श्रीयंत्रम्	.... २३२
प्रस्थानस्थानवस्तुनोः	.... ,,	२० यंत्र	.... ,,
योगिनी	.... ,,	स्वशितके २० यंत्र	.... ,,
योगिनीचक्रम्....	.... २१५	फलश्रुति	.... ,,
पञ्चांगतत्त्वे चन्द्रविचारः	.... ,,	कोष्ठनवकम्	.... २३४

इति सर्वसंग्रहविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ सर्वसंग्रहः।

भाषाटीकासहितः।

नत्वा श्रीजगदम्बिकामभयदां कामेश्वरीं कामदां
दीनानाथविदा जगद्दिनकरेणेलासनाथं कृतः ॥
ज्योतिर्वित्कमलस्य तस्य विमलां टीकां हि भाषाभिधां
कुर्वे यः किल सर्वसंग्रह इलायां मैथिलः कोविदः ॥ १ ॥

अर्थ–टीकाकार निर्विघ्नतापूर्वक ग्रन्थसमाप्त्यर्थ मंगलाचरण करता है अभय और समस्त कामनाओंको देनेवाली संसारकी माता जो कामेश्वरी देवी हैं उनको प्रणाम करके पृथ्वीमें ज्योतिषीरूप कमलको खिलानेके लिये भूमण्डलमें सूर्यरूप दीनानाथपण्डितने जो सर्वसंग्रह नामक ग्रंथ बनाये उसकी भाषानामकी टीका मैथिलपण्डित मैं (श्रीबच्चू झा) करता हूँ ॥ १ ॥

तत्र नमस्कारात्मकं मङ्गलम्।

गणेशवाग्गुरून्नत्वा संदीपनकुलोद्भवः ॥
दीनानाथः सुबोधार्थं कुरुते सर्वसङ्ग्रहम् ॥ १ ॥

अर्थ–तहां नमस्कारात्मक मङ्गल सन्दीपनगोत्रोत्पन्न दीनानाथनामा पण्डित गणेश और सरस्वती तथा गुरुको नमस्कार करके सुबोधके लिये सर्वसंग्रहनामक ग्रन्थको करते हैं ॥ १ ॥

अथाधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि।

वेदचक्षुः स्मृतं शास्त्रं ज्योतिषं धातृतस्त्वाति ॥
वेदांगमस्य सम्बन्धोऽध्येता धर्मादिभाग्द्विजः ॥ २ ॥

अर्थ–अब अधिकारी, विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन–ज्योतिषशास्त्र वेदका नेत्र है इस ज्योतिःशास्त्रके विना श्रौत स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं होता है इसलिये संसारके कल्याणार्थ पहले ब्रह्माजीने इस ज्योतिःशास्त्रकोही बनाये। इसका सम्बन्ध वेदाङ्ग है,

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षोंके भागी (द्विज) अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यही इस शास्त्रको पढ सकते हैं, इतर शूद्रादिक नहीं । जैसे कि सिद्धान्तशिरोमणिमें श्रीमद्भास्कराचार्य्यके वचन हैं " वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते । संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥ १ ॥ तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमञ्च तत्त्वम् । यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थकामाँल्लभते यशश्च ॥ २ ॥ " इत्यादि वेदमेंभी " ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च " ॥ २ ॥

अथ सप्रार्थनाफलम् ।

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा रहस्यं मदुदीरितम् ॥
गणितांशे संहितांशे होरांशे मार्गदं लघु ॥ ३ ॥

अर्थ–अब प्रार्थनासहित फल–गोप्य और गणितस्कंध, संहितास्कंध, होरास्कंधोंमें शीघ्र गतिको देनेवाली मुझसे प्रतिपादित इस ग्रन्थस्थविषयोंको समझकर सज्जनलोग सन्तुष्ट होवैं ॥ ३ ॥

अथाङ्कानां व्यञ्जनसंज्ञा ।

क्रमात्कादयोऽङ्का १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९
टादयोऽङ्का १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ पाद्या
पञ्च १ । २ । ३ । ४ । ५ । ष्ट यादयो १ । २ । ३ । ४ । ५
६ । ७ । ८ वियच्छेषाः ॥ ४ ॥

अर्थ–अब अङ्कोंकी व्यञ्जनसंज्ञा क्रमसे क, आदिक अक्षर नौ अंक हैं अर्थात् क=१, ख=२, ग=३, घ=४, ङ=५, च=६, छ=७, ज=८, झ=९ । एवं ट आदिक नौ अक्षर क्रमसे एकाद्यङ्कबोधक हैं अर्थात् ट=१, ठ=२, ड=३, ढ=४, ण=५, त=६, थ=७, द=८, ध=९ इसी तरहसे प, आदिक पांच अक्षर एकादिपञ्चान्त बोधक हैं अर्थात् प=१, फ=२, ब=३, भ=४, म=५, ऐसेही य, से ह, पर्यन्त जो वर्ण हैं वे क्रमसे एकसे लेकर आठपर्य्यन्त अङ्कके बोधक हैं अर्थात् य=१, र=२, ल=३, व=४, श=५, ष=६, स=७, ह=८ । शेष ञ, न, क्ष, त्र शून्यबोधक हैं अर्थात् ञ=०, न=०, क्षः=० । सुगमके लिये आगे चक्रमें देखना ॥ ४ ॥

ा ाा ि ी उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ े ै ो ौ ं ः

अ	इ	उ	ए	ओ	गरुडः १	पंचमः शत्रुः चतुर्थं मित्रं वर्गाः					
क	ख	ग	घ	ङ	मार्जारः २	च	छ	ज	झ	ञ	सिंहः ३
ट	ठ	ड	ढ	ण	कुक्कुरः ४	त	थ	द	ध	न	सर्पः ५
प	फ	ब	भ	म	उंदुरः ६						
य	र	ल	व	०	हरिणः ७						
				श		ष	स	ह		क्ष	मेषः ८
१	२	३	४	५		६	७	८	९	०	अंकाः

अथ संख्यायाः स्थानानां संज्ञा परिकर्मचतुष्कञ्च ।

एकदशशतसहस्रअयुतलक्षप्रयुतकोट्यो दिगाहतिवृद्ध्या च क्रमाद्योगेऽङ्कयोगश्चान्तरेऽन्तरं यथास्थानम् ॥ गुण्येऽन्त्याद्गुणकावृत्तिर्गुणनजफलमाद्यङ्कतो वाहरफलं चन्त्याद्भाज्याद्धरावृत्तिशोधनेनाप्तम् ॥ ५ ॥

अर्थ–अब संख्याके स्थानकी संज्ञा और परिकर्मचतुष्क अर्थात् (अङ्कोंका योग अन्तर, गुणन, भजन) दश घात वृद्धिकरके एक, दश, शतादिक अङ्क होते हैं अर्थात् एकको दशसे गुणनेसे दश होता है दशको दशसे गुणनेसे सौ होता है शतको दशसे गुणनेसे सहस्र होता है इस तरहसे दशघातवृद्धि करके एकदशशतादिक समझना। दो आदि अङ्कके योग करनेमें यथास्थान योग करना अर्थात् एकस्थानीयको एकस्थानीयाङ्कमें जोडना दशस्थानीयाङ्कको दशस्थानीयांकमें जोडना शतस्थानीयाङ्कको शतस्थानीयाङ्कमें जोडना जैसे कि १ । २५ । ७०० इन अङ्कोंका योग करना है तो एकस्थानीय १ । ५ । ० का योग हुआ ६ दशस्थानीय २ । ० का योग हुआ २, शतस्थानीय केवल है ७ अतः उपरोक्त अंकोंका योग हुआ ७२६ ऐसाही अनन्तरभी समझना जैसे कि ७ । ५५ । ७०० । इन अङ्कोंका अन्तर करना है तो यथास्थानमें न्यास करके अन्तर करनेसे अन्तरफल हुआ

  १
 २५
७००

७२६

  ७
 ५५
७००

६४८

६४८ एवं सर्वत्र समझना। योगान्तरके लिये आगे चक्रभी दिया गया है उससे स्पष्ट समझना। जिस अङ्कको गुणते हैं वह गुण्य कहलाता है जिससे गुणते हैं वह गुणक कहलाता है 'अङ्कस्य वामा गतिः' इसके अनुसार गुण्याङ्कमें अन्तिम अंक अर्थात् सबसे आखरीका अंक जो हो उससे आरम्भ करके गुणककी आवृत्ति करे

अर्थात् गुण्यांकके अन्तिम अंकको गुणकसे गुणकर फिर गुणकसे गुण्यांकके अन्तिम अंकमें प्रथम जो अंक हो उसको गुणना इस तरहसे गुण्यान्त्यांकमें गुणककी अवृत्तिसे गुणनफल होता है। यथा २२५ को ५ से गुणना है तो गुण्य हुआ २२५ गुणक हुआ ५ गुण्यान्त्यांक है दो तो पहिले ५ से दोको गुणा किया तो हुआ १० अब गुण्यांत्यांक रहा दो उसको फिर ५ से गुणा किया तो हुआ १० तब रहा गुण्यान्त्याङ्क ५ इसको ५ से गुणा किया तो हुआ २५ इन सबको यथायोग्य योग करनेसे गुणनफल हुआ ११२५ एवं सर्वत्र समझना। अथवा गुण्याङ्कके प्रथमाङ्कसेही आरम्भ करके गुणककी आवृत्ति करनेसे गुणनफल होता है अर्थात् गुण्यके प्रथमाङ्कको गुणकसे गुणकरके गुण्यका दूसरा तीसरा आदि अङ्कोंको गुणता जाय इस तरह गुण्यके आखरी पर्यन्त अङ्कोंको गुणकसे गुणनेसे जो होता है सो गुणनफल होता है जैसे कि २५ को ५ से गुणना है तो पहले गुण्यस्थ आदि ५ को ५ से गुणा तो हुआ २५ फिर दूसरा अङ्क दोको गुणा तो हुआ १० यथायोग्य योग करनेसे गुणनफल हुआ १२५ ऐसेही अन्यत्रभी समझना। जिस अंकको भाग देते हैं वह भाज्य कहलाता है जिससे भाग देते हैं वह हर कहलाता है अन्त्य भाज्यमें अर्थात् ' अंकानां वामतो गतिः ' इसके अनुसार भाज्यके सबसे आखरीके अंकमें हरावृत्तिके शोधनेसे अर्थात् भाज्यमें हर जितने वार घटे वही हर फल होता है जैसे कि २२५ में १५ से भाग देना है तो २२५ में १५ पन्द्रहवार घटता हैं अतः हर फल हुआ १५ ऐसे सर्वत्र समझना। विशेष भास्कराचार्यकी लीलावतीसे समझना ॥ ५ ॥

एक १	दश २	शत ३	सहस्र ४	अयुत ५	लक्ष ६
१	१०	१००	१०००	१००००	१०००००

प्रयुत ७	कोटि ८	दशकोटी अर्बुद ९	शतकोटी अब्ज १०	सहस्रकोटी खर्व ११
१००००००	१०००००००	१००००००००	१०००००००००	१००००००००००

लक्ष कोटी महा पद्म १३	सहस्र कोटी कोटी परार्ध १८ एवमन्येपि	संज्ञा.
१००००००००००००	१०००००००००००००००००	स्थानका.

ऊर्ध्वतिर्यग्योगचक्रम् ।

१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१	तिर्यग्यो ४६०
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७२	८२	९२	४७०
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३	४८०
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४	४९०
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५	५००
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६	५१०
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७	५२०
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८	५३०
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९	५४०
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००	५५०
५५ ऊर्ध्वयोग	१५५	२५५	३५५	४५५	५५५	६५५	७५५	८५५	९५५	५०५ कर्णयोग

ऊर्ध्वतिर्यग्योगचक्रम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	ति. यो. ५५
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	११०
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०	१६५
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०	२२०
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०	२७५
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०	३३०
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०	३८५
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०	४४०
९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०	४९५
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००	५५०
५५	११०	१६५	२२०	२७५	३३०	३८५	४४०	४९५	५५०	ऊ. यो.

अथद्विविधत्रैराशिककरणसूत्रम् ।

त्रैराशिकं विष्णुरूपं फलं तत्रेच्छया हतम् ।
भक्तं सजातिमानेनेप्सितंव्यस्तेन व्यत्यये ॥ ६ ॥

अर्थ–यह त्रैराशिक जो है सो विष्णुरूप है अर्थात् जैसे विष्णु (भगवान्) सभी चराचरोंमें व्याप्त हैं इसी प्रकार गणितमात्रमें त्रैराशिक व्याप्त है इसीलिये विष्णुकी उपमा दी गई है इस त्रैराशिकमें तीन अङ्क (राशि) दृश्य रहते हैं इसीलिये इसका नाम त्रैराशिक है जैसे–एक प्रमाण, दूसरा फल, तीसरा इच्छा तिसमेंभी प्रमाण और इच्छा एक जाति रहना चाहिये । कदाचित् कहीं प्रश्नकर्ता विजातीय प्रश्न करदे तो बुद्धिमान्को चाहिये कि उसको सजाति करले यथा कोई पूछे जो एक रुपयेमें पाँच आम पाते हैं तो तीन रुपयेमें क्या ? यहाँ प्रमाण भया एक रुपया और इच्छामेंभी तीन रुपये हैं इसलिये दोनों प्रमाण, इच्छा, रुपया होनेसे एकजाती होगया । और कदाचित् कोई ऐसा प्रश्न करे कि चार ४ आनेमें १६ सोलह आम बिकता है तो एक पैसेमें क्या ? यहाँ प्रमाणमें आना है और इच्छामें पैसा है इस लिये विजातीय होनेसे फल ठीक नहीं होगा । तहाँपर प्रमाणमें जो चार आना है उसको सोलह पैसा बना लेना चाहिये जिससे इच्छा और प्रमाण एक जातका होजाय तब फलको इच्छासे गुण देना और प्रमाणसे भाग लेना तो-इच्छाफल होगा। जहाँपर उलटा होय अर्थात् प्रमाणसे इच्छाको बढानेपरभी इच्छा फलमें घाट पडै तहाँ उलटा त्रैराशिक किया जाता है यथा कोई पूछे जो एक नौकर खरीदना है सो पचीस वर्ष उमरवाला पुरुष यदि चालीस रुपयोंमें मिलता है तो पचास वर्षका पुरुषको खरीदनेमें कितना रुपया लगेगा । तो यहाँ पचीस वर्ष प्रमाण है और पचास वर्ष इच्छा है फल ४० रुपया हैं यहाँ पूर्वके नाईं प्रमाणसे इच्छाका द्विगुण होनेके कारण इच्छाफलभी दूना होगा अर्थात् पचास वर्ष उमर वाला अस्सी रुपया पावेगा सो ठीक नहीं है क्योंकि पचीस वर्षका पुरुष जितना काम करैगा या जीवेगा उससे थोडाही काम ५० वर्षका पुरुषसे होगा इसलिये यहां इच्छाको बढानेसे इच्छा फलमें भेद दीख पडताहै परंतु त्रैराशिकसे दूना मूल्य आता है सो असंगतहै इसलिये उलटा त्रैराशिक करना चाहिये अर्थात् प्रमाणसे फलको गुणकर इच्छासे भाग देनेसे पचास वर्षके पुरुषका मूल्य वीस रुपया होगा इसका प्रमाणभी लीलावतीमें लिखा है कि, "जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हेमने । भागहारेच राशीनां व्यस्तत्रैराशिकं भवेत्" जीवोंके वयसके मौल्यमें तथा सोनेके अग्निमें तपानेमें और राशियों अना-

जोंके भागहारमें उलटा त्रैराशिक होता है ग्रन्थकारभी आगे दोनों त्रैराशिकके उदाहरण देते हैं ॥ ॥ ६ ॥

द्विविधत्रैराशिकस्योदाहरणे ।

रूपेणाम्रशतं चेत्स्यात्किं रूपैः पञ्चभिर्वद ।
नृपाब्दा स्त्री सहस्रं चेन्नखाब्दाऽऽप्नोति किं सखे ॥ ७ ॥

अर्थ–यदि एक रुपयामें सौ आम पाते हैं तो पाँच रुपयेमें कितने आम मिलेंगे यहाँ प्रमाण है एक रुपया फल है सौ १०० आम और इच्छा है पाँच रुपया प्रमाण और इच्छा दोनों एक जातका हैंही इस लिये सौको पाँचसे गुणकर एकसे भाग देनेसे इच्छाफल पाँचसौ होगा । यह क्रम त्रैराशिक है । अब विपरीत त्रैराशिकका उदाहरण देते हैं कि सोलह वर्षकी उमरवाली स्त्री हजार रुपया पाती है तो बीस वर्षकी स्त्री कितने रुपयामें मिलेगी सो कहो ? यहाँ वयसका मूल्य है सो सोलहवर्षवालीसे बीस वर्षवालीमें सौन्दर्यादि अल्प होनेसे विपरीत त्रैराशिक होगा अर्थात् प्रमाण सोलहसे फल जो हजार है उसको गुणा तो सोलह हजार १६००० भया इसमें बीसका भाग दिया तो ८०० आठ सौ भया अर्थात् सोलह वर्षकी स्त्री हजार पाती है तो बीस वर्षकी स्त्री आठसौ पावेगी ॥ ७ ॥

त्रैराशिकयोर्न्यासः ।

प्रमाण	फल	इच्छा	उत्तर	अनुपात
भा. १	१००	५ गु.	५००	सीधा
गु. १६	१०००	हा. २०	८००	उलटा

अथ स्वद्वादशांशसन्ध्यांशसहितयुगाङ्ग्रिमानानि ।

हरीसपैस्तुङ्गारूपैर्वाचजैः फागभैः क्रमात् ।
सहस्रघ्नैर्युगैः सत्योऽन्देस्त्रेता द्वापरः कलिः ॥ ८ ॥

अर्थ–'हरीसप' अर्थात् पूर्व चौथे श्लोकके अनुसार वर्णाङ्कक्रमसे हसे आठ रसे २, ससे ७, और पसे १ का ग्रहण करके "अंकानां वामतो गतिः" इससे चारों अङ्कोंको विपरीत स्थापन करनेसे १७२८ सत्तरह सौ अट्ठाईस होता है इसी प्रकार तुङ्गारूपसे १२९६ बारह सौ छेयानवे 'वाचज' से ८६४ आठ सौ चौसठ 'फागभ' से ४३२ चार सौ बत्तीस होता है इन चारों अङ्कोंको हजारसे गुणनेसे जो होय उतने २ वर्षका सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होता है अर्थात्

१७२८००० वर्षका सत्ययुग, १२९६००० वर्षका त्रेता, ८६४००० वषका द्वापर, ४३२००० वर्षका कलियुग होता है ये चारों युगचरण कहलाते हैं और इन चारों युग चरणोंके अपने २ वर्षप्रमाणके वारहवाँ हिस्सा सन्ध्यायें होती हैं तथा इन चारोंका जोड करनेसे युग एक या महायुग कहलाता है ॥ ८ ॥

युग नाम	युगाकी वर्ष-संख्या	सन्ध्यासन्ध्यांश वर्ष संख्या
सत्य	१७२८०००	१४४०००
त्रेता	१२९६०००	१०८०००
द्वापर	८६४०००	७२०००
कलि	४३२०००	३६०००
युगोंका जोड	४३२००००	३६००००

अथ मनुमानं ब्रह्मणोऽहोरात्रमानञ्च ।

टुसैर्युगैर्मनुःसन्धिः कृततुल्यः परःपरः ।
भटैर्दिनं स्यान्मनुभिर्ब्रह्मणस्तन्मिता निशा ॥ ९ ॥

अर्थ-टूसे एक ससे सात अर्थात् एकहत्तर ७१ युगका एक मनु होता है और एक मनुकी सन्धि सत्ययुगके वर्षके बराबर होती है तथा सन्ध्या सन्ध्यांशसहित चौदह मनुका ब्रह्माका एक दिन होता है और उतनीही वडी रात्रिभी होती है चौ-दहों मनुकी सन्धियें पन्द्रह होती हैं सत्ययुगके वर्षप्रमाणको पन्द्रह गुणा करनेसे छः महायुगवर्षके तुल्य होता है और एकहत्तर युगका एक मनु होनेके कारण ७१ को १४ से गुणनेपर नौसौ चौरानवे ९९४ होता है इसमें पन्द्रहों सन्ध्याके सन्ध्यांश वर्ष छः महायुगके बराबर होते हैं अतः छः युग जोडनेसे १००० हजार होता है इसी लिये ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि "चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते" अर्थात् हजार चतुर्युगका ब्रह्माका दिन होता है और उतनेही वर्षकी रात्रि होती है इसलिये चतुर्युग ४३२०००० मानको हजारसे गुणा तो ४३२००००००० दिनमान भया इसको दूना करनेसे अहोरात्रका मान ८६४००००००० भया ॥ ९ ॥

चतुर्दशमनुसंज्ञा ।

संख्या	नाम	संधि
१	स्वायम्भुव	सं. १
२	स्वारोचिष	सं. २
३	उत्तमज	सं. ३
४	तामस	सं. ४
५	रैवत	सं. ५
६	चाक्षुष	सं. ६
७	वैवस्वत	सं. ७
८	सावर्णि	सं. ८
९	दक्षसावर्णि	सं. ९
१०	ब्रह्मसावर्णि	सं. १०
११	धर्मसावर्णि	सं. ११
१२	रुद्रसावर्णि	सं. १२
१३	देवसावर्णि	सं. १३
१४	इन्द्रसावर्णि	सं. १४
..		सं. १५

अथकल्पाद्युगाब्दानयनम् ।

षडिता मनवः कल्पाद्युगानि भमितानिवै ।
अन्यद्युगांघ्रि त्रितयं साम्प्रतं यत्कलेर्गतम् ॥ १० ॥

अर्थ–कल्पादि (सृष्ट्यादि) से वर्त्तमान (इष्ट) दिनतक गत वर्षसमूह जानने का उपाय लिखतें हैं कल्पादिसे छः मनु ऊपर लिखित गत हो गये हैं और इस वर्तमान वैवस्वतमनुमें २७ महायुगभी गत हो गया है फिर इस वर्त्तमान अट्ठाईसवाँ महायुगमें तीन युगचरण (सत्ययुग–त्रेता–द्वापर) भी गत हो चुका है अब इष्ट समयमें कलियुगका जितना गत भया है सो लेना इन सवोंको एकत्र (जोड़)

करनेसे कल्पादिसे गताब्द होगा इन सबोंका स्पष्ट बोधके वास्ते आगे चक्रभी दिया है ॥ १० ॥

श्लोकानुसार गतमन्वादिकी वर्षसंख्या ।

गत छः मनुओंकी वर्षसंख्या	१८४०३२०००
छः मनुमें सातों सन्धिकी वर्षसंख्या	१२०९६०००
गत २७ महायुगोंकी वर्षसंख्या	११६६४००००
तीन युगचरणके वर्ष	३८८८०००
वर्तमान कलियुगमें गत दो शकाब्द	३१७९
इन सब अङ्कोंका योग विक्रमशकान्तमें वर्ष	१९७२९४७९७२
सू. सि. सृष्ट्यब्द	१७०६४०००

अथ कलौ शककर्त्तारः ।

कल्यारम्भादभूच्छाकः पाण्डवस्य विभानिलः ।
मालिको विक्रमस्याथ त्विदानीं शालिवाहनः ॥ ११ ॥

अर्थ–कलियुगके आरम्भसे तीन हजार चवालीस वर्ष पर्यन्त ३०४४ पाण्डव अर्थात् युधिष्ठिरका शक चलता रहा इसके पीछे एक सौ पैंतीस वर्ष विक्रमादित्य राजाका शक चला. अब वर्त्तमानकालमें अठारह हजार १८००० वर्षतक शालिवाहन शक रहैगा बस ग्रन्थकार तीनहीं शककर्त्ताका उल्लेख प्रयोजनवश किया है परन्तु ग्रन्थान्तरोंके मतसे कलियुगमें छः शककर्त्ताओंका नाम तथा उन सबोंके वर्षसंख्या चक्रमें स्पष्ट कर दिये हैं ॥ ११ ॥

कलियुगके छः शककर्त्ताओंके नाम तथा वर्ष.

१	दिल्लीमें युधिष्ठिर	३०४४
२	अवन्तीमें विक्रमादित्य	१३५
३	प्रतिष्ठास्थानमें शालिवाहन	१८०००
४	वैतरणी और सिन्धुके संगममें बिजयाभिनन्दनशक	१००००
५	गौडदेशमें धारातीर्थमें नागार्जुन शक	४०००००
६	करवीरपत्तनमें कर्णाटकदेशमें कल्क्यवतारशक	८२१
	इन सबोंका योग कलियुगमान	४३२०००

अथ श्लोकोच्चारेण पलज्ञानं भक्तिसुखोपलब्धिश्च ।

वन्देऽहं श्रीकृष्णं तं गोलेकेशं राधाकान्तं
यं वै देवा दिव्यैः स्तोत्रैः स्तुत्वा स्तुत्वा ह्येधन्ते ।
यो विद्यार्थी सन् व्यासं गत्वा सर्वं श्रुत्वा ज्ञात्वा
प्रीतस्तेभ्यः पुत्रं दत्त्वा रेमे गेहेष्वानन्दी ॥ १२ ॥

अर्थ–इस श्लोकमें सब अक्षर गुरु हैं और पन्द्रह अक्षरका चरण होनेसे साठ गुरु अक्षरका श्लोक है दश गुरु अक्षरका उच्चारण कालका नाम असु है । यथा–" गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः " और छः असुके एक पल होता है । इसलिये साठ गुरु अक्षरके उच्चारणकाल एक पल होता है अर्थात् इस श्लोकके उच्चारणमें जितना काल लगैगा वही एक पल है । साठ वार यह श्लोक पढनेमें जो काल लगैगा वही एक दण्ड या घटी होगी । इसलिये मनुष्य इस श्लोकसे इष्ट घटी ज्ञान कर सकता है ॥ श्लोकार्थ यह है कि; जो श्रीकृष्णभगवान् उज्जयिनी पुरीमें सान्दीपनि गुरुके यहाँ जाकर सब शास्त्र सुनकर और जानकर तथा उन (गुरु) को प्रभासक्षेत्रमें मरा हुआ पुत्र देकर आनन्दपूर्वक घरमें रमण करते भये और जिस श्रीकृष्णको

देवतालोक दिव्य स्तोत्रसे वारंवार स्तुति करके वृद्धिको प्राप्त होते हैं ऐसे जो गोलोकका मालिक, राधाके स्वामी श्रीकृष्ण भगवान् हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥

अथ रात्रौ लग्नज्ञानं वक्ष्यमाणरीत्येष्टघटीज्ञानञ्च ।

भोदये तद्ध्रुवं लग्नं खभे तत्साधितं तथा ।
भास्ते साङ्गास्तद्ध्रुवं तु रात्राविष्टं तु लग्नतः ॥ १३ ॥

अर्थ-इस श्लोकसे रात्रिमें लग्न और इष्ट घटीका ज्ञान लिखते हैं रात्रिमें जिस समयका लग्न जानना हो उस समय आकाशके तरफ देखकर जो नक्षत्र उदय भया हो अर्थात् प्रवहभ्रमणसे पूर्व क्षितिजमें आया हो, या जो नक्षत्र मस्तकके सामने देखा जाता हो, या जो नक्षत्र अस्त (पश्चिमक्षितिजमें) हो रहा हो, इन तीन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रको पहचानकर नीचे कोष्ठके ध्रुवासे लग्न जानना अर्थात् जो नक्षत्र उदय हो रहा है उसको लें तो कोष्ठमें उस नक्षत्रके नीचे ' उदय ध्रुवा जो लिखी है वही राश्यादिक लग्न समझना और मस्तकके सामनेका नक्षत्र लें तो, कोष्ठमें उस मस्तकके सामनेवाले नक्षत्रके नीचे जो ' खमध्य ध्रुवा ' लिखी है वही राश्यादि लग्न होगा, तथा जो नक्षत्र अस्त होता हो उसको ग्रहण करनेपर उस नक्षत्र (जो अस्त हो रहा है) के नीचे जो ' अस्त ध्रुवा ' लिखी है उसमें छः राशि जोडकर लग्न होता है । और लग्न ज्ञान होनेपर उसी लग्नपरसे इष्टकाल ले आना सुगम है जैसे कि लग्नका भुक्तांश सम्बन्धी घटी पल और उसी दिनके पञ्चांगस्थित सूर्य जिस राशिमें हैं उस राशिमें जितने अंश भोग्य बाकी हैं उस भोग्यांशसम्बन्धी घटी पल इन दोनोंको जोड लेना, पीछे सूर्य जिस राशिमें है उससे आगेके राशिसे लेकर लगायत लग्नसे पहिले राशिपर्यन्त जो जो राशिमें हों उनके उसी देशके उदयमानको जोडकर पहिले लाया हुआ लग्नभुक्तांश सूर्यभोग्यांश सम्बन्धी घटीपल जोडमें जोड देना तो इष्टघटीपल हो जायगा। उदाहरण-आकाशमें उदय होता मूल नक्षत्र देखा गया तो आगे कोष्ठमें मूलनक्षत्रकी उदयध्रुवा ८।४।४५ यही लग्न भया । जब लग्नपरसे सूर्यांश देखकर ऊपर लिखे अनुसार इष्टसाधन हो ही जायगा ॥ १३ ॥

सूर्यसिद्धांतोक्ता भध्रुवाः । अवंत्यां पलभा ५।० शके १७६४ अयनांशाः २२।०।० माद्या भध्रुवा बुधैः स्वस्वदेशीयाः कार्याः ।

मानं २८	मध्योदयध्रुवाः	भादिखमध्यध्रु.	भाद्यास्तध्रुवाः	मध्याभध्रुवाः	अन्यग्रन्थे ध्रुवांशांतरं	तारासङ्ख्याः	शरांशाःसदिशः	अन्यग्रन्थे शरांशांतरम्	नतांशाःसदिशः	योगतारा	दिनार्धानि
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
रे.	११ २९ ०	[illegible]	११ २९ ०	[illegible]	० ० १०	३२	० ० उ	० ० ०	१३ ४६ उ	द	१५ ३६
उ.	१० १२ ०	[illegible]	१० २२ ०	[illegible]	० ० ०	३	२६ ० उ	१ ० ०	३ ६ उ	उ	१४ ५८
पू.	१० १६ ०	[illegible]	११ ६ ०	[illegible]	१ ० ०×	२	२४ ० उ	० ० ०	३ १८ द	उ	१४ ४०
शा.	१० २० १२	[illegible]	१० १९ [illegible]	[illegible]	० ० ०	१००	० ३० द	० ३० ×	३० १२ द	ध्रु	१४ ३०
ध.	९ ५ ०	[illegible]	१० ५ ०	[illegible]	४ ० ०×	४	३६ ० उ	० ० ०	४ १८ द	प	१३ ४६
श्र.	८ १७ ३०	[illegible]	९ २० ३०	[illegible]	१ ० ०×	३	३० ० उ	० ० ०	१२ ५६ द	म	१३ ३३
अ.	८ १ ४०	[illegible]	९ २१ ४०	[illegible]	० ५' ०×	३	६० ० उ	२ ० ०	१४ १९ उ	ध्रु	१३ २४
उ.	८ २ ५	[illegible]	८ १९ ५५	[illegible]	१ ० ०	२	५ ० द	० ० ०	१० ४२ द	उ	१३ २०
पू.	८ १६ १७	[illegible]	८ १९ ४३	[illegible]	१ ० ०	२	५ २० द	० ३० ×	११ ३६ द	उ	१३ २६
मू.	८ ४ ४५	[illegible]	७ २७ १५	[illegible]	१ ० ०	११	९ ० द	१ ० ×	५५ २ द	पू	१३ २७
ज्ये.	७ २० ४०	[illegible]	७ १७ २०	[illegible]	१ ० ०	३	४ ० द	१ ० ×	४८ ५८ द	म	१३ २४
अ.	७ १५ १५	[illegible]	७ १२ ४५	[illegible]	१ ५ ०	४	३ ० द	१ १५ ×	४७ १८ द	म	१३ ७
वि.	७ ३ २७	[illegible]	७ २ २३	[illegible]	० ० ०×	४	० ३० द	० ३० ×	४३ ४० द	उ	१३ ३७
स्वा.	६ ३ १५	[illegible]	७ ४ ५	[illegible]	१ ० ०×	१	२७ ० उ	० ० ०	१ १० द	ध्रु	१३ ५५
चि.	६ ६ १०	[illegible]	५ २९ १०	[illegible]	१ ० ०	१	२ ० द	० १५ ×	३३ १८ द	म्ध्य	१४ २२
ह.	५ १४ ३५	[illegible]	५ १५ २५	[illegible]	३ ० ०	५	११ ० द	० ० ०	३८ १८ द	उ	१४ ४०
उ.	४ २९ ३५	[illegible]	५ १० [illegible]	[illegible]	० ० ०	२	१३ ० उ	० ० ०	८ १८ द	उ	१५ ५
पू.	४ १९ ०	[illegible]	४ २९ ०	[illegible]	० ० ०	२	१२ ० उ	० ० ०	४ १४ द	उ	१५ २३
म.	४ ९ ०	[illegible]	४ ९ ०	[illegible]	४ ० ०	५	० ० उ	० ० ०	१० १४ द	द	१५ ४८
आ.	३ २ ५५	[illegible]	३ १६ ५	[illegible]	० ० ०×	५	७ ० द	० ० ०	११ २६ द	पु	१६ [illegible]
पु.	३ १६ ०	[illegible]	३ १६ ०	[illegible]	२ ० ०	३	० ० उ	० ० ०	३ २८ द	म	१६ १९
पु.	२ ० ३०	[illegible]	२ ५ ३०	[illegible]	० ० ०	४	६ ० उ	० ० ०	५ १० उ	पु	१६ ३३
आ.	२ १८ ३५	[illegible]	२ ११ ५	[illegible]	१ ० ०	१	९ ० द	० ० ०	३ १७ द	म्ध्य	१६ ४३
मृ.	[illegible] [illegible] १०	[illegible]	१ २८ १०	[illegible]	८ ५० ०×	३	१० ० द	२ ० ०	८ १० द	उ	१६ १४
रो.	१ २३ २५	[illegible]	१ १७ २५	[illegible]	० ३० ०×	५	५ ० द	० ३० ०	४ १८ द	पु	१६ [illegible]
कृ.	१ ५ २५	[illegible]	१ ९ ३५	[illegible]	[illegible] २० ०×	६	५ ० उ	० ३० ×	३ २२ उ	द	१६ १९
भ.	० १५ ०	[illegible]	० २५ ०	[illegible]	१ ० ०	३	१२ ० उ	० ० ०	५ ३० उ	द	१६ [illegible]
अ.	० ३ ५०	[illegible]	० १२ १०	[illegible]	० ० ०	३	१० ० उ	० ० ०	० ३० उ	उ	१५ [illegible]

[illegible]सिद्धांतोक्ताविशेषतारकध्रुवाः ॥

१	प्रजा- पति	ब्रह्म- हृत्	आग्नि	अगास्ति	अ पांव.	लुब्ध	संज्ञा
२	१ ११ १०	१ ९ ३०	१ १८ ४०	४ ३ २०	६ ४ २०	३ ६ ४०	भाद्या उदय ध्रुवाः
३	४ २७ ११	४ २१ १६	४ ३२ १६	५ २२ ३८	८ २० ०	५ १९ ४९	खमध्य ध्रुवाः
४	२ १२ ५०	२ ४ ३०	१ २५ २०	१ २७ ४०	६ ६ ४०	२ ३ २०	अस्तध्रुवाः
५	१ २७ ०	१ २२ ०	१ २२ ०	३ ० ०	६ ५ ०	२ २० ०	भाद्या ध्रुवाः
६	४ ० ०	४ ० ०	१ ० ०	१० ० २५	२ ० २५	१ ० ०	अन्यग्रंथे ध्रुवांशांतरं
७	३८ ० उ	३० ० उ	८ ० उ	८० ० द	४ ० उ	४० ० द	शरांशाःतद्दिशः
८	१ ०	९ ०		४ ० ५	१ ० ५		अन्यग्रंथे शरांशांतरं
९	३८ ४६ उ	१० २२ उ	८ २२ उ	८० २६ द	२९ १८ द	३९ १८ द	नतांशाःसदिशः
१०	१६ ४१	१६ ३८	१६ ३८	१६ ३५	१४ १५	१६ ४०	दिनार्धानि

अथ क्रान्तिनतोन्नतांशज्ञानम् ।

तीचामाघेखपा क्रान्तिर्दोर्भाद्धैः सायनात्स्वदिक् ।
याम्यांक्षसंस्कृता नम्रा नङ्गोनाह्र्दलोन्नना ॥ १४ ॥

१ अक्षांश सौम्य और याम्य दोनों होते हैं परन्तु भारतादिदेशमें याम्यही अक्षांश होताहै·

अर्थ–अब ग्रहोंके क्रान्तिसाधन लिखते हैं–तहाँ तीन राशि ९० अंशतक भुजांश होता है उन नव्वे अंशके भीतर पन्द्रह २ अंशपर क्रान्तिलाकर अन्तर करके छः खण्डा पाठित किये हैं अर्थात् सायनग्रहका भुजांश पन्द्रह अंश होनेसे (ति) छः अंशक्रान्ति होती है, फिर तीस अंश भुजांशपर बारह अंश क्रान्ति होती है दोनों क्रान्तिका अन्तर करके द्वितीय खण्डा (चा) छः पठित किये हैं पुनः पैतालीस भुजांशपर क्रान्ति सतरह १७ होती है तिसमें प्रथम दोनों खण्डोंका जोड १२ घटाकर (मा) पाँच तीसरा खण्डा पाठित किये हैं, इसी प्रकारसे छहों खण्डा क्रमसे ६।६।५।४।२।१ ये हैं। अब सायन ग्रहोंके भुजांश करके पन्द्रहसे भाग लेनेसे जो लब्धि आवे उस लब्धाङ्कतुल्यगत खण्डा जानना, और भुजांशमें पन्द्रहका भाग देनेपर जो शेष रहा है उसको एष्य खण्डासे गुणकर पन्द्रहसे भाग लेकर जो अंशादि लब्ध हों उसको गत खण्डोंके योगमें जोड देनेसे क्रान्ति हो जायगी। यह क्रान्ति सायनग्रह जिस गोलका होय उस दिशाकी कहलाती है अर्थात् सायन ग्रह उत्तर गोल (मेषादि छः राशि) में हो तो उत्तरक्रांति होती है और दक्षिण गोल (तुलादि छः राशि) में हो तो दक्षिण क्रान्ति होती है ॥ इसी प्रकारसे लाई हुई क्रान्ति और अक्षांश इन दोनोंके संस्कार करनेसे मध्याह्नकालिक नतांश होता है, यहाँ संस्कार करनेका प्रकार यह है कि, जहां २४ अंशसे अक्षांश अधिक हैं वहाँ यदि उत्तरक्रान्ति आवे तो अक्षांशमें क्रान्ति घटा देनेसे नतांश होगा, और जहाँ चौवीस अंशसे अक्षांश कम हैं वहाँ उत्तराक्रान्ति अक्षांशसे अधिक होनेपर क्रान्तिमेंही अक्षांश घटानेसे नतांश होगा। और यदि याम्य (दक्षिण) क्रान्ति हो तो सर्वत्र अक्षांशमें क्रान्ति जोडनेसे नतांश होगा, यहां श्लोकमें अक्षांशकी दिशा दक्षिणही ली गई है कारण कि, जम्बूद्वीपवासियोंको अक्षांश दक्षिणही होता है। और जो निरक्ष देशसे दक्षिण रहनेवाले हैं उनको अक्षांश उत्तरही होगा परन्तु उन देशवासियोंका द्वीपान्तरके कारण उल्लेख करनेका प्रयोजन नहीं है, अब उस प्रकारसे लाया हुआ नतांशको नव (नव्वे) में घटानेसे उन्नतांश होगा। उदाहरण–अयनांश १८।१० सूर्य ५।५।५२।४१ सायन करनेपर १।२४।२।४१ इसको भुज करनेपर यही रहा १।२४।२।४१ अंश किया तो भुजांश भया ५४।२।४१ पन्द्रहसे भाग लेनेपर लब्धि तीन ३ भयी तीन क्रान्तिखण्डका योग ६+६+५=१७ हुआ और पूर्वलिखित भुजांशमें पन्द्रहसे भाग

क्योंकि निज स्थानसे नाडीवृत्तका धरातल दक्षिणही रहता है अतः ग्रन्थकार याम्याक्षहीका उल्लेख किये हैं। १ पूरी तीन राशितक ग्रहोंके होनेसे वही भुज होते हैं तीनसे अधिक छः राशिपर्यन्त ग्रह हो तो ग्रहोंकी राश्यादिको छः में घटानेसे भुज होते हैं। छः से अधिक होने पर छः घटानेसे और नौसे अधिक होनेपर बारहमें घटानेसे भुज होते हैं और भुजका अंश भुजांश कहाते हैं।

लेनेपर शेष रहा ९ । २ । ४१ इसको आगेके खण्डा चारसे गुणा तो ३६ । १० ४४ भया इसमें १५ का भाग दिया तो २ । २४ । ४३ लब्धि भई इसको पूर्वोक्त तीनों खण्डके योग १७ में जोडा तो १९ । २४ । ४३ यह क्रान्ति हुई । अथवा केवल भुजांशपरसेही क्रान्ति जाननेके लिये चक्रभी दिये हैं जैसा कि यहां भुजांश ५४ है इसलिये चौवन कोष्ठकमें १९ । २४ है यही क्रान्ति भई । यहां सायन सूर्य उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरा क्रान्ति भई अब उत्तरा क्रान्ति १९।६।४० को अक्षांश २५।२६।४२ में पूर्व लिखितानुसार घटाया तो नतांश भया ६।२०।२ इसको नव्वेमें घटाया तो मध्याह्नकालिक उन्नतांश भया ८३।३९।५८ ॥ १४ ॥

अथ क्रांतिसारिणी ।

सायनभुजांशकोष्ठस्याधोंशाद्या क्रांतिः गुणगुणा कला हरभक्ता कलादौ युता ।

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	अं.	भु	क्रां
गु २ ह ५	० ०	० २४	० ४८	१ १२	१ ३६	२ ०	२ २४	२ ४८	३ १२	३ ३६	४ ०	४ २४	४ ४८	५ १२	५ ३६	क्रां	ज गा	ति दि
	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.	शौ	क्
गु २ ह ५	६ ०	६ २४	६ ४८	७ १२	७ ३६	८ ०	८ २४	८ ४८	९ १२	९ ३६	१० ०	१० २४	१० ४८	११ १२	११ ३६	क्रां	०	उ.
	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	अं.	५ ६	उ. द.
गु १ ह ३	१२ ०	१२ २०	१२ ४०	१३ ०	१३ २०	१३ ४०	१४ ०	१४ २०	१४ ४०	१५ ०	१५ २०	१५ ४०	१६ ०	१६ २०	१६ २०	क्रां	११	द.
	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	अं.	१	उ.
गु ४ ह १५	१७ ०	१७ १६	१७ ३२	१७ ४८	१८ ४	१८ २०	१८ ३६	१८ ५२	१९ ८	१९ २४	१२ ४०	१९ ५६	२० १२	२० २८	२० ४४	क्रां	४ ७	उ. द.
	६०	६१	६२	६३	६४	६५	३६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	अं.	१०	द.
गु २ ह १५	२१ ०	२१ ८	२१ १६	२१ २४	२१ ३२	२१ ४०	२१ ४८	२१ ५६	२२ ४	२२ १२	२२ २०	२२ २८	२२ ३६	२२ ४४	२२ ५२	क्रां	२	उ.
	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	अं.	३ ८	उ. द.
गु १ ह १५	२३ ०	२३ ४	२३ ८	२३ १२	२३ १६	२३ २०	२३ २४	२३ २८	२३ ३२	२३ ३६	२३ ४०	२३ ४४	२३ ४८	२३ ५२	२३ ५६	क्रां	९	द.

अथ भुजांशपरयोः साधनम् ।

क्रान्तेर्व्यस्ताद्भुजांशाः स्युः परो मध्योन्नतापमः ॥ १५ ॥

अर्थ—अब जिसी प्रकार भुजांशपरसे क्रांति लाये हैं उसीके उलटा प्रकारसे क्रान्तिपरसे भुजांशभी हो जायगा अर्थात् जो क्रान्तिके अंशादिक हैं उनमें पूर्वोक्त छवों क्रान्तिखण्डामेंसे जितने खण्डोंका जोड घट सके सो घटा देना पीछे जो शेष वचे उसको १५ से गुणकर एष्य खण्डा (जो क्रान्तिखण्डा नहीं घटाये) का भाग देकर अंशादि जो लब्धि हो उसमें जितने खण्ड पहिले घटे हैं उतने खण्ड संख्याको १५ से गुणकर जोड देनेसे भुजांश हो जायगा । और मध्याह्नकालिक उन्नतांशपरसे पूर्वोक्त रीतिसे जो क्रान्ति हो उसका नाम पर है ॥ उदाहरण—पूर्व चौदहवें श्लोकके उदाहरणमें सिद्धक्रान्ति १९ । २४ । ४३ है इसमें ६।६।५।४। २।१ इन छहों क्रान्तिखण्डोंमेंसे तीन खण्डका योग ६+६+५=१७ सत्रह भया चौथा खण्ड मिलानेपर इक्कीस होजानेसे क्रान्तिमें नहीं घटेगा इस लिये तीनही खण्डाका योग १७ को घटाया तो शेष रहा २ । २४ । ४३ भया इसको पन्द्रहसे गुणा तो ३६ । १० । ४५ भया अब चौथा खण्डाका अङ्क चार ४ है इस लिये चारसे भाग दिया तो ९ । २ । ४१ भया इसमें पूर्वक्रान्तिमें तीन खण्ड घटा चुका है इसलिये त्रिगुणित पन्द्रह ४५ जोडा तो ५४ । २ । ४१ यह पूर्व तुल्यही भुजांश भया । अब पर लानेका उदाहरण लिखते हैं—पूर्व चौदहवें श्लोकके उदाहरणमें जो उन्नतांश ८३ । ३९ । ५८ सिद्ध भया है उसीको सायन भुजांश मानकर क्रान्ति लाये तो २३ । ३४ । ३९ भया, इसीका नाम पर है ॥ १५ ॥

अथेष्टघट्युपरि तुरीययन्त्रोन्नतांशानयनम् ।

यातैष्यनाड्योनाघ्न्यो दिनार्द्धाप्तांशतोऽपमः ॥
परघ्नो भीरुहृत्तस्माद्भुजांशा यन्त्रजोन्नताः ॥ १६ ॥

अर्थ—अब उन्नतकालपरसे यन्त्रजोन्नतांश लाते हैं—मध्याह्नसे पहिले यदि इष्ट समय हो तो जितने घटी दिन व्यतीत हो गया हो उसको ग्रहण करना और मध्याह्नसे पीछे इष्ट समय हो तो जितने घटी दिन बाकी रहा हो उसको ग्रहण करना (इन्हीको उन्नत काल कहते हैं) इस उन्नत घटीको नाङ्ग (९०) से गुणकर दिनार्द्धसे भाग देकर जो लब्धि हो उसको भुजांश मानकर पूर्वोक्त रीतिसे जो क्रान्ति होगी उसको परसे गुणकर भीरु (२४) से भाग लेकर जो लब्धि हो उसको फिर क्रान्ति मानकर भुजांश साधन करै यही भुजांश यन्त्रजोन्नतांश होगा ॥ उदाहरण—जैसे उन्नतका १० । ३० को नव्वदसे ९० गुणा तो

९४५ भया इसमें दिनार्द्ध १६ । ३३ का भाग दिया तो अंशादि ५७ । ५ । ५८ लब्धि भई इसको भुजांश मानकर क्रान्ति २० । १३ । ३५ इसको पन्द्रहवें श्लोकके उदाहरणमें लाये हुए पर २३ । ३४ । ३९ से गुणा किया तो ४७६ । ५३ । १५ भया । इसमें २४ का भाग दिया तो लब्धि १९ । ५२ । १३ भई इसको क्रान्ति मानकर भुजांश लाया तो ५५ । ४५ । ४८ भया यही यन्त्रजोन्नतांश भया ॥ १६ ॥

अथ. यन्त्रोन्नतांशोपरीष्टज्ञानं प्राणप्रमाणं च ।

यन्त्रजोन्नतभागेभ्यो व्यस्तमार्गात्कपालके ॥
गतैष्याः प्राक्परे नाड्यः प्राणो गुर्वक्षरैर्नकैः ॥ १७ ॥

अर्थ–अब यन्त्रोन्नतांशपरसे इष्ट घटीज्ञान लिखते हैं–जैसे उन्नत कालपरसे यन्त्रोन्नतांश साधे हैं उसके उलटी रीतिसे पूर्वकपालमें (मध्याह्नसे पूर्व) गत घटी (नाडी) होंगी और पश्चिम कपालमें (मध्याह्नसे पश्चात्) एष्य (जितने घटी दिन बाकी है सो) काल नाड्यात्मक आवेगा । उलटी रीति यह है कि, यन्त्रजोन्नतांशको भुजांश मानकर क्रान्ति लावे उस क्रान्तिको चौबीससे गुणकर परसे भाग लेय जो लब्धि हो उसको क्रान्ति मानकर फिर भुजांश लावे इस भुजांशको दिनार्द्धसे गुणकर नव्वेका भाग देय लब्ध उन्नत घटी होगी । और नक (१०) दश गुरु अक्षरका उच्चारणकाल प्राण असु कहाता है ॥ उदाहरण–पूर्वश्लोकके उदहारणमें लाया हुआ यन्त्रजोन्नतांश ५५ । ४५ । ४८ को भुजांश मानकर क्रान्ति भई १९ । ५२ । १३ इसको २४ चौबीससे गुणा तो ४७६ । ५३ । १२ भये इसमें पर २३ । ३४ । ३९ का भाग दिया तो लब्धि २० । १३ । ३५ भई फिर इसीको क्रान्ति मानकर भुजांश लाये तो ५७ । ५ । ५८ भये । इनको दिनार्द्ध १६ । ३३ से गुणकर ९४५ भये इसमें नव्वे ९० का भाग दिया तो लब्धि १० । ३० पहिले इष्ट घटीके बराबरही भई ॥ १७ ॥

अथ मूर्तकालपरिभाषा ।

पलं गुर्वक्षरैर्नातैस्तैर्नातैराक्षनाडिका ।
नाडीनात्या दिनं नागैस्तैर्मा माभिः खपैः समाः ॥ १८ ॥

अर्थ–नात (६०) साठ गुरु अक्षरका उच्चारणकाल पल कहाता है उस साठ पलका एक नाक्षत्री (नाडी) घटी होती है उस साठ घटीके एक दिन होता है तीस दिनका एक मास होता है और बारह मासकी एक वर्ष होता है ॥ १८ ॥

अनन्तरोक्त्या क्षेत्रपरिभाषा ।

तुल्यं भचक्रं वर्षेण राशिर्मासससमः स्मृतः ।
दिनेनांशः कलानाड्या पलेन विकला तथा ॥ १९ ॥

अर्थ-एक वर्षका बराबर भचक्र होता है अर्थात् भचक्रमें बारह राशि हैं उनको एक वर्ष बारह मासमें सूर्य भोगते हैं सोही सौर वर्ष है। मासकी समान राशि होती है दिनके समान अंश, नाडीके समान कला और पलके बराबर विकला होती है ॥ १९ ॥

अथ वर्षाणां भूदिनानि ।

णातुलैः कुदिनैः सौरः पाचलैर्जैव आचलैः ।
सावनो विमलैश्चान्द्र आर्क्षः स्याद्धामगैः समाः ॥ २० ॥

अर्थ-३६५ तीन सौ पैंसठ सावनदिनका एक सौरवर्ष होता है । ३६१ तीन सौ एकसठि दिनका जैव (बार्हस्पत्य) वर्ष होता है । ३६०·तीन सौ साठ दिनका सावननवर्ष होता है । ३५४ तीन सौ चौवन दिनका चान्द्र वर्ष होता है और ३५९ तीन सौ उनसठि दिनका आर्क्ष (नाक्षत्र) वर्ष होता है । इस श्लोकमें घटीपलादि छोडकर केवल दिनमात्र पठित किया गया है । पसु सावयव सौरवर्ष ३६५ । १५ ३१ । ३१ । २४ सावन दिनादिका होता है इसी तरह जैववर्ष ३६१ । १ । ३६ ११ । ४५ । सावन दिनादिका होता है सावनवर्ष ३६० कहीं होता है, चान्द्रवर्ष ३५४ । २२ । ११२३ । ५७ सावन दिनादिका होता है, और नाक्षत्र वर्ष ३५९. १ । १ । ३१ । ९ सावन दिनादिका होता है । यह ग्रन्थकर्ताकी टिप्पणीके अनुसार लिखा गया है ॥ २० ॥

अथ जैवमानेन चान्द्रसंज्ञया च संवत्सरानयनम् ।

थीछाछकोनशाकाद्यः प्रभवान्नातशेषतः ।
गौरवाब्दोऽनुपातेन धनुक्याब्दैर्ग्र्यसंयुतात् ।
रेवोदगार्को याम्ये तु सकाको नतह्रच्छकः ॥२१ ॥

अर्थ-थीछाछक (१७७७) वर्त्तमान शकमें घटाकर शेष जो बचे उसमें नात (६०) का भाग देकर जो शेष बचे उसके तुल्य प्रभवादिकको गिनकर गत जानै और उसके आगेका वर्तमान जानै यह गौरव बार्हस्पत्यमानसे संवत्सर होता

है यह प्रकार रेवा (नार्मदा) से उत्तर देशवासियोंके लिये है और नर्मदासे दक्षिण देशवासियोंके लिये तो शाकेमें ग्यारह मिलाकर साठसे भाग देनेपर शेषतुल्य प्रभवादि गत और आगेका वर्तमान जाने । वर्तमानकाभी मासादि वर्षारम्भके दिन मध्यम बृहस्पतिके अंशपरसे अनुपात करके जो हो उसमेंभी ११०९. वर्षमें १३ मिलावे तो दोनों विभागके भुक्त मासादि होंगे ॥ २१ ॥

अथ संवत्सरनामानि ।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥ २२ ॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः ।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ॥ २३ ॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः ।
नन्दनो विजयश्चैव जयमन्मथदुर्मुखाः ॥ २४ ॥
हेमलम्बो विलम्बश्च विकारी शार्वरी प्लवः ।
शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥ २५ ॥
प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ।
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसो नलः ॥ २६ ॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती ।
दुन्दभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥ २७ ॥

अर्थ—इन छओं श्लोकोंका अर्थ नीचे चक्रमेंसे स्पष्ट जाना जाता है । पर जो श्लोक लिखे हैं सो केवल पद लगाकर पढनेके लिये । वास्तवमें कोष्ठकमेंभी श्लोकही है और संवत्सर परिवत्सरादि संज्ञा तथा युग आदिकी संज्ञा और उनके देवता ब्रह्मादि वीसी सभी चक्रमें खुलासा है अतः इन श्लोकोंका अर्थ नहीं किया ॥ २२–२७ ॥

संवत्सरनामानि ।

संवत्सर १	परिवत्सर २	इदावत्सर ३	अनुवत्सर ४	इद्वत्सर ५	छा	विंशति	संज्ञा
प्रभवो १	विभवः २	शुक्लः ३	प्रमोदोथ ४	प्रजापतिः ५	।	ब्र	विष्णुयुग १
अंगिराः ६	श्रीमुखो ७	भावो ८	युवा ८	धातातथैवच १०	२२	ब्र	गुरुयुग २
ईश्वरो ११	बहुधान्यश्च १२	प्रमाथी १३	विक्रमो १४	वृषः १५	।	ब्र	इंद्रयुग ३
चित्रभानुः १६	सुभानुश्च १७	तारणः १८	पार्थिवो १९	व्ययः २०	२३	ब्र	अग्नियुग ४
सर्वजित् २१	सर्वधारीच २२	विरोधी २३	विकृतः २४	खरः २५	।	वि	त्वष्टयुग ५
नंदनो २६	विजयश्चैव २७	जय २८	मन्मथ २९	दुर्मुखः ३०	२४	वि	अहिर्बुध्न्ययुग ६
हेमलंबो ३१	विलंबश्च ३२	विकारी ३३	शार्वरी ३४	प्लवः ३५	।	वि	पितृयुग ७
शुभकृत् ३६	शोभनः ३७	क्रोधी ३८	विश्वावसु ३९	पराभवो ४०	२५	वि	विश्वयुग ८
प्लवंगः ४१	कीलकः ४२	सौम्यः ४३	साधारण ४४	विरोधकृत् ४५	।	शि	सामयुग ९
परिधावी ४६	प्रमादीच ४७	आनंदो ४८	राक्षसो ४९	नलः ५०	२६	शि	शुक्राग्नियुग १०
पिंगलः ५१	कालयुक्तश्च ५२	सिद्धार्थो ५३	रौद्र ५४	दुर्मती ५५	।	शि	आश्वियुग ११
दुंदुभी ५६	रुधिरोद्गारि ५७	रक्ताक्षी ५८	क्रोधनः ५९	क्षयः ६०	२७	शि	भगयुग १२

अथाऽयनगोलदैवमानज्ञानम् ।

कर्कात्स्यादयनं याम्यं मृगात्सौम्यं च सायनात् ।
मेषात्सौम्यो घटाद्याम्यो गोलस्तौ स्वर्द्युरात्रिकौ ॥ २८ ॥

अर्थ–सायन कर्कसंक्रान्तिसे लेकर सायन धनुषान्तपर्यन्त याम्य (दक्षिण) अयन कहलाता है और सायन मकरसंक्रमसे सायन मिथुनान्ततक सौम्य (उत्तर) अयन कहलाता है तथा अयनांश नहीं मिलानेसे निरयन याम्यायन और सौम्यायन होते हैं। मेषादि छः राशि सौम्य(उत्तर) गोल कहाता है और तुलादि छः राशि

याम्य (दक्षिण) गोल कहाता है । यह दोनों गोल क्रमसे स्वर्गवासियोंके दिन और रात्रि होते हैं अर्थात् उत्तर गोलमें सूर्यके रहते देवतालोगोंका दिन होता है और दक्षिण गोलमें सूर्यके रहते रात्रि होती है ॥ २८ ॥

अथ सायनार्कादृतुज्ञानम् ।

त्रिस्त्रृतू अयने द्वे ते शिशिरो मृगकुम्भयोः ।
मीने मेषे वसन्तः स्याद्वृषे युग्मेऽथ ग्रीष्मकः ॥ २९ ॥
कर्के सिंहे रवौ वर्षा कन्यायां च घटे शरत् ।
अलौ धनुषि हेमन्तो माघात्त्वेवं न युक्तिमत् ॥ ३० ॥

अर्थ-पूर्व श्लोकमें कहे हुए दोनों अयन तीन २ ऋतुके होते हैं, वह इस प्रकार कि, मकर और कुम्भके सूर्य रहते शिशिर ऋतु होती है, मीन और मेषमें सूर्यके रहते वसन्त, वृष और मिथुनमें सूर्यके रहते ग्रीष्म, कर्क सिंहके रवि रहते वर्षा, कन्या तुलाके सूर्यमें शरत्, वृश्चिक धनुके सूर्य रहते हेमन्त ऋतु होती है, यहाँ किसी २ ग्रन्थमें माघसे दो २ मास ऋतुमें ग्रहण किया है सो अयुक्त है कारण कि, सूर्यके चालसे ऋतु बदलती है, इसलिये सौरही मास लेना उचित है ॥ २९ ॥ ३० ॥

शिशिर	वसंत	ग्रीष्म	वर्षा	शरद्	हेमंत	ऋतवः
१०।११	१२।१	२।३	४।५	६।७	८।९	सूर्याः
मा. फा.	चै. वै.	ज्ये. आ	श्रा.भा.	कु.का	अ.पो.	मासाः

अथ क्षयाधिमासज्ञानम् ।

मासो दर्शावधिश्चान्द्रः सौरः संक्रांतितो भवेत् ।
द्विसंक्रमः क्षयोऽब्दोत्र द्व्याधिकोऽसंक्रमोऽधिकः ॥ ३१ ॥

अर्थ-अमावास्यान्तसे अमावास्यान्ततक चान्द्रमास कहाता है और संक्रान्तिसे संक्रान्तिपर्यन्त सौरमास कहाता है, वस जिस चान्द्रमासमें सूर्यकी दो संक्रान्ति हों वह क्षयमास होता है, परन्तु क्षयमासवाले वर्षमें दो अधिकमास होते हैं और जिस चान्द्रमासमें सूर्यकी संक्रान्ति नहीं होय उसको अधिक मास कहते हैं ॥ ३१ ॥

अधिमासांतरे सावनमासादि ।

३२।०।१९।१।१६	सू. शि.
३२।०।२०।४१।२७।४०	सि. शि.

मलमासकालज्ञानम् ।

तूपघ्नशाको हृज्झाकैः खोन आसं मलं मधोः ।
मध्याधिकोऽमरैर्मासैः क्षयोऽब्दैः कुभटैर्धियैः ॥ ३२ ॥

अर्थ–शाकेको बारहसे गुणकर उन्नीसका भाग देकर जो लब्धि हो उसमें दो घटाना अवशेष एकसे साततक बचे तो चैत्रसे क्रमसे सात मास अधिक होते हैं, । और मध्यम मानसे तैंतीस ३३ महीने पर अधिक मास होता है कुभट (१४१) वर्ष पर या धिय (१९) वर्षपर क्षयमास होता है॰ अर्थात् प्रथम क्षयमाससे दूसरा क्षय मास क्या तो १९ वर्षपर होता है या १४१ वर्षपर होता है ॥ ३२ ॥

मासनामकरणम् ।

येनर्क्षेण पूर्णिमा स्यात्तत्संज्ञो मास ईरितः ।
यथा चैत्रश्चित्रया स्याद्वैशाखस्तु विशाखया ॥ ३३ ॥

अर्थ–पूर्णिमा जिस नक्षत्रमें भई उसी नक्षत्र नामक मासनाम रक्खा गया है, जैसे चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा होनेसे चैत्र, विशाखा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा होनेसे वैशाख, ज्येष्ठासे युक्त होनेसे जेठ, पूर्वाषाढासे युक्त पूर्णिमा होनेसे आषाढ, श्रवणसे युक्त होनेसे श्रावण, पूर्वाभाद्रपदासे युक्त भाद्रपद, अश्विनीनक्षत्रसे युक्त आश्विन, कृत्तिकासे युक्त कार्तिक, मृगशिरसे युक्त मार्गशीर्ष, पुष्यसे युक्त पौष, मघासे युक्त माघ, पूर्वाफाल्गुनीसे युत पूर्णिमा होनेसे फाल्गुन कहागया है इस समयमेंभी प्रायः कभी एक आध नक्षत्रका फरक पडता है, नहीं तो ठीकही होता है सो अन्तर स्पष्ट मान लानेसेही होता है मध्यम मानसे तो अन्तर कभी नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

पूर्णिमांत मास नक्षत्रांग ।

का	मार्ग	पौ	मा	फा	चै	वै	ज्ये	आ	श्रा	भा	आ॰
कृ गे	मृ घा	पु पुः	अश्ले म	पू उ ह	चि स्वा	वि ऽनु	ज्ये मू	पू उ	श्र ध	श पू उ	रे ऽश्वि भ

पितृमनुष्यमाने ।

पित्र्यर्द्धरात्रिः साह्नोऽधोऽमा नृमानं तु मिश्रकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–पहिले कही हुई पूर्णिमामें पितरलोगोंकी आधी रात होती है तथा अमावसको दिनार्द्ध होता है इससे यहभी सिद्ध भया कि एक चान्द्रमास पितरोंका एक दिन होता है, तथा कृष्ण साढे सप्तमी ७॥ आधी अष्टमीमें सूर्योदय और शुक्ल साढे सप्तमीमें सूर्यास्त होते हैं ॥ ३४ ॥

मासनामानि ।

मासश्चैत्रोऽथ वैशाखो ज्येष्ठ आषाढसंज्ञकः ।
ततस्तु श्रावणो भाद्रपदोऽथाश्विनसंज्ञकः ॥
कार्त्तिको मार्गशीर्षश्च पौषो माघोऽथ फाल्गुनः ॥ ३५ ॥

अर्थ–१ चैत्र, २ वैशाख, ३ जेठ, ४ आषाढ, ५ श्रावण, ६ भादो, ७ आश्विन, (कुआर), ८ कार्त्तिक, ९ मार्गशीर्ष (अगहन), १० पूस, ११ माघ, १२ फागुन, ये बारह मास क्रमसे होते हैं ॥ ३५ ॥

पक्षज्ञानम् ।

शुक्लोऽस्तकाले चन्द्रश्चेत्कृष्णपक्षस्तथा न चेत् ।
सूर्यात्षड्भान्तरे चन्द्रः शुक्लः पक्षोऽधिकेऽसितः ॥ ३६ ॥

अर्थ–सूर्यमें अस्त समयमें चन्द्रमा देखनेमें आवे तो शुक्लपक्ष समझना । और सूर्यास्तके समय आकाशमें चन्द्रमा नहीं देखा जाय तो कृष्णपक्ष समझना । सूर्यके राशिसे छः राशिके भीतर चन्द्रमा हो तो शुक्ल पक्ष जानना और छः राशिसे आगे होय तो कृष्णपक्ष जानना चाहिये । यहाँ सूर्य और चन्द्रके अंशादिकभी देखनेसे स्पष्ट तिथिभी जानी जाती है ॥ ३६ ॥

तिथ्यादिश्रवणमाहात्म्यम् ।

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च ।
पञ्चाङ्गं शृणुते नित्यं गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ–तिथि, दिन, नक्षत्र, योग और करण इन पाँचों मिलकर पञ्चांग कहाता है इस पञ्चांगको जो हररोज सुनता है वह गंगास्नानका फल पाता है, आशय यह है कि जिस गंगास्नानके लिये अनेक कोसिश और कष्ट करते हैं उसका फल पञ्चांग श्रवणमेभी प्राप्त होताहै इसलिये पञ्चांग अवश्य सुनना चाहिये ॥ ३७ ॥

तिथिनामानि ।

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी ततः ॥

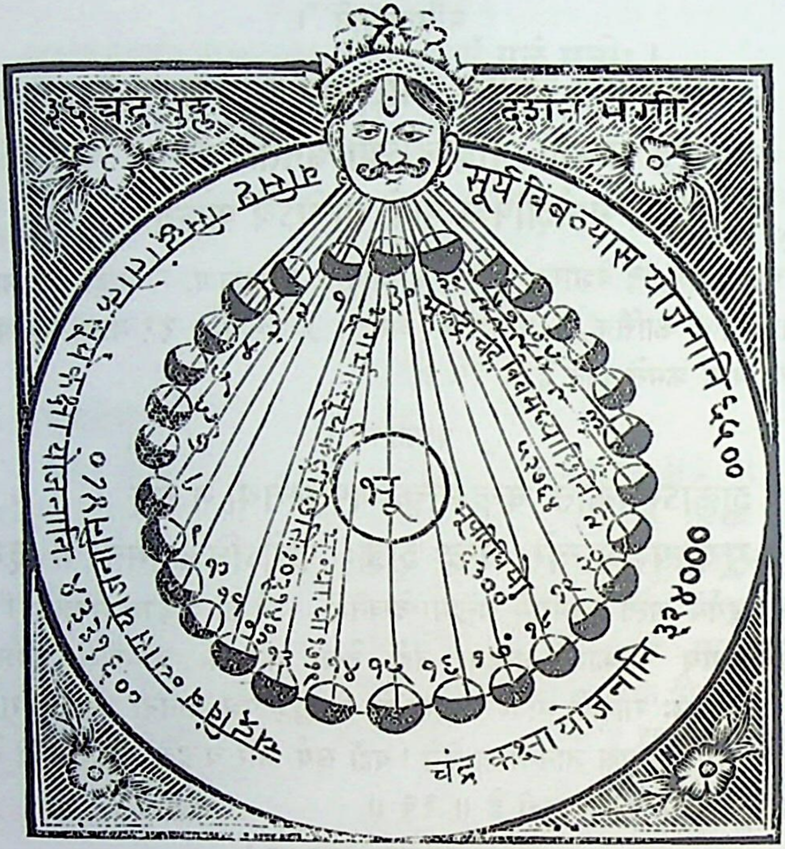

नवमी दशमी चैवैकादशी द्वादशी ततः ।
त्रयोदशी ततो ज्ञेया ततः प्रोक्ता चतुर्दशी ॥
पूर्णिमा शुक्लपक्षेन्त्या कृष्णपक्षे त्वमा स्मृता ॥ ३८ ॥

अर्थ–१ प्रातिपद् (पडिवा), २ द्वितीया, ३तृतीया, ४चतुर्थी (चौठ), ५पञ्चमी, ६ षष्ठी. ७ सप्तमी, ८अष्टमी, ९नवमी, १० दशमी, ११एकादशी, १२ द्वादशी, १३त्रयोदशी, १४ चतुर्दशी, शुक्लपक्षके अन्तमें १५ पूर्णिमा और कृष्णपक्षमें ३० अमावस होती है । पञ्चांग आदिमें अमावस्याके जगह तीस लिखा जाता है इसका कारण यह है कि शुक्लादिमासके अनुसार अमावास्या तीसवीं तिथि होती है ॥ ३८ ॥

वारग्रहनामानि ।

रविः शशी कुजो बुधो गुरुः कविः शनैश्वरः ।
इमे हि सप्त वासराः स्वराहुकेतवो ग्रहाः ॥ ३९ ॥

अर्थ-१ रवि, २ सोम (चन्द्र), ३ मङ्गल, ४ बुध, ५ बृहस्पति, ६ शुक्र, ७ शनि ये सातों क्रमसे वार (दिन) होते हैं और इन्हीं सातों ग्रहमें राहु केतु मिलकर नवग्रह कहे जाते हैं ॥ ३९ ॥

पञ्चाङ्गर्क्षोपरि सूक्ष्मर्क्षानयनम् ।

सार्द्धाः स्राच्याक्रभासाख्या व्यर्द्धा म्याम्राधराज्यताः ।
शेषाः समा उषान्त्यांघ्रेर्झकनाड्योऽभिजित्स्मृतः ॥ ४० ॥

अर्थ-यहाँ नक्षत्रोंके नाम अङ्कद्वारा कहे गये हैं, नक्षत्र अभिजित् सहित अट्ठाईस हैं इसलिये स्रा (२७) अर्थात् उत्तराभाद्रपदा, च्या (१६) विशाखा, क्र (२१) उत्तराषाढा, भा (४) रोहिणी, सा (७) पुनर्वसु, ख्या (१२) उत्तराफाल्गुनी इन छः नक्षत्रोंके मान (भोग) सार्द्ध (डेढ दिन) होते हैं अर्थात् नव्वे (९०) घटी होते हैं जिसलिये अहोरात्र साठ घटीके होते हैं । इसी तरह म्या (१५) स्वाती, म्रा (२५) शतभिषा, ध (९) आश्लेषा, रा (२) भरणी, ज्य (१८) ज्येष्ठा, त (६) आर्द्रा इन छः नक्षत्रोंके भोग व्यर्द्ध (अहोरात्रका आधा) तीस ३० घटी होते हैं। अवशेष जो पन्द्रह १५ नक्षत्र बाकी रहे हैं उनके भोग ६० घटी होते हैं और उत्तराषाढाके अन्त्यके (१९) घटी अभिजित्के भोग (मान) होते हैं ॥४०॥

सूक्ष्मर्क्षघटीसाधनम् ।

नाड्योऽश्विभात्थजभघ्नैर्हता भक्ता ननातघ्नैः ।
श्रुतेरुत्क्रमतो मध्याश्चैतन्मुनिमतं शुभम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-अब सूक्ष्म नक्षत्रपरमें घटीसाधन लिखते हैं । अश्विन्यादि नक्षत्रोंके जो मध्यमानसे नाडी पूर्वश्लोकमें कहे हैं उनको थजभघ्न (९४८७) से गुणकर ननातघ्न (९६००) से भाग देनेपर स्पष्ट घटियें होती हैं और श्रवणादि नक्षत्रोंमें उलटी क्रिया करनेसे अर्थात् ९६०० से गुणकर ९४८७ से भाग लेनेपर स्पष्ट घटियें होती हैं । यहशुभफलदायक मुनियोंके मत है ॥ ४१ ॥

सर्वर्क्षगुणा अंतरघट्यः षष्टि ६० भक्ताः पंचांगस्थनक्षत्रघटीषु धनर्णं स्फुटाः सूक्ष्मर्क्षनाड्यो भवंति ।

संख्याः	भानि	जघन्यादिघट्यः	स्थूलसूक्ष्मर्क्षांतरघट्यः			अनुपा. पर४ विं.घ	रोगेजातेरो.स्थि.इ.	एतादृशे स्पष्टग्रहे स्वोपरिस्थसूक्ष्मर्क्षप्रवेशः			
१	अ	६०	०	४२	ऋ	५०	९	०	०	०	०
२	भ	३०	३१	४	ऋ	२४	११	०	१३	१०	३५
३	कृ	६०	३१	४६	ऋ	३०	९	०	१९	४५	५२
४	रो	९०	२	५०	ऋ	४०	७	१	२	५६	२७
५	मृ	६०	३	३२	ऋ	१४	३०	१	२२	४२	१९
६	आ	३०	३३	५३	ऋ	२१	मृ	२	५	५२	५४
७	पु	९०	४	५७	ऋ	३०	७	२	१२	२७	१२
८	पु	६०	५	३९	ऋ	२०	७	३	२	१४	४
९	ऽश्ले	३०	३६	०	ऋ	३२	मृ	३	१५	२४	३९
१०	म	६०	३६	४३	ऋ	३०	२०	३	२१	५९	९६
११	पू	६०	३७	२५	ऋ	२०	मृ	४	५	१०	३१
१२	उ	९०	८	२९	ऋ	१८	७	४	१८	२१	६
१३	ह	६०	९	११	ऋ	२१	१५	५	८	६	५८
१४	चि	६०	९	५३	ऋ	२०	११	५	२१	१७	३३
१५	स्वा	३०	४०	१५	ऋ	१४	मृ	६	४	२८	८
३६	वि	९०	११	१८	ऋ	१४	१५	६	११	३	२६
१७	ऽनु	६०	१२	१	ऋ	१०	स्थि	७	०	४९	१८
१८	ज्ये	३०	४२	२२	ऋ	१४	मृ	७	१३	५९	५३
१९	मू	६०	४३	४	ऋ	५६	.९	७	२०	३५	१६
२०	पू	६०	४३	४६	ऋ	२४	मृ	८	३	४५	४५
२१	उ	९०	१४	५०	ऋ	२०	२०	८	१६	५६	२०
२२	ऽभि	१९	४	१४	ध	०	०	९	६	४२	१२
२३	श्र	६०	३	३२	ध	१०	११	९	१०	२६	३१
२४	ध	६०	२	५०	ध	१०	१५	९	२४	७	६
२५	श	३०	३७	३२	ऋ	१८	११	१०	७	१७	४१
२६	पू	६०	२८	१४	ऋ	१६	मृ	१०	१३	५२	५८
२७	उ	९०	०	४२	ध	२४	७	१०	२७	३	३३
२८	रे	६०	०	०	ध	३०	स्थि	११	१६	४२	२५

नक्षत्रनामानि ।

आश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृगः ।
आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यस्तथाऽऽश्लेषा मघा तथा ॥
पूर्वाफाल्गुनिका तस्मादुत्तराफाल्गुनी ततः ।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥
अनुराधा ततो ज्येष्ठा ततो मूलं निगद्यते ।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा त्वभिजिच्छ्रवणस्ततः ।
धनिष्ठा शततारारूयं पूर्वाभाद्रपदा ततः ।
उत्तराभाद्रपाच्चैव रेवत्येतानि भानि च ॥ ४२ ॥

अर्थ–अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३, रोहिणी ४, मृगशिर ५, आर्द्रा ६, पुनर्वसु ७, पुष्य ८, आश्लेषा ९, मघा १०, पूर्वाफाल्गुनी ११, उत्तराफाल्गुनी १२, हस्त १३, चित्रा १४, स्वाती १५, विशाखा १६, अनुराधा १७, ज्येष्ठा १८, मूल १९, पूर्वाषाढा २०, उत्तराषाढा २१, अभिजित् २२, श्रवण २३, धनिष्ठा २४, शतभिषा २५, पूर्वाभाद्रपदा २६, उत्तराभाद्रपदा २७, रेवती २८ ये क्रमसे अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं । इनमेंसे पञ्चाङ्ग आदिमें सत्ताईसही आते हैं कारण कि अभिजित्का मान उत्तराषाढाके अन्त्य चरण और श्रवणके पन्द्रहवें हिस्सेमें पूरा होता है ॥४२॥

योगसूर्यर्क्षयोर्ज्ञानम् ।

योगोऽर्केन्दुभयुग्व्येकस्त्र्यंशेषोऽस्तोत्थभ्येऽर्कभम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–अब चन्द्रनक्षत्र (दिन नक्षत्र) और सूर्यनक्षत्र जानकर योग कहते हैं– दिननक्षत्र और सूर्य जिस नक्षत्रमें हों उसको अश्विनीसे अलग अलग गिनकर दोनों संख्याको जोडकर जो हो उसमें एक कम करके सत्ताईसका भाग दे जो शेष बचे उसके तुल्य विष्कम्भादिको गिननेसे उस दिनका योग होता है । अस्तसे उत्पन्न पन्द्रहमें सूर्यनक्षत्र होता है ॥ ४३ ॥

अथ योगनामानि ।

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनाभिधः ।
अतिगण्डः सुकर्माख्यो धृतिः शूलाभिधानकः ॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चाथ व्याघातो हर्षणाह्वयः ।
वज्रं सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः ॥

सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मा चैन्द्रोऽथ वैधृतिः ।
योगानां ज्ञेयमेतेषां स्वनामसदृशं फलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–विष्कम्भ १, प्रीति २, आयुष्मान् ३, सौभाग्य ४, शोभन ५, अतिगण्ड ६, सुकर्मा ७, धृति ८, शूल ९, गण्ड १०, वृद्धि ११, ध्रुव १२, व्याघात १३, हर्षण १४, वज्र १५, सिद्धि १६, व्यतीपात १७, वरीयान् १८, परिघ १९, शिव २०, सिद्धि २१, साध्य २२, शुभ २३, शुक्ल २४, ब्रह्म० २५, ऐन्द्र २६, वैधृति २७ ये सत्ताईस क्रमसे योग होते हैं इनका फलभी नामानुसार है ॥४४ ॥

अथ करणनामानि ।

बवं च बालवं चैव कौलवं तैतिलं तथा ।
गरं च वणिजं विष्टिरिति सप्त चराणि हि ॥
शकुनिश्च चतुष्पादो नागः किंस्तुघ्नसंज्ञकः ॥
चत्वारि स्थिरसंज्ञानि पूर्वैरुक्तानि सूरिभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ–बव १, बालव २, कौलव ३, तैतिल ४, गर ५, वणिज ६, विष्टि ७, ये सात करण चरसंज्ञक हैं और शकुनि १, चतुष्पाद २, नाग ३, किंस्तुघ्न ४ ये चार करण स्थिरसंज्ञक हैं । अर्थात् दोनों मिलकर ग्यारह करण होते हैं ॥ ४५ ॥

अथ करणव्यवस्था ।

शुक्ले परे घे कके विट्जे मके प्राग्विकेऽसिते ।
बवात्तदग्रे शकुनेः कृष्णभूतोत्तरार्द्धतः ॥ ४६ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें घ (४) चतुर्थी तिथि और कक (११) एकादशीतिथिमें परार्द्धमें भद्रा होती है तथा ज (८) अष्टमी, मक (१५) पूर्णिमामें पूर्वार्द्ध भद्रा होती है और शुक्लपक्षोक्त तिथियोंमें एक घटाकर कृष्णपक्षमें क्रमसे परार्ध और पूर्वार्द्ध भद्रा होती है अर्थात् शुक्लपक्षके चौथ एकादशमें एक घटानेसे तृतीया दशमी रही इन दोनों तिथियोंमें परार्द्ध भद्रा होती है तथा अष्टमी पूर्णिमामें एक घटानेसे सप्तमी चतुर्दशी रही इन दोनों तिथियोंमें पूर्वार्द्ध भद्रा होती है । फिर भद्राकरणके आगे आधे २ तिथिमें क्रमसे बव आदि करण जानना चाहिये और शकुनि आदिक जो चार स्थिर करण हैं सो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिके उत्तरार्ध-से लेकर प्रतिपदाके प्रथम भागपर्यन्त होते हैं अर्थात् कृष्णचतुर्दशी परार्द्धमें शकुनि

और अमावास्याके पूर्वार्द्धमें चतुष्पद उत्तरार्द्धमें नाग, तथा प्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें किंस्तुघ्न करण होते हैं सभी करणोंकी व्यवस्था चक्रमें स्पष्ट है ॥ ४६ ॥

अथ करणबोधकचक्र ।

शुक्लपक्ष.	कृष्णपक्ष.
तिथि–पूर्वार्द्ध–परार्द्ध	तिथि–पूर्वार्द्ध–परार्द्ध
१ किंस्तुघ्न–बव	१ बालव–कौलव
२ बालव–कौलव	२ तैतिल–गर
३ तैतिल–गर	३ वणिज–विष्टि (भद्रा)
४ वणिज–विष्टि (भद्रा)	४ बव–बालव
५ बव–बालव	५ कौलव–तैतल
६ कौलव–तैतिल	६ गर–वणिज
७ गर–वणिज	७ विष्टि (भद्रा)–बव
८ विष्टि (भद्रा)–बव	८ बालव–कौलव
९ बालव–कौलव	९ तैतिल–गर
१० तैतिल–गर	१० वणिज–विष्टि (भद्रा)
११ वणिज–विष्टि (भद्रा)	११ बव–बालव
१२ बव–बालव	१२ कौलव–तैतिल
१३ कौलव–तैतिल	१३ गर–वणिज
१४ गर–वणिज	१४ विष्टि (भद्रा) शकुनि
१५ विष्टि (भद्रा)–बव	३० चतुष्पद–नाग

अथ शतपदचक्रम् ।

चूचेचोलाऽश्विनी प्रोक्ता लीलूलेलो भरण्यपि ।
आईऊए कृत्तिका स्यादोवावीवू तु रोहिणी ॥
वेवोकाकी मृगशिरः कूघङछार्द्रका मता ।
केकोहाही पुनर्वसू हूहेहोडा च पुष्यभम् ॥
आश्लेषा तु डिडूडेडो मामीमूमे मघाह्वयम् ।

मोटाटीटू तु पूर्वाख्या टेटोपापी च उत्तरा ॥
प्रोक्तः पूषणठो हस्तः पेपोरारी तु चित्रका ।
रूरेरोता तथा स्वाती तीतूतेतो विशाखिका ॥
नानीनूनेऽनुराधास्याज्ज्येष्ठा नोयायियू मता ।
तथा येयोभभी मूलं पूर्वाषाढा भुधाफढा ॥
भेभोजाज्युत्तराषाढा जूजेजोखस्तथाभिजित् ।
खीखूखेखो श्रवो ज्ञेयो गागीगूगे धनिष्ठिका ॥
शततारा गोसासीसू पूभा सेसोददी मता ।
पूभा दूथझञ ज्ञेया देदोचाची तु रेवती ॥ ४७ ॥

अर्थ-प्रत्येक नक्षत्रमें चार चार पाद (चरण) के पृथक २ अक्षर क्रमसे श्लोकों-में कहे जानेपरभी सुगमार्थ चक्र देखना चाहिये ॥ ४७ ॥

नक्षत्रचरणबोधक चक्र ।

नक्षत्र	प्र.च.	द्वि.	तृ.	च.	नक्षत्र	प्र.च.	द्वि.	तृ.	च.
अश्विनी	चू	चे	चो	ला	स्वाती	रु	रे	रां	ता
भरणी	लि	लू	ले	लो	विशाखा	ति	तु	ते	तो
कृत्तिका	अ	ई	ऊ	ए	अनुराधा	नां	नी	नू	ने
रोहिणी	ओ	वा	वी	वू	ज्येष्ठा	नो	य	यि	यू
मृगशिर	वे	वो	क	कि	मूल	ये	यो	भ	भि
आर्द्रा	कु	घ	ङ	छ	पूर्वाषाढा	भू	ध	फ	ढ
पुनर्वसु	के	को	ह	हि	उत्तराषाढा	भे	भो	जा	जी
पुष्य	हु	हे	हो	डा	अभिजित्	जु	जे	जो	ख
आश्लेषा	डि	डू	डे	डो	श्रवण	खि	खु	खे	खो
मघा	मा	मी	मू	मे	धनिष्ठा	ग	गी	गू	गे
पूर्वाफा.	मो	टा	टी	टू	शतभिषा	गो	सा	सी	सू
उत्तराफा.	टे	टो	पा	पी	पूर्वाभाद्रपदा	से	सो	दा	दी
हस्त	पू	ष	ण	ठ	उत्तराभाद्रपदा	दु	थ	झ	ञं
चित्रा	पे	पो	रा	री	रेवती	दे	दो	चा	ची

राशिज्ञानम् ।

चूलअमेषः १ इवो वृषः २ कघङछह मिथुनं ३
हीडो कर्कः ४ माटे सिंहः ५ टोपणठपो कन्या ६ ॥
राते तुला ७ तोनायूवृश्चिक ८ ये धफढभे धनुः ९
भोजाखागी मकरः१० गुशद कुम्भः११दीथझभची मीनः१२॥४८

इसमें एक राशिमें जितने अक्षर आते हैं उसमेंसे आदि और अन्तका अक्षर लियागयाहै और जहां जो अक्षर बदलागये हैं वहाँ वहभी ले लिया गया है । यथा मेषमें पहिला अक्षर चु लेनेसे अश्विनीके तीन चरण (चूचेचो) का ग्रहण भया और ल लेनेसे (लालीलूलेलो) पाँचोंका ग्रहण भया अर्थात् एक चरण, चौथा, अश्विनीका और चार चरण भरणीका ग्रहण भया और उसे कृत्तिकाके प्रथम चरण ये नौ चरणके एक राशि होती है इसी प्रकारसे सब जानना । आगेभी इसको स्पष्ट लिखते हैं ॥ ४८ ॥

अथ नाम्निविचारः ।

बवः सशः क्षको ज्ञोजः प्रथुज्याद्यक्षराद् भम् ।
बहूनि यदि नामानि ग्राह्यं पश्चाद्भवं तदा ॥ ४९ ॥

अर्थ–इस होडाचक्रके हिसाबसे जो नाम रक्खे जाते हैं अथवा जो नामपरसे नक्षत्र लिया जाता है उसमें बकार और वकार, तथा सकार और शकार, ककार क्षकार ज्ञ और ज इनमें अभेद (एक) समझना चाहिये । अब यहां शंका है कि नाममें तो दो तीन आदि अक्षर रहते हैं उनमें किस अक्षरसे नक्षत्र ग्रहण ? तहां कहते हैं कि, नामके आदि अक्षरसे नक्षत्र जानना और यदि किसीके बहुत नाम हो तो कौन नाम लेना ? तहाँ कहते हैं कि सबसे पीछे जो नाम रक्खा गया हो उसीका ग्रहण करना ॥ ४९ ॥

अथ भावज्ञानम् ।

अश्विनीभरणीकृत्तिकापादो मेषः १, कृत्तिकायास्त्रयः पादा रोहिणीमृगशिरोर्द्धं वृषः २, मृगशीर्षार्द्धमार्द्रा पुनर्वसुपादत्रयं मिथुनम् ३, पुनर्वसोरन्त्यपादः पुष्य आश्लेषान्तं कर्कः ४, मघा पूर्वा फाल्गुनी उत्तराफाल्गुनीपादः सिंहः ५, उत्तराफाल्गुन्यास्त्रयः पादा हस्तश्चित्रार्द्धं कन्या ६, चित्रार्द्धं स्वातीविशाखापादत्रयं

तुला ७, विशाखाया अन्त्यपादोऽनुराधाज्येष्ठान्तं वृश्चिकः ८, मूलं पूर्वाषाढ उत्तराषाढपादो धनुः९, उत्तराषाढस्य त्रयः पादाः श्रवणो धनिष्ठार्द्धं मकरः १०,धनिष्ठार्द्धं शतभं पूर्वाभाद्रपदापाद त्रयं कुम्भः ११, पूर्वाभाद्रपदस्यान्त्यपादः उत्तराभाद्रपदारेवत्यन्तं मीनः १२ ॥९०॥

अर्थ–अश्विनी भरणी और कृत्तिकाका एक पाद (१चरण) मेषराशि है। कृत्तिकाके तीन पाद रोहिणी और मृगशिरका आधा (दो पाद) वृषराशि है। मृगशिरका उत्तरार्द्ध, आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन चरण मिथुनराशि है। पुनर्वसुका अन्त्यका (चौथा) चरण, पुष्य और आश्लेषा कर्कराशि है। मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका प्रथम पाद सिंहराशि है। उत्तराफाल्गुनीके तीन पाद, हस्त और चित्राके पूर्वार्ध दो चरण कन्याराशि है। चित्राके उत्तरार्द्ध, स्वाती और विशाखाके तीन पाद तुलाराशि है। विशाखाका अन्त्यका (चौथा) चरण, अनुराधा और ज्येष्ठा वृश्चिकराशि है। मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढाका पहिला पाद धनुराशि है। उत्तराषाढाका तीन चरण, श्रवण और धनिष्ठाका आधा मकर राशि है। धनिष्ठाका उत्तरार्द्ध, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदाका तीन चरण कुम्भराशि है। पूर्वाभाद्रपदाका चौथा चरण, उत्तराभाद्रपदा और रेवती मीनराशि है ॥ ९० ॥

अथ राशिव्यवस्था ।

व्यवहारे युधि द्यूते देशे दाने गृहे ज्वरे ।
काकिण्यां सेवने मन्त्रे पुनर्मेले तु नामभम् ॥ ९१ ॥

अर्थ–मनुष्योंके दो नाम होते हैं पहला जन्मनाम, दूसरा पुकार नाम। इन दोनों नामोंमें कौन नामसे क्या विचार करना सो लिखते हैं। व्यवहारमें अर्थात् लोकमें चिट्ठी पत्री लिखने आदिमें, युद्धमें अर्थात् दो आदमी मुकद्दमा लड रहे हैं, या कुस्ती आदि करनेमें कौन जीतेगा और कौन हारेगा इसके विचारमें जूएके जीतहारमें, देशमें अर्थात् कौन देश या कौन ग्राम धारेगा इस विचारमें, दान करनेमें अर्थात् दान करनेके संकल्पमें जो नामोच्चारणादि होता है उसमें, गृहके बनानेमें, ज्वर (ताप) में अर्थात् ताप कितने दिनमें मिटेगा इसमें जो नक्षत्रोंद्वारा नियम किया है इसमें, काकिणीके विचारमें, राजाके सेवामें अर्थात् अमुक राजाकी सेवासे लाभ हानिके विचारमें, मन्त्रोद्धारमें, पुनर्भू स्त्रीके विवाहमेलापकमें नामहीका नक्षत्र ग्रहण करना। और इनसे भिन्न कामोंमें अर्थात् यात्रा, विवाह, उपनयनादि समस्त कार्योंमें जन्मनक्षत्र लेना ॥ ९१ ॥

अथ जन्मपत्रीलेखनक्रमः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ स्वास्ति श्रीगणपतिकुलदेविप्रसादाद्वद्धि-वृद्धिजयमङ्गलाभ्युदयोऽस्तु ॥ आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे नक्ष-त्राणि च राशयः । सर्वान्कामान्प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रि-का ॥ अथास्मिन्शुभे विकृतनाम वत्सरे श्रीमन्नृपतिविक्रमार्क-राज्यातीतसंवत् १८७५ शालिवाहनशके १७४० प्रवर्त्तमाने सायनाद्दक्षिणायनगते श्रीसूर्ये हेमंतऋतौ महामांगल्यप्रद-मार्गशीर्षमासे शुक्लपक्षे तिथौ ८ घट्यः २६ पलानि ८ परं नवमी, शनिवासरः पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रे घट्यः ५१ पलानि ४१ सर्वर्क्षम् ५८।५२ सूक्ष्मभे घट्यादिः २९ । ५९ परम् उभा सर्वर्क्षम् ८७।१४ वज्रयोगे घट्यः २९ पलानि ५१ परं सिद्धि-युक् तात्कालिकं बालवकरणम्, एवं पञ्चांगशुद्धिः । अत्र दिने श्रीसूर्यबिम्बार्द्धोदयात्सावनघट्यः ३८ पलम् ० अवन्त्या पलभा ५।०, देशान्तरम् ० दिनमानम् २६ । ४४ अस्मिन्समये सूर्यः ७ । २१ । ४४ । ५६ लग्नम् ३ । २३ । १ । १८ अस्यां शुभग्रहावलोकितं कल्याणवतीवेलायां धर्ममूर्तिं कृष्ण विलासजीगृहे भार्या सौभाग्यवती अम्बा कुक्षेः पुत्ररत्नमजी जनत् तस्याभिधानं शतपदचक्राष्टाविंशतिसूक्ष्मनक्षत्रगणिता-नुसारेण उभाप्रथमचरणे दकाराक्षरे उकारस्वरे दुर्गादेव इति जन्मनाम प्रतिष्ठितम् । अस्य राशिः १२, विप्रवर्णं गोयोनिः स्वामी गुरुः, मनुष्यगणः आद्यनाडी शुभं भवतु ॥ ५२ ॥

अर्थ–ऊपर जो जन्मपत्र लिखनेका क्रम लिखा गया है उसके सरल होनेपरभी थोडा दिग्दर्शन भाषामें कर देते हैं प्रथम कोईभी मंगलश्लोक लिखकर वर्त्तमान संवत और शंक लिखना चाहिये, पीछे अयन, ऋतु, मास, पक्ष, लिखकर जिस दिन जन्म भया है उस दिनमें सूर्योदयकालमें जो तिथि, नक्षत्र, योग हों वे घट्यादि सहित लिखना चाहिये । यदि पञ्चांगस्थ तिथि नक्षत्रादिकोंके घटीपलसे इष्टकालकी घटी

पल अधिक हों तो ' तदुपरि ' लिखकर पञ्चांगस्थ तिथ्यादिसे आगेके तिथि नक्षत्रादिका केवल नाम लिखना चाहिये । जैसे ऊपर मूलमें अष्टमी तिथि २६ । ८ है और इष्ट ३८।० है यहाँ अष्टमी तिथिकी घटी पल लिखकर ' परं नवमी ' लिखा गया है । इसी प्रकारसे जो तिथि नक्षत्रादिक इष्टसमयतक नहीं पहुँचे हों उनको लिखकर आगेके ' परं या तदुपरि ' ऐसा लिखकर नाम लिखना । इष्ट, दिनमान आदि लिखकर पितामाताका नाम लिखकर इनको पुत्र भये हैं ऐसा लिखना । पीछे शतपदचक्र (चूचेचोला अश्वीनी) इत्यादिसे राशिनाम रखना चाहिये । तदुत्तर राशि, वर्ण, योनि, गण, नाडी ये जन्मनक्षत्रानुसार लिखना चाहिये । विशेष संस्कृतमें सब लिखाही है इति ॥ ९२ ॥

महतीपत्रिकाकरणानुक्रमः ।

इष्टशोधनमङ्गलाचरणादिपञ्चाङ्गफलस्पष्टग्रहभावचलितक्षयचयादिबलमैत्रीभावविचारानिष्टग्रहभावदृष्टिराशिफलशनिसर्वतोभद्रादिचक्रसप्तवर्गगोचराष्टकवर्गद्व्यादिग्रहयोग राजयोगसामुद्रिकराजभंगमहापुरुषकारकनाभसरश्मिदीप्तादिस्थानादिचन्द्रराशिचक्रसुनफाऽदिप्रव्रज्यारिष्टरिष्टभंगसहमायुर्दायदशान्तर्दशादिनिर्णयं यथासम्भवं लेखनीयम् । वर्षप्रश्नादावप्येवम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–बृहत् (वडा) जन्मपत्र बनानेमें इष्टशोधन मंगलाचरण, पञ्चांग (तिथि, नक्षत्र, योग, करणादि) का फल, स्पष्ट ग्रह, भाव, चालित कुण्डली, क्षयचयादि, बल, मैत्री, भावविचार, अनिष्टग्रहभावदृष्टि, राशिफल, शनिचक्र और सर्वतोभद्रादि चक्र, सप्तवर्ग, गोचराष्टकवर्ग, दो तीन आदि ग्रहयोगोंका फल, राजयोग, सामुद्रिक राजभंग, महापुरुषकारक, नाभसयोग, रश्मि, दीप्तादि, स्थानादि, चन्द्रराशिचक्र सुनफादियोग, प्रव्रज्या, रिष्टभंग, सहम, आयुदार्य, दशा, अन्तर्दशा, निर्याण (मरणविचार) ये सब यथासम्भव अर्थात् यजमानकी उदारता देखकर ये सब विचारना या कमती करना । इसी प्रकार वर्षप्रवेश और प्रश्न आदिमेंभी विचार करना ॥ ९३ ॥

अथ ग्रहशुभाशुभत्वम् ।

पापाः क्षीणेन्दुसूर्याररराहुकेतुशनैश्चराः ।
पापो ज्ञस्तद्युतः सौम्याः पूर्णेन्दुज्ञेज्यभार्गवाः ॥ ९४ ॥

अर्थ-इस श्लोकसे ग्रहोंके पाप और शुभसंज्ञा कहते हैं क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, राहु, केतु, और शनि ये पाप ग्रह हैं और इन पाप ग्रहोंसे युक्त बुधभी पाप होता है । पूर्णचन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये शुभ ग्रह हैं ॥ ५४ ॥

अथ गोचरफलम् ।

त्र्यायारिगाश्चान्द्रपापा गोचरेर्कः खगश्च सन् ।
आद्यास्तखगतश्चन्द्रो बुधो व्यन्त्यसमापगः ॥ ५५ ॥
जीवः स्वास्तायकोणस्थः शुक्रोऽष्टापुत्रधर्मगः ।
यथायगश्च शुभदो हक्स्थानफलदा इमे ॥ ५६ ॥

अर्थ-अब गोचरफल लिखते हैं गोचरमें चन्द्रमा और पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें शुभ होते हैं । परन्तु पूर्वोक्त पापमें रवि है सो रवि दशम स्थानमेंभी शुभ होता है । पुनः चन्द्रमा प्रथम, सप्तम और दशममेंभी शुभ होता है । बुध बारहवें रहित समस्थानमें २ । ४ । ६ । ८ । १० और ग्यारहवेंमें शुभ होता है । बृहस्पति द्वितीय, सप्तम, एकादश और कोण (पंचम, नवम) स्थानमें शुभ होता है । शुक्र अष्टम, आपुत्र (१।२।३।४।५) धर्म (नवम) द्वादश, एकादश स्थानमें शुभ होते हैं । ये जो गोचरी ग्रह हैं सो हक्स्थानफल देते हैं अर्थात् जिस स्थानमें रहते हैं उसी स्थानके फल देते हैं आशय यह है कि इसमें चलितके समान स्थान नहीं बदलता है । उक्त स्थानमें शुभदायक तभी होते हैं जब कि वेधस्थानमें पिता पुत्रग्रहको छोडकर अन्य ग्रह न हों । वेधस्थान सहित उक्तस्थान चक्रमें स्पष्ट लिखे हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

सू.		मं.		चं.		बु.		गु.		शु.		श.		रा.	
श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे	श्रे	वे
२	९	३	१२	१	५	२	५	२	१२	१	८	३	१२	३	१२
६	१२	६	९	३	९	४	३	५	४	२	७	६	९	६	९
१०	४	११	५	६	१२	६	९	७	३	३	१	११	५	११	५
११	५			७	२	८	१	९	१०	४	१०				
				१०	४	१०	८	११	८	५	९				
				११	८	११	१२			८	५				
										९	११				
										११	३				
										१२	६				

अथ शनेर्विशेषः ।

कहृत्पदेऽन्त्यादिस्वर्किविघ्नाधिव्याधिदोऽस्तुतः ॥ ८७ ॥

अर्थ–शनैश्चरमें यह विशेष है कि, जन्मराशिसे बारहवां शनि मस्तकमें, लग्नका शनि हृदयमें, दूसरा शनि पाद (पैर) में रहता है इसीको साढेसाती शनि कहते हैं। यह अपूजित रहनेसे बारहवें विघ्न (उपद्रव) लग्नमें आधि (मानसी पीडा) और दूसरा स्थानमें व्याधि करता है ॥ ८७ ॥

ग्रहशांत्यर्थं दानानि जपसंख्या दक्षिणा स्नानम् ।

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु	श	रा.	के.
सुवर्ण	कांस्य	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सीस	कुलत्थ	लोह	लोह
ताम्र	घृतपात्र	ताम्र	कांस्य	लवण	रजत	लोह	गोमेद	शस्त्र
माणिक्य	रजत	प्रवाल	प्राची	पुष्पराग	हीरा	नीलम	तिल	कस्तूरी
गोधूम	मौक्तिक	मसूर	मुद्ग	चणकदाल	तंदुल	उदर	अश्व	लसून्यो
धेनु	तंदुल	रक्तवृष	गजदंत	अश्व	श्वेताश्व.	माहिषी	तैल	तिल
गुड	श्वेतवृष	गुड	नीलवस्त्र	शर्करा	घृत	तैल	नीलवस्त्र	छाग
रक्तचंदन	घृत श्वेतपुष्प	रक्तवस्त्र	पुष्प	पीतवस्त्र	चित्रवस्त्र	कृष्णकंबल	कृष्णपुष्प	तैल.
रक्तवस्त्र	कर्पूर	रक्तकनेर	दासी	पीतपुष्प	श्वेतपुष्प	कृष्ण पुष्प	०	कृष्णकंबल
कमल	श्वेतवस्त्र	०	०	०	गौ	०	०	कृष्णपुष्प
७०००	११०००	१००००	४०००	१९०००	१६०००	२३०००	१८०००	१७००
धेनु	शंख	अरुणवृष	सुवर्ण	पीतांबर	श्वेताश्व	कृष्णागौ	महासि	अज

५६	अथ ग्रहाणां व्यासोक्तमंत्राः	५७ अथ तंत्रोक्तमंत्राणि।	३
सू.	जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महद्युतिम्। तमोरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम् ॥ १ ॥	ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ सः सूर्यायस्वाहा	१
चं.	दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसंभवम्। नमामि शशिनं सोमं शंभोर्मुकुटभूषणम् ॥ २ ॥	ॐ श्राँ श्रीं श्रूँ स मः सोमायस्वाहा	२
मं.	धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्कांतिसमप्रभम्। कुमारं शक्तिहस्तं च मंगलं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥	ॐ क्राँ क्रीं क्रूँ सः भौमायस्वाहा	३
बु.	प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्। सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥	ॐ ब्राँ ब्रीं ब्रूँ सः बुधायस्वाहा	४
गु.	देवानां च ऋषीणां च गुरुं कांचनसंनिभम्। बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥	ॐ ज्राँ ज्रीं ज्रूँ सः गुरवेस्वाहा	५
शु.	हिमकुंदमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्। सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥	ॐ ऑं ईं ऊँ सः शुक्रायस्वाहा	६
श.	नीलांजनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्। छायामार्तंडसंभूतं तन्नमामि शनैश्चरम् ॥ ७ ॥	ॐ पाँ पीं पूँ सः शनयेस्वाहा	७
रा.	अर्द्धकायं महावीर्यं चंद्रादित्यविमर्दनम्। सिंहिकागर्भसंभूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥	ॐ भ्राँ भ्रीं भ्रूँ सः राहवेस्वाहा	८
के.	पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्। रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥ ९ ॥	ॐ क्राँ क्रीं क्रूँ सः केतवेस्वाहा	९
	इति व्यासमुखोद्गीतं यःपठेत्सुसमाहितः। दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशांतिर्भविष्यति ॥ १० ॥		
	नरनारीनृपाणां च भवेद्दुःस्वप्ननाशनम्। ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ ११ ॥		
	ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्करादिसमुद्भवाः। ताः सर्वाः प्रशमं यांति व्यासोब्रूतेन संशयः ॥ १२ ॥		
मुं.			
मृ. ज.	मृत्युंजयाय रुद्राय नीलकंठाय शंभवे। अमृतेशाय शर्वाय महादेवाय ते नमः ॥	ॐ नमः शिवाय इति षडक्षरो महामंत्र.	
घटी.	यंत्राणां मुख्यरूपासि ब्रह्मणा निर्मिता घटी। ताम्री सौभाग्यसमृद्ध्यर्थं भव शोभने।		

अथ ग्रहाणां दृष्टयः ।

त्र्याशं शनिर्गुरुः कोणं चतुरस्रं धरासुतः ।
पश्येत्पूर्णं परेऽव्यृध्या चास्तं पश्यन्त्यलं ग्रहाः ॥ ५८ ॥

अर्थ–अब दृष्टिके विचार लिखते हैं । शनैश्चर तृतीय और दशमको पूर्ण देखता है, गुरु कोण (नवम और पञ्चम) को पूर्ण देखते हैं, मङ्गल चतुर्थ और अष्टमको पूर्ण देखते हैं, और अन्य (सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र) ग्रह पूर्वोक्त स्थानको पादवृद्धि करके देखते हैं यथा तृतीय और दशमको एक पाद दृष्टिसे, पञ्चम नवमको द्विपाद दृष्टिसे और चौथा आठवाँको तीन चरण दृष्टिसे देखते हैं । सप्तमको तो सभी ग्रह पूर्ण (चारों चरणदृष्टिसे) देखते हैं । आगे गणितागत दृष्टि लानेके लिये चक्र दिये हैं ॥ ५८ ॥

अथ दृष्टिचक्रम् ।

सू	चं	मं	बु	बृ	शु	श	ग्रहाः
३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	०	पाददृष्टि १५
९।५	९।५	५।९	५।९	०	५।९	५।९	अर्द्धदृष्टि ३०
४।८	४।८	०	४।८	४।८	४।८	४।८	पादोनदृष्टि ४५
७	७	४।८ ७	७	५।९ ७	७	३।१० ७	पूर्णदृष्टि ६०

दृष्टिपत्रम् ।

द्रष्टा वर्जितदृश्यकस्य राश्यंशकोष्ठे कलाद्या दृष्टिः अंतरगुणाः कलाः षष्टिभक्ता अग्रिमकोष्ठे हीने सति हीना अधिके युताः ।

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	०
१	०	०॥	१	१॥	२	२॥	३	३॥	४	४॥	५	५॥	६	६॥	७	७॥	८	८॥	९	९॥	१०	१०॥	११	११॥	१२	१२॥	१३	१३॥	१४	१४॥	१
२	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	२
३	४५	४४॥	४४	४३॥	४३	४२॥	४२	४१॥	४१	४०॥	४०	३९॥	३९	३८॥	३८	३७॥	३७	३६॥	३६	३५॥	३५	३४॥	३४	३३॥	३३	३२॥	३२	३१॥	३१	३०॥	३
४	३०	२९	२८	२७	२६	२५	२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	४
५	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०	४२	४४	४६	४८	५०	५२	५४	५६	५८	५
६	६०	५९॥	५९	५८॥	५८	५७॥	५७	५६॥	५६	५५॥	५५	५४॥	५४	५३॥	५३	५२॥	५२	५१॥	५१	५०॥	५०	४९॥	४९	४८॥	४८	४७॥	४७	४६॥	४६	४५॥	६
७	४५	४४॥	४४	४३॥	४३	४२॥	४२	४१॥	४१	४०॥	४०	३९॥	३९	३८॥	३८	३७॥	३७	३६॥	३६	३५॥	३५	३४॥	३४	३३॥	३३	३२॥	३२	३१॥	३१	३०॥	७
८	३०	२९॥	२९	२८॥	२८	२७॥	२७	२६॥	२६	२५॥	२५	२४॥	२४	२३॥	२३	२२॥	२२	२१॥	२१	२०॥	२०	१९॥	१९	१८॥	१८	१७॥	१७	१६॥	१६	१५॥	८
९	१५	१५॥	१४	१३॥	१३	१२॥	१२	११॥	११	१०॥	१०	९॥	९	८॥	८	७॥	७	६॥	६	५॥	५	४॥	४	३॥	३	२॥	२	१॥	१	०॥	९
१०	[illegible]	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	१०
११	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	११

दृष्टभौमगुरुशनिरहिततद्दृश्यानागेषु राश्यंशेषु इमा दृष्ट्यो ग्राह्याः अन्यराशौ तु पूर्वोक्ता एव ग्राह्याः ।

मं.		०	२	१	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९		मं.
	२	१५	१६॥	१८	१९॥	२१	२२॥	२४	२५॥	२७	२८॥	३०	३१।	३३	३४॥	३६	३७।	३९	४०।	४२	४३॥	४५	४६॥	४८	४९॥	५१	५२॥	५४	५५॥	५७	५८॥	२	
	३	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९	३८	३७	३६	३५	३४	३३	३२	३१	३	
	६	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	
	७	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९	३८	३७	३६	३५	३४	३३	३२	३१	७	

गु.	३	४५	४५॥	४६	४६॥	४७	४७॥	४८	४८॥	४९	४९॥	५०	५०॥	५१	५१॥	५२	५२॥	५३	५३॥	५४	५४॥	५५	५५॥	५६	५६॥	५७	५७॥	५८	५८॥	५९	५९॥	३	गु.
	४	६०	५८	५६	५४	५२	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२	४	
	७	४५	४५॥	४६	४६।	४७	४७॥	४८	४८॥	४९	४९॥	५०	५०॥	५१	५१॥	५२	५२॥	५३	५३॥	५४	५४॥	५५	५५॥	५६	५६॥	५७	५७॥	५८	५८॥	५९	५९॥	७	
	८	६०	५८॥	५७	५५॥	५४	५२॥	५१	४९॥	४८	४६॥	४५	४३॥	४२	४०॥	३९	३७॥	३६	३४॥	३३	३१॥	३०	२८॥	२७	२५॥	२४	२२॥	२१	१९॥	१८	१६॥	८	

श.	१	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०	४२	४४	४६	४८	५०	५२	५४	५६	५८	१	श.
	२	६०	५९॥	५९	५८॥	५८	५७।	५७	५६॥	५६	५५॥	५५	५४॥	५४	५३॥	५३	५२॥	५२	५१॥	५१	५०॥	५०	४९॥	४९	४८॥	४८	४७॥	४७	४६॥	४६	४५॥	२	
	८	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	८	
	९	६०	५८	५६	५४	[illegible]	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२	९	

अथ जन्मानि सर्वग्रहराशयो जन्मराशयस्तेभ्यः फलम् ।

चक्रेष्टवर्गपत्रात्तु स्वात्स्वात्स्वेस्वैंकयेत्क्रमात् ।
रेखैक्यं गोचरे भावे दाराद्न्यूनं न शोभनम् ॥
यथाऽधिकतरं श्रेष्ठं दीनानाथवचो यथा ॥ ५९ ॥

अर्थ—अष्टवर्ग जो नीचे चक्रमें दिये हैं उसमें अपने स्थानसे जो उनके पठित अङ्क हैं सो चक्रमें उन उन स्थानमें रेखा और जो स्थान पठितमें न हों उनमें शून्य लिखकर जोड करलेना जिस भावमें रेखा अट्ठाईससे कम हों उस भावका फल शुभ नहीं होता, और अट्ठाईससे जैसे जैसे रेखायें अधिक हों वैसा २ फल श्रेष्ठ जानना यह दीनानाथका कहा हुआ है ॥ ५९ ॥

अथ भावनामानि ।

देहस्वसहजाः सद्मपुत्रशत्रुकलत्रकाः ।
मृत्युर्धर्मश्च कर्मायव्यया भावाश्च लग्नतः ॥ ६० ॥

अर्थ—क्रमसे लग्नादि बारहों भावका नाम लिखते हैं—लग्नका नाम देह है अर्थात् शरीरके जितने नाम हैं वे सब लग्न बोधक हैं जैसे तनु, शरीर, वपु, देह, अंग, गात्र, काय इत्यादि शरीरवाची शब्द लग्नवाचीभी हैं। इसी प्रकारसे, लग्नसे द्वितीय स्थानका नाम स्व है, स्व धनका नाम है इसलिये धनवाची जितने शब्द हैं उन सभी शब्दोंसे द्वितीय भावका बोध होगा जैसे वित्त, द्रव्य, स्व, धन, द्राविण इत्यादि । लग्नसे तीसरा भाव (स्थान) का नाम सहज है, सहज भाईको कहते हैं इसीलिये भाईको कहनेवाले सभी शब्द तृतीय स्थानके बोधक हैं जैसे सहज, सहोदर, बन्धु इत्यादि । चतुर्थ भावका नाम सद्म है, सद्मनाम है गृहका इसलिये गृहवाची (गृह, गेह, वेश्म, सद्म, निकेत आदि) शब्द चतुर्थके बोधक हैं ग्रन्थान्तरमें चतुर्थका नाम सुखभी है । पञ्चमभावका नाम पुत्र है पूर्ववत् पुत्रवाची (पुत्र, सुत, आत्मज, अंगज इत्यादि) शब्दोंसेभी पञ्चमका बोध होता है । छठे स्थानका नाम शत्रु है, शत्रुवाची (शत्रु, अरि, रिपु, अराति आदि) शब्दोंसे षष्ठका बोध होता है । सप्तम भावका नाम कलत्र है अर्थात् स्त्रीवाची (कलत्र, स्त्री जाया, भार्या आदि) शब्दोंसेभी सप्तमका बोध होताहै और स्त्रीसम्बन्धी होनेसे मदन, मद भी नाम हैं । अष्टमका नाम मृत्यु है पूर्ववत् निधन मरण लय आदिभी समझना । नवम भावका नाम धर्म है पूर्ववत् पुण्य आदिभी हैं । दशम भावका नाम कर्म है । ग्यारहवें भावका नाम आय है

लाभभी कहते हैं । बारहवें भावका नाम व्यय है । मतलब यह है कि, जिस भावसे जिस विषयका विचार होताहै उसके जितने नाम कोशादिकर्मे मिलैं वे लेने योग्य हैं ॥ ६० ॥

अथान्यसंज्ञाः ।

केन्द्रं प्रथमचतुर्थसप्तमदशमम् । पणफरं द्वितीयपञ्चमाष्टमैकादशम् । आपोक्लिमं तृतीयषष्ठनवमद्वादशम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-अब जिस एक नामसे द्वित्र्यादि स्थानके बोध होते हैं उसको लिखता हूं। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम इन चारों स्थानोंके नाम केन्द्र है । द्वितीय, पञ्चम, अष्टम, ग्यारहवेंका नाम पणफर है । तीसरा छठा नौवाँ, बारहवाँका नाम आपोक्लिम है ॥ ६१ ॥

पुनः ।

उपचयं तृतीयषष्ठदशमैकादशम् । त्रिकोणं नवमपञ्चमम् । तपस्त्रित्रिकोणं नवमम् । चतुरस्रं चतुर्थाष्टमम् । निन्द्यं षष्ठाष्टमद्वादशम् । वेशिः सूर्याद्द्वितीयराशिः । वोशिश्चन्द्राद्द्वितीयश्च । वर्गोत्तमो राशौ स्वनवांशः ॥ ६२ ॥

अर्थ-तीसरा, छठा, दशवाँ और ग्यारहवाँ इन चारों स्थानोंको एक साथ कहनेके लिये उपचयसंज्ञा है । नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है । नवमस्थानका नाम तप और त्रित्रिकोण है चौथा और आठवाँको एक साथ कहनेके लिये चतुरस्र है अर्थात् चतुरस्र कहनेसे चतुर्थ अष्टम दोनोंका बोध होता है । छठा, आठवां, बारहवाँ स्थान निन्द्य कहाता है । सूर्यसे दूसरे स्थानका नाम वेशि है । चन्द्रमासे द्वितीय स्थानका नाम वोशि है जिस किसी राशिमें अपना नवमांश वर्गोत्तम कहाता है ॥ ६२ ॥

अथ राशिशीलम् ।

क्रूरपुरुषविषमोष्णा मेषमिथुनसिंहतुलाधनुःकुम्भाः । सौम्यस्त्रीसमशीता वृषकर्ककन्यावृश्चिकमकरमीनाः ॥ ६३ ॥

अर्थ-मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये छहों राशि क्रूर (पाप) हैं, पुरुष संज्ञक हैं विषम हैं और उष्ण प्रकृतिके हैं । वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक मकर और मीन ये छः राशि शुभ हैं स्त्रीसंज्ञक हैं सम हैं और शीतप्रकृतिके हैं ॥ ६३ ॥

चरा मेषकर्कतुलामकराः स्थिरा वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः।
द्विस्वभावा मिथुनकन्याधनुर्मीनाः ॥ ६४ ॥

अर्थ–चरादिसंज्ञा लिखते हैं–मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशि हैं । वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये स्थिर हैं । मिथुन,कन्या धनु और मीन ये द्विस्वभाव हैं ॥६४॥

ह्रस्वा मेषवृषभकुम्भमीनाः, समा मिथुनकर्कधनुर्मकराः
दीर्घाः सिंहकन्यातुलवृश्चिकाः ॥ ६५ ॥

अर्थ–मेष, वृषभ, कुम्भ और मीन ह्रस्व (छोटे आकारवाली) हैं । मिथुन कर्क, धनु और मकरके आकार सम (न छोटा न वडा मध्यम) हैं । सिंह, कन्या, तुल और वृश्चिक ये दीर्घ (लं-वे आकारवाली) हैं॥ ६५॥

शीर्षोदया मिथुनसिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाः ।
पृष्ठोदया मेषवृषकर्कधनुर्मकराः । शीर्षपृष्ठो-
दयो मीनः ॥ ६६ ॥

अर्थ–अव किस राशिके कौन भाग प्रथम उदय होता है सो लिखता हूं मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ शीर्षोदय हैं अर्थात् इन राशियोंके प्रथम मस्तक उदय होता है। मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर ये पृष्ठोदय हैं अर्थात् इन राशियोंके प्रथम पृष्ठ भाग उदय होते हैं पीछे मुख भाग मीनराशिका मुख और पुच्छ• दोनों साथ मिला हुआही उदय होता है ॥ ६६ ॥

अथ द्विपदादिसंज्ञा ।

द्विपदा मिथुनकन्यातुलाधनुः पूर्वार्धकुम्भाः ।
चतुष्पदा मेषवृषसिंहधनुरुत्तरार्द्धमकरपूर्वार्द्धाः ।
कीटौ कर्कटवृश्चिकौ । जलचरौ मकरोत्तरार्द्धमीनौ ॥ ६७ ॥

अर्थ–मिथुन, कन्या, तुला, धनुराशिका पूर्वका आधा और कुम्भ ये राशि द्विपद (दो पाँववाले) अर्थात् मनुष्य हैं । मेष, वृष, सिंह, धनुराशिका उत्तरार्द्ध (आखरीका पन्द्रह अंश) और मकरका पूर्वार्द्ध (पहला पैन्द्रह अंश) चतुष्पाद .(चार पांववाले) अर्थात् पशु हैं । कर्क और वृश्चिक कीट (कीडे), मकरका उत्तरार्द्ध और मीन जलचर हैं ॥ ६७ ॥

द्वादश राशयः ।

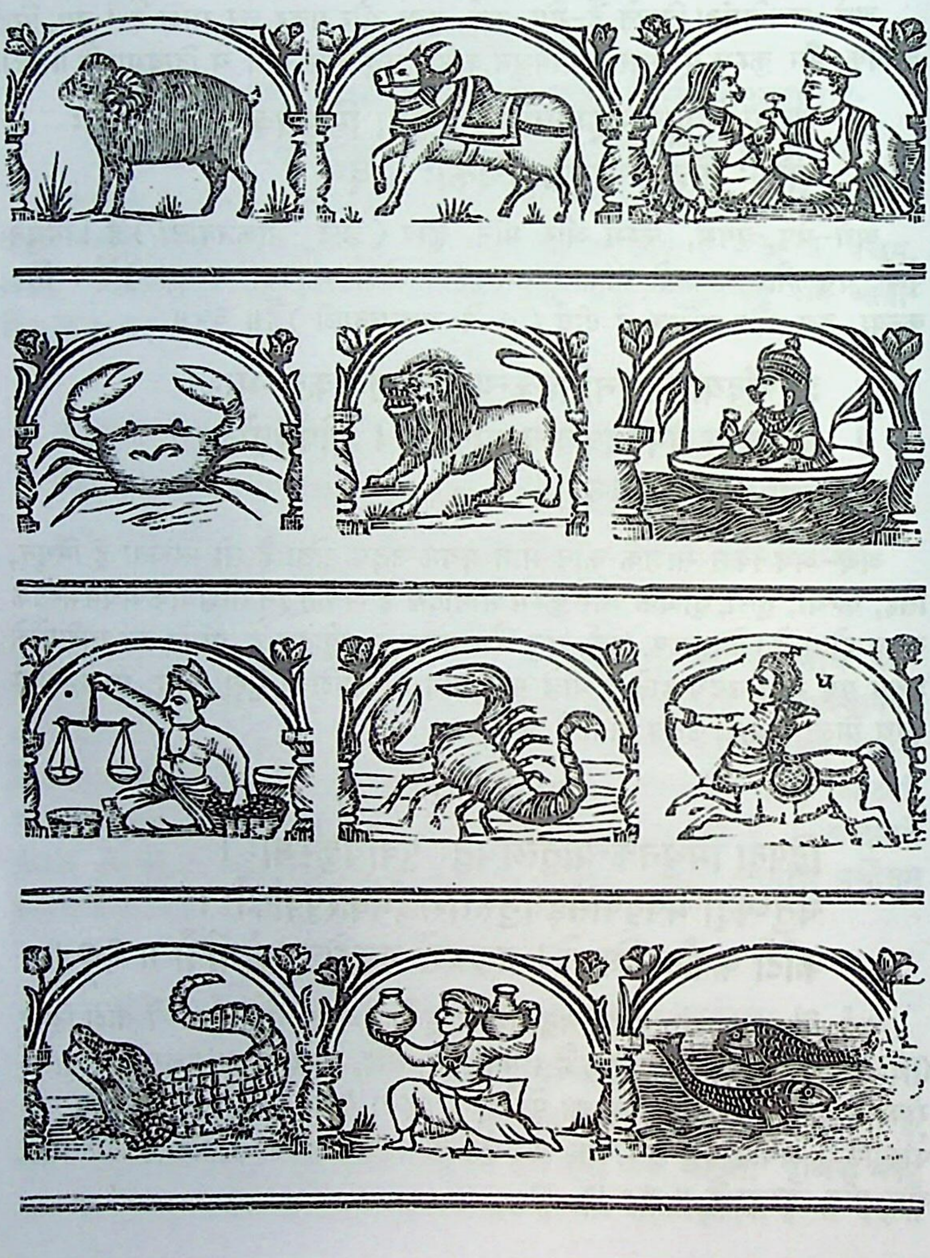

राशिभक्तयः ।

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	राशयः
रक्त	श्वेत	हरित	गुलाबी	धूम्र	चित्र	कृष्ण	पीत	पिंगल	कर्बुर	बभ्रु	स्वच्छ	वर्णाः १
मेषचार	गोकुल	नृत्यसमर	जल	कंन	स्त्रीगृह	विपणी				कुमारभांड		स्वचारनिवास २
अल्प	मध्य	मध्य	बहु	अल्प	अल्प	अल्प	बहु	अल्प	अल्प	मध्य	बहु	प्रजासंग ३
रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	तेज ४
अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	तत्त्व ५
पित्त	वायु	सम	कफ	पित्त	वायु	सम	कफ	पित्त	वायु	सम	कफ	प्रकृति ६
दिने अंध	दिने अंध	रात्रौ अंध	रात्रौ अंध	दिने अंध	रात्रौ अंध	दिने बधिर	दिने बधिर	रात्रौ बधिर	रात्रौ बधिर	दिने पंगु	रात्रौ पंगु	दिने रात्रौ विकृति ७
पितृ	आकाशदेवी	गोत्रदेवी	शाकिनी	प्रेततृ.	ग्रह	भैरव	नाग	देह	वंडिक	प्रेत	रोगि.	दोषाः

अथ ग्रहभक्तिः ।

भूपरक्तश्यामपुरुषदेहक्षत्रो आत्मा रविः ॥ ६८ ॥

अर्थ–सूर्य राजा हैं, लाल और श्याम मिले हुए वर्ण हैं, पुरुषदेह हैं अर्थात् पुरुषग्रह हैं क्षत्रिय वर्ण हैं और सर्व जीवोंके आत्मा हैं ॥ ६८ ॥

नृपगौरस्त्री मनो वैश्यश्चन्द्रः ॥ ६९ ॥

अर्थ–चन्द्रमा राजा हैं, गौर वर्ण हैं, स्त्रीग्रह हैं, प्राणियोंके मन है और वैश्य जाति हैं ॥ ६९ ॥

सेनापतिपाटलपुरुषबलक्षात्रियो भौमः ॥ ७० ॥

अर्थ–मङ्गल सेनाके स्वामी किञ्चित् लाल वर्ण, पुरुषग्रह, सब प्राणियोंके बल और क्षत्रिय जाति हैं ॥ ७० ॥

कुमारहरितनपुंसकवाणी शूद्रो बुधः ॥ ७१ ॥

अर्थ–बुध राजकुमार हैं, हरित् (हरा) अर्थात् दूबके सदृश वर्ण हैं; नपुंसकग्रह हैं. प्राणियोंकी वाणीके स्वामी हैं, शूद्र जाति हैं ॥ ७१ ॥

मन्त्री पीतपुरुषज्ञानसुखब्राह्मणो गुरुः ॥ ७२ ॥

अर्थ–गुरु (बृहस्पति) मंत्री (दीवान) हैं, इनका वर्ण पीत (पीला) हलदीके सदृश हैं पुरुषग्रह हैं, प्राणियोंके ज्ञान और सुखके स्वामी हैं, ब्राह्मण जाति हैं ॥ ७२

सचिवश्यामस्त्रीमदनविप्रः शुक्रः ॥ ७३ ॥

अर्थ–शुक्र सचिव (मन्त्री) हैं, श्याम वर्ण हैं, स्त्रीग्रह हैं, जीवोंके मदन (कंदर्प) के स्वामी हैं और ब्राह्मण वर्ण हैं ॥ ७३ ॥

सेवककृष्णक्लीबदुःखान्त्यजः शनिः ॥ ७४ ॥

अर्थ–शनि सेवक (दास) है, इनका वर्ण काला है, नपुंसक ग्रह हैं, प्राणियोंके दुःखदायक है और इनकी जाति अन्त्यज (चाण्डाल) है॥ ७४ ॥

चोरकृष्णपुरुषसर्पप्रेतचाण्डालो राहुः केतुश्च ॥ ७५ ॥

अर्थ–राहु और केतु चोर अर्थात् चोरोंके स्वामी हैं, इन दोनोंका वर्ण काला है, पुरुषग्रह हैं, सर्प, प्रेत, और चाण्डालोंके स्वामी हैं ॥ ७५ ॥

॥ ग्रहभक्त्यः ॥

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा	के	ग्रहाः	
४ पद	सरिसृप	४ पद	पक्षी	२ पद	२ पद	पक्षी	सरिसृप		जातयः	१
वन	जल	वन	ग्राम	ग्राम	जल	वन	वन		स्थान	२
पूर्व	प.	द.	उ.	उ.	पू.	प.	प.		मुख	३
ऊर्ध्व	सम	ऊर्ध्व	तिर्यक्	सम	तिर्यक्	अधा	अधा		दृष्टि	४
मध्याह्न	पराह्न	म.	प्रभात	प्र.	प.	संध्या	संध्या		बलसमय	५
मर्त्य	मर्त्य	नाग	स्वर्ग	स्वर्ग	नाग	नाग	नाग		लोक	६
मोती	रूपो	सीस	सुवर्ण	रत्न	रूपी	लोह	अस्थि		द्रव्य	७
□	स्थूल	□	०	०	खड	दीर्घ	दीर्घ		आकार	८
कटु	क्षार	कटु	तुवर	मिष्ट	अम्ल	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण		रस	९
राजा	तपस्वी	सुनार	ब्राह्मण	वणिक्	गणिका	निषाद	वृषल		उपश्रेयर्थ	१०
मूल	जीव	धातु	जीव	जीव	मूल	धा	धा	मू	पण्यंशाः	११
वृद्ध	मध्य	युवा	बाल	वृ	म	वृ	वृ		वय	१२
मास	दिन	मा	मा	वर्ष	मा	व	व	घ	अवधि	१३
मंडल	स्थान	स्था	स्था	देश	मं	दे	दे	म	स्वामिनः	१४
पुरुष	स्त्री	पु	क्लीब	पु	स्त्री	क्लीं	पु	पु	जातय।	१५
रक्त	श्वेत	रक्त	पीत	पीत	श्वत	कृ	कृ	कृ	वर्णाः	१६
४	५	४	५	५	५	४	४	४	विंशोपकाः	१७
अनेत्र	अजिह्वा	अने.	पुनाभी	आकर्ण	ज. जी.	बालक			महाभूतदेह	१८
भैरव	आकाश देवी	डाकिनी	वनदेवी	देव	जलदेवी		जाति	विपासमृत	स्वर्क्षादिभेदैर्दोषैः	१९
३।८।१२	१।६।८।१२	१०।१२	७।१२	७।१२	७।१२	७।१२	७।१२	३।६।९।१२	एषु स्थानेषु	

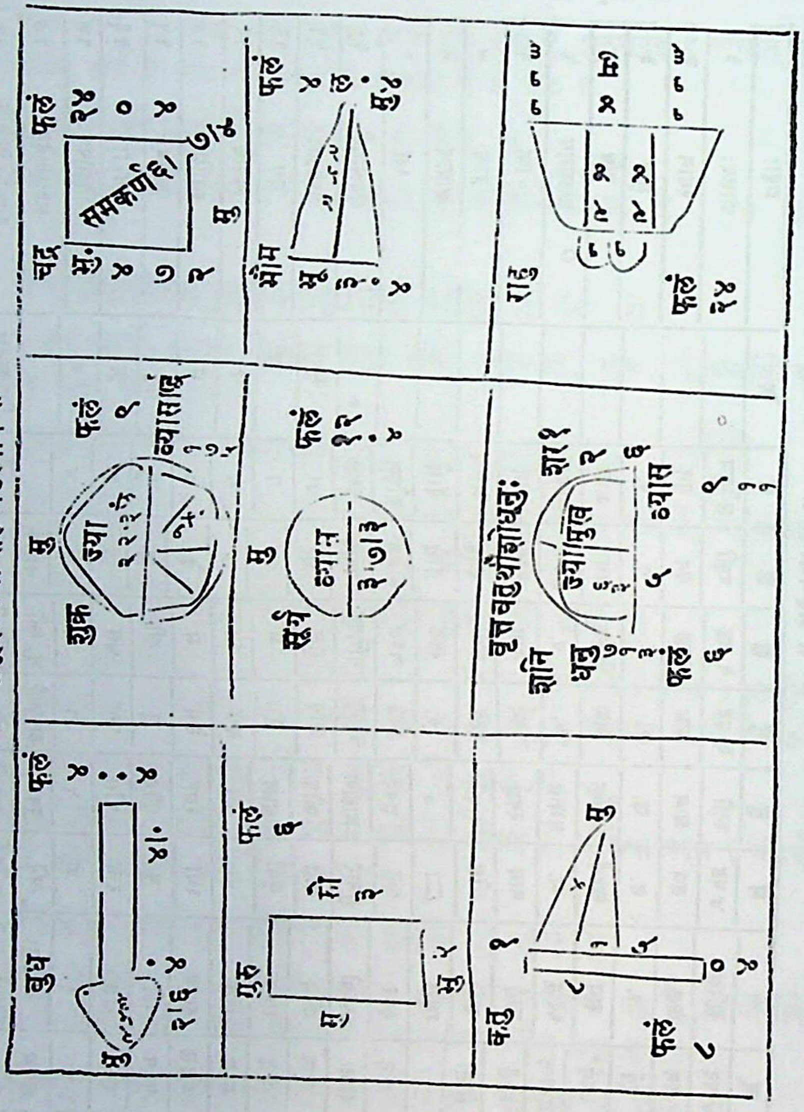
॥ ग्रहलेखाः सह मंडलानि ॥
बुध
शुक्र
चंद्र
गुरु
सूर्य
भौम
केतु
शनि
राहु

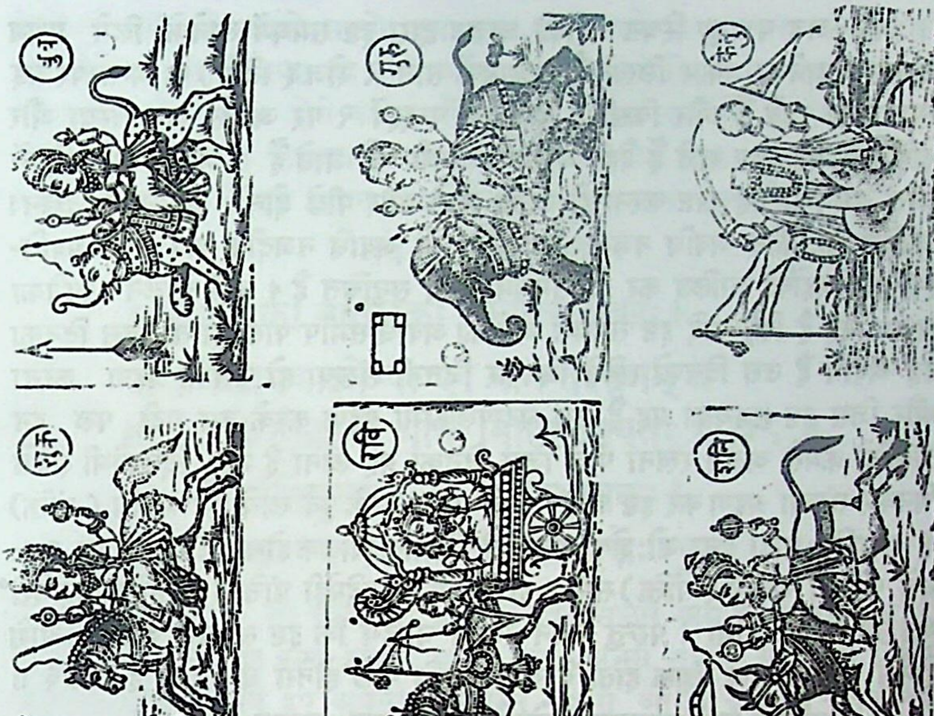

अथाऽवधेस्तात्कालिकग्रहसाधनम् ।

इष्टवारादिकं शोध्यमग्रावधि दिनादितः ।
इष्टवारादिकाच्छोध्यं पृष्ठावधि दिनादिकम् ॥ ७६ ॥

अर्थ–अब पञ्चाङ्ग स्थित ग्रहोंको चालन द्वारा इष्ट समयमें लानेके लिये प्रथम चालन बनानेका प्रकार लिखते हैं पञ्चाङ्गमें सात २ रोज (दिन) के अन्तरपर ग्रह स्पष्ट लिखे रहते हैं और किसी २ पञ्चाङ्गमें पन्द्रहवें २ पर अर्थात् अमावास्या और पूर्णिमाके ग्रह स्पष्ट रहते हैं वेही अवधिके नामसे कहे जाते हैं । अब जिस दिनमें जिस समयका ग्रह स्पष्ट करना हो उससे आगे और पीछे दोनों अवधिको देखना चाहिये कि, कौन अवधि नजदीक पाता है, जो अवधि नजदीक पावे उसी अवधिस्थ स्पष्ट ग्रहोंको चालित कर इष्ट समयमें लाना समुचित है । तहाँ चालन लानेका प्रकार यह है कि, यदि इष्ट समयसे आगेका अवधि समीप पाता हो तो जिस दिनका वह अवधि है उस दिनको रविसे गिनकर जितनी संख्या हो उसका ग्रहण करना और जिस इष्ट समयका ग्रह है उस घटीपलकाभी ग्रहण करके वार घटी पल इन तीनोंको क्रमसे अलग रखना पीछे जिस दिनका ग्रह लाना है उस दिनकोभी रविसे गिनकर संख्या ग्रहण कर इष्ट घटी पलभी ग्रहण करके पूर्व लाये हुए अवधि (पंक्ति) के वारादिमें घाटा देना जो शेष बचे वही दिनादि चालक होगा और यदि इष्ट समयसे पीछेका अवधि (पंक्ति) समीप हो तो इष्ट वारादिमेंही पंक्तिके वारादिको घटानेसे अवशेष चालक होगा । परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इष्ट समयसे अवधि ,आगे होनेसे चालक ऋण संज्ञक होता है और अवधि पीछे होनेसे धन होता है ॥ ७६ ॥

गतिघ्नं षष्टिहृल्लब्ध्या खेटो हीनो युतः स्फुटः ।
खखाभ्रगजवेदाश्च भोगनाडीहृता गतिः ॥ ७७ ॥

अर्थ–पूर्व श्लोकके अनुसार लाया हुआ जो चालन है उसको पृथक् २ गोमूत्रिकानुसार लिखकर अलग २ ग्रहोंके गतिसे गुणकर साठसें भाग लेनेपर जो लब्धि हो उसको अवधिस्थ ग्रहमें ऋण और युत करनेसे स्पष्ट ग्रह होंगे। अर्थात् पूर्व लाया हुआ चालन ऋण हो तो ग्रहमें लब्धि ऋण करना और धन हो तो योग करना फिर भभोगनाडी इष्टनक्षत्र सर्वर्क्ष (घटी पल) से एकतालीस हजारको भाग लेनेसे चन्द्रमाकी गतिं होती है ॥ ७७ ॥

अथ नक्षत्राद्ग्रहानयनम्।

षष्टिघ्नगतभैर्युक्तं षष्टिघ्नभगतात्फलम् ।
सर्वर्क्षेणाक्षविश्वाप्तः स्फुटो राश्यादिको ग्रहः ॥ ७८ ॥

अर्थ–यहाँ नक्षत्रपरसे ग्रह स्पष्ट लिखते हैं अश्विनीसे लेकर इष्टदिनपर्यन्त जितने नक्षत्र पूरे २ बीते हों उनको अश्विनीसे गिनकर जितने संख्या हों उनको साठसे गुणकर अलग रखना पीछे साठसे गुणा हुआ जो भयात है उसमें भभोगका भाग

देकर जो लब्धि हो उसको साठसे गुणा हुआ गतनक्षत्रमें जोडकर एक सौ पैंतीससे भाग देनेपर राश्यादि स्पष्ट ग्रह होंगे ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक ग्रहका पृथक् २ गत नक्षत्र और भजात होंगे कारण कि जो ग्रह जिस नक्षत्रमें इष्ट समयमें हैं उस नक्षत्रसे पहिले नक्षत्रतक गत नक्षत्र होंगे और जिस नक्षत्रमें हैं उसमें जितने बीत गया है वही भयात होगा पीछे राश्यादिक लाना सुलभ है ॥ ७८ ॥

अथ क्रान्तिपातज्ञानम् ।

ढभधोनशको नातैर्भक्तः स्वमयनांशकाः ।
धाराधिकाघणाशोध्या एवं नानन्तरमृणम् ॥
गुप्तमेतद्धि सिद्धान्ते प्रोक्तं मिहिरवाक्यतः ॥ ७९ ॥
एवं श्रीसूर्यसिद्धान्ततुल्यो ह्ययनभागकः ।
टर्भोनशाकः स्वन्कांशहीनो लिप्तादिकः स्फुटः ॥ ८० ॥

अर्थ—शाकेमें चार सौ चौंवालीस ४४४ घटाकर साठसे भाग देनेसे लब्धि जो हो वो धनात्मक अयनांश होगा अर्थात् ग्रहोंमें युक्त करनेसे सायन ग्रह होंगे । और यदि इस प्रकारसे लाये हुए अयनांश सत्ताईस २७ से अधिक हो तो चौवन ५४ में घटाकर जो शेष बचे वह ऋण अयनांश होगा अर्थात् जबतक शून्य अन्तर नहीं होगा तबतक ऋण होगा, ग्रहमें जहाँ अयनांश जोडते हैं वहाँ घटाना होगा । यह बात सिद्धान्तमें गुप्त है मैंने सूर्यके वाक्यसे लिखा है इस प्रकारसे सूर्यसिद्धान्तमें कहे हुए अयनांशके तुल्य होगा । अब अयनांश लानेका प्रकार लिखते हैं शाकेमें टर्भ (४२१) चार सौ इक्कीस घटाकर शेष जो बचे उसको दो जगह रखकर एक जगह दशसे भाग लेकर लब्धिको दूसरेमें घटानेसे कलादिक स्पष्ट होगा । इसमेंभी कला-स्थानमें साठका भाग लेनेसे अंशादिका अयनांश होगा । उदाहरण—शाके १८३८ है इसमें ४२१ घटाया तो १४१७ इसमें इसीका दशवां हिस्सा १४१ । ४२ को घटाया तो १२७५ । १८ रहा यह कलादि भया । कला स्थानमें साठ ६० का भाग देनेसे २१ । १५ । १८ यह सूर्य सिद्धान्तोक्त अयनांश भया और पहिले ४४४ शाकेमें घटाकर साठ ६० का भाग देकर जो होगा सो अन्य सिद्धान्तोंके मत है जैसे शाके १८३८ में ४४४ घटाया तो शेष रहा १३९४ इसमें साठका भाग दिया तो २३ । १४ अयनांश भया परन्तु यह सूर्यसिद्धान्तीय अयनांशसे स्थूल है । इन दोनों प्रकारसे लाये हुए जो अयनांश सो जब २७ से अधिक होगा तो ५४ में घटाकर शेष ऋण अयनांश माना जायगा ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ लग्नपत्रभावपत्रसारणीसाधनम् ।

यदंशे सायनाजार्कस्तत्कोष्ठे खं न्यसेत्ततः ।
क्रमेण प्राक्स्थानकांश्च स्वस्वखाग्न्यंशयोगजान् ॥ ८१ ॥

अर्थ–लग्न और भाव बनानेकी सारणी लिखते हैं–तहाँ बत्तीस रेखा आडी और चौदह रेखा तिरछीसे कोष्ठक बनाकर ऊपरके कोष्ठकमें शून्यसे लेकर २९ उनतीसतक लिखकर बायें तरफ मेषादि राशिभी लिखकर सायन सूर्य जिस दिन मेषमें प्रवेश करैं उस दिन निरयन सूर्यका अंश देखना चाहिये, जो अंश हो उस अंश तुल्य मीनके सामने कोष्ठकमें शून्य लिखकर पीछे उस राशियोंके जो स्वदेशीय या निरक्ष देशीय पलात्मक मान हैं उनमें तीसका भाग देकर जो लाभ हो उसको जोडनेसे सारणी बन जाती है। निरक्षदेशी उदय मानसे भावसारणी और स्वदेशी उदयमानसे लग्नसारणी बनती है। सारणी नीचे तैयार कर लिखी है ॥ ८१ ॥

अथ लग्नपत्रात्सूक्ष्मलग्नसाधनम् ।

खेराश्यंशजं कोष्ठं लग्नपत्रस्य चेष्टयुक् ।
तदल्पभांशं लग्नं स्यात्सूक्ष्मं चार्ककलान्वितम् ॥ ८२ ॥

अर्थ–अब सारणीसे लग्न बनानेका प्रकार लिखते हैं–जिस समयका लग्न साधन करना है उस समय सूर्य जिस राशिमें हैं उस राशिके सामने और जितने अंशमें सूर्य हों उस अंशके नीचेके कोष्ठकमें जो अंक हों उसमें इष्ट घटीको जोड़नेसे जो अङ्क हो उसको सारणीमें ढूँढना जहाँपर इसके बराबर या दो चार पलके आसन्न मिले उससे पहिले कोष्ठकके ऊपर जो अंश हो उसको लेना, और उसी कोष्ठकके बायें तरफ जो राश्यङ्क हैं सो लेना वह लग्नकी राशि अंश हो जायंगे। फिर सूर्यकी कला विकला मिलानेसे स्पष्ट लग्न होगा ॥ उदाहरण–सूर्य ०।२०।३८।१० हैं, इष्ट घटी १८।१७। यहां सूर्य मेष राशिके बीस अंशपर है, इसलिये बीसके नीचे मेषके सामने लग्नसारणीमें अङ्क ५। ३२ हैं इसमें इष्ट मिलाया तो २३। ४९ भया इसको ढूँढा तो सिंहके सामने पाँच अंशके नीचे आसन्न २३। ५८ मिला इससे पहिला अल्प २३। ४७ है, यह सिंह राशिके पाँचवें कोष्ठकके सामने है इसीलिये सिंहराशिमें चार अङ्क है सो राशि भई और अंश पाँच भया अर्थात् लग्न ४।५ इसमें सूर्यके कला ३८ विकला १० मिलाया तो ४।५। ३८।१० लग्नकी राश्यादि भई ॥ ८२ ॥

लग्नपत्रं अवंत्यां पलभा ५।० संवत् १८९९ अयनांशाः २२।०।०।

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९			
मे	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	म	३	०७
०	४७	५५	२	१०	१८	२५	३३	४०	४८	५७	५	१४	२३	३१	४०	४८	५७	६	१४	२३	३२	४०	४९	५७	६	१५	२३	३२	४१	४९	०	४८	३६
वृ	६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	वृ	४	०४
१	५८	७	१५	२४	३२	४१	५०	५८	७	१७	२७	३८	४८	५८	८	१८	२९	३९	४९	५९	९	२०	३०	४०	५०	०	११	२१	३१	४१	१	४९	३८
मि	११	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	मि	५	०१०
२	५१	२	१२	२२	३२	४२	५३	३	१३	२४	३६	४७	५८	१०	२१	३२	४४	५५	६	१८	२९	४०	५२	३	१४	२६	३७	४८	०	११	२	६	१२
क	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	क	५	०११
३	२२	३४	४५	५३	८	१९	३०	४२	५३	४	१६	२७	३८	४९	१	१२	२३	३५	४६	५७	९	२०	३१	४२	५४	५	१६	२८	३९	५०	३	४०	२०
सिं	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	सिं	५	०११
४	२	१३	२४	३५	४७	५८	९	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	५९	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	११	२२	४	३९	१८
क	२८	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	क	५	०१०
५	२३	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२७	३८	४९	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५०	५	२८	५६
तु	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	तु	५	०१०
६	१	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५१	२	१३	२४	३६	४७	५८	१०	२१	३२	४४	५५	६	१७	२९	४०	५१	३	१४	२५	६	२८	५६
वृ	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	वृ	५	०११
७	३७	४८	०	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४९	०	१२	२३	३४	४६	५७	८	२०	३१	४२	५४	५	७	३९	१८
ध	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	ध	५	०११
८	१६	२८	३९	५०	२	१३	२४	३६	४७	५७	७	१८	२८	३८	४८	५८	९	१९	२९	३९	४९	०	१०	२०	३०	४१	५१	१	११	२१	८	४०	२९
म	५०	५०	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	म	५	०१०
९	३१	४२	५२	२	१२	२२	३३	४३	५३	२	१०	१९	२८	३६	४५	५३	२	११	१९	२८	३७	४५	५४	२	११	२०	२८	३७	४६	५४	९	६	१२
कु	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	कु	४	०८
१०	३	१२	२०	२९	३७	४६	५५	३	१२	२०	२७	३५	४२	५०	५८	५	१३	२०	२८	३६	४३	५१	५८	६	१४	२१	२९	३६	४४	५२	१०	१९	३८
मी	५८	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	मी	३	०७
११	५९	७	१४	२२	३०	३७	४५	५२	०	८	१५	२३	३०	३८	४६	५३	१	८	१६	२४	३१	३९	४६	५४	२	९	१७	२४	३२	४०	११	४८	३६

अल्पेष्टविवरात्पार्श्वान्तरभक्तलवादियुक् ।
एवं कृते किमाधिक्यं ग्रहलाघवजे तनौ ॥ ८३ ॥

अर्थ—अल्प और इष्टका जो अन्तर उसका पार्श्वान्तरसे भाग लेकर जो अंशादिक हों उसको लग्नमें जोड देनेसे, ग्रहलाघवके रीतिसे बनाये लग्नमें क्या विशेष है ? अर्थात् कुछभी विशेष नहीं है ॥ ८३ ॥

अथ ज्ञातेङ्के समयसाधनम् ।

इच्छितं यदि लग्नं चेत्कोष्ठात्तस्यैव भांशजात् ।
रवेराश्यंशजं कोष्ठं शोध्यं स्युः स्वेष्टनाडिकाः ॥ ८४ ॥

अर्थ—अब लग्नपरसे इष्ट काल जाननेका प्रकार लिखते हैं—जिसी प्रकार लग्न साधनके लिये सूर्य राश्यंश परसे कोष्ठाङ्क ग्रहण किया है.वैसाही साधा हुआ जो अभीष्ट लग्न है उस लग्नके राश्यंशसे कोष्ठकाङ्क ग्रहण करके उसमें रविके राश्यंश परसे जो कोष्ठाङ्क हो उसको घटा देनेसे इष्ट घटी हो जायगी ॥ ८४ ॥

अथ लग्नपत्राद्दिनरात्रिमानसाधनम् ।

रवे राश्यंशजं कोष्ठमधस्तात्सप्तमात्त्यजेत् ।
दिनमानं भवेत्तत्तु षष्टिशुद्धं निशामितिः ॥ ८५ ॥

अर्थ—अब लग्नसारणीसेही दिनमान और रात्रिमानका ज्ञान लिखते हैं—सूर्यकी राशिके सामने सूर्यके अंशतुल्य कोठेमें जो अङ्क (घटी पल) हो उसको उसीसे नीचेके सातवें कोष्टक (कोठे) के अङ्कमें घटानेसे दिनमान होता है, इस दिनमानको साठमें घटानेसे रात्रिमान होता है । इसका उदाहरण सारणीसे मिलाकर देख लेनाही स्पष्ट है ॥ ८५ ॥

सषड्भार्ककोष्ठेरात्रिमानम् ।

दिनमानपत्रम् । अवंत्या पलभा ५ । ० चरखंडा ५० । ४० । १७ विंशत्यंक्षैरंशाणामूर्ध्वा रेखा, शके १७६४ अहनांशा २२ । ० । ० ॥

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९			
मे ०	३१ १३।	१६॥	२०	२३।	२६॥	३०	३३।	३६॥	३१ ४०	४२॥	४५।	४८	५०॥	५३।	५६	३१ ५८॥	३२ १।	३२ ४	६॥	९।	१२	१४॥	१७।	२०	२२॥	२५।	२८	३०॥	३३।	३२ ३६	मे ०	५०	१ ४०
वृ १	३२ २८॥	४१।	४४	४६॥	४९।	५२	५४॥	३२ ५७।	३३ ०	१ ८	२ १६	३ २४	४ ३२	५ ४०	६ ४८	७ ५६	९ ४	१० १२	११ २०	१२ २८	१३ ३६	१४ ४४	१५ ५२	१७ ०	१८ ८	१९ १६	२० २४	२१ ३२	२२ ४०	३३ ३३ ४८	वृ १	४०	१ २०
मि २	३३ २४ ५४	२६ ४	२७ १२	२८ २०	२९ २८	३० ३६	३१ ४४	३३ ३२ ५२	४३ ५४ ०	३३ ३२ ५२	३१ ४४	३० ३६	२९ २८	२८ २०	२७ १२	२६ ४	२४ ५६	२३ ४८	२२ ४०	२१ ३२	२० २४	१९ १६	१८ ८	१७ ०	१५ ५२	१४ ४४	१३ ३६	१२ २८	११ २०	३३ १० १२	मि २	१७	१ ३४
क ३	३३ ९ ४	७ ५६	६ ४८	५ ४०	४ ३२	३ २४	२ १६	३३ १ ८	३३ ०	३२ ५७।	५४॥	५२	४९।	४६॥	४४	४१	३८॥	३६	३३।	३०॥	२८	२५।	२२॥	२०	१७।	१४॥	१२	९।	६॥	३२ ४	क ३	१७	० ३४
सिं ४	३२ १।	३१ ५८॥	५६	५३।	५०॥	४८	४५।	४२॥	३१ ४०	३६॥	३३।	३०	२६॥	२३।	२०	१६॥	१३।	१०	६॥	३।	३१ ०	३० ५६॥	५३।	५०	४६॥	४३।	४०	३६॥	३३।	३० ३०	सिं ४	४०	१ २०
कं ५	३० २६॥	२३।	२०	१६॥	१३।	१०	६॥	३।	३० ०	२९ ५६॥	५३।	५०	४६॥	४३।	४०	३६॥	३३।	३०	२६॥	२३।	२०	१६॥	१३।	१०	६॥	३।	२९ ०	२८ ५६॥	५३।	२८ ५०	क ५	५०	१ ४०
तु ६	२८ ४६॥	४३।	४०	३६॥	३३।	३०	२६॥	२३।	२८ २८	१७।	१४॥	१२	९।	६॥	४	२८ १।	२७ ५८॥	५६	५३।	५०॥	४८	४५।	४२॥	४०	३७।	३४॥	३२	२९।	२६॥	२७ २४	तु ६	५०	१ ४०
वृ ७	२७ २१।	१८॥	१६	१३।	१०॥	८	५।	२॥	२७ ०	२६ ५८ ५२	५७ ४४	५६ ३६	५५ २८	५४ २०	५३ १२	५२ ४	५० ५६	४९ ४८	४८ ४०	४७ ३२	४६ २४	४५ १६	४४ ८	४३ ०	४१ ५२	४० ४४	३९ ३६	३८ २८	३७ २०	२६ ३६ १२	वृ ७	४०	१ २०
ध ८	२६ ३५ ४	३३ ५६	३२ ४८	३१ ४०	३० ३२	२९ २४	२८ १६	२६ २७ ८	२६ २८ ०	२६ २७ ८	२८ १६	२९ २४	३० ३२	३१ ४०	३२ ४८	३३ ५६	३५ ४	३६ १२	३७ २०	३८ २८	३९ ३६	४० ४४	४१ ५२	४३ ०	४४ ८	४५ १६	४६ २४	४७ ३२	४८ ४०	२६ [illegible]	ध ८	१७	० ३४
म ९	२६ ५८ ५६	५२ ४	५३ १२	५४ २०	५५ २८	५६ ३६	५७ ४४	५८ ५२	२७ ०	२७ २॥	५।	८	१०॥	१३।	१६	१८॥	२१।	२४	२६॥	२९।	३२	३४॥	३७।	४०	४२॥	४५।	४८	५०॥	५३।	२७ ५६	म ९	१७	० ३४
कुं १०	२७ ५८॥	२८ १।	४	६॥	९।	१२	१४॥	१७।	२८ २०	२३।	२६॥	३०	३३।	३६॥	४०	४३।	४६॥	५०	५३।	२८ ५६॥	२९ ०	३।	६॥	१०	१३।	१६॥	२०	२३।	२६॥	२९ ३०	कुं १०	४०	१ २०
मी ११	२९ ३३।	३६॥	०	४३।	४६॥	५०	५३।	२९ ५६॥	३० ०	३।	६॥	१०	१३।	१६॥	२०	२३।	२६॥	३०	३३।	३६॥	४०	४३।	४६॥	५०	५३।	३० ५६॥	३१ ०	३।	६॥	३१ १०	मी ११	५०	१ ४०

अथ जन्मसमयादाधानकालज्ञानं प्रश्नचन्द्रात्प्रसवज्ञानञ्च ।

गर्भोऽब्जांगे समेऽन्योन्यं प्राङ्मासे झेनके भवात्।
प्रश्नेऽब्जयुक्तकांशो यस्तद्भेऽब्जे पुरतो भवः ॥ ८६ ॥

अर्थ-अब जन्मके समयसे आधान ज्ञान लिखते हैं-जन्म समयसे पूर्व नवम या दशम मासमें चन्द्रमा और लग्न आपसमें बराबर हों उस समयका गर्भाधान कहना। और यदि कोई प्रश्न करे कि अमुक स्त्री गर्भवती है उसको कब सन्तान पैदा होगा ? उस समय चन्द्रमा जिस राशिके द्वादशांशके हों उसी राशिमें सम्भव मासमें जब चन्द्रमा होंगे तब जन्म कहना ॥ ८६ ॥

अथ नतोन्नतज्ञानम् ।

मध्याह्नात्स्वेष्टपर्यन्तः कालः प्रत्यङ्नतं भवेत् ।
निशार्द्धादुन्नतं चैवं त्रिंशच्छुद्धं तु प्राङ्नतम् ॥ ८७ ॥

अर्थ-अब नत और उन्नतका साधन लिखते हैं-दिनार्द्ध (दिनके दो पहर) से लेकर रात्रिके दो पहर तक यदि इष्ट काल हो तो इष्ट घटीमें दिनार्द्ध घटानेसे पश्चिम नत होगा। तथा दो पहर रातसे पीछे और दो पहर दिन पर्यन्त यदि इष्ट काल हो तो दो तरहसे उन्नत होता है जैसा कि सूर्योदयसे दिनार्द्धपर्यन्त इष्ट हो तो इष्टमें रात्र्यर्द्ध जोडनेसे और रात्रिशेषमें इष्ट हो तो इष्टमें दिनार्द्ध और तीसका योग घटानेसे उन्नत काल होता है इस उन्नतको तीसमें घटानेसे पूर्व नत होता है ॥ ८७ ॥

अथ नताद्दशमचतुर्थभावसाधनम् ।

लग्नवद्भावजे कोष्ठे रहितं प्राङ्नतं खभम् ।
युतं प्रत्यङ्नतं खं च तत्सषड्भं सुखं भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अब नतकालपरसे दशम (कर्म) भाव और चतुर्थ (सुख) भावका साधन लिखते हैं-लग्नके सारखेही भाव कोष्ठकसे सब साधन करके अर्थात् सूर्य जिस राशिके जितने अंशपर हों उस राशिके सामने अंशतुल्य कोष्ठकके नीचे भाव कोष्ठकमें जो अङ्क हो उसमें इष्ट घटी जोड देना बस इतने काम लग्नवत् भाव कोष्ठकसे करनेके पीछे पूर्व नत होय तो लाया हुआ जो अङ्क है उसमें नत घटानेसे और पश्चिम नत होय तो जोडनेसे जो अङ्क हो उसको भाव पत्रमें ढूँढना जहाँ मिले उसके सामने बायें तरफ राश्यङ्क लेना और उसी कोष्ठकके सबसे ऊपरके अङ्क अंश ग्रहण करनेपर दशम भाव होगा और दशम भावमें छः राशि जोडने पर सुख (चतुर्थ) भाव होता है ॥ ८८ ॥

भावपत्रं सर्वत्र शके १७६४ अयनांशाः २२ । ० । ० ।

अ.रा	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.	लं.द.	उ०भा.
मे	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	७	८	मे	२७८	०९
०	२४	३३	४२	५२	१	१०	१९	२९	३८	४८	५८	८	१८	२८	३८	४८	५८	८	१८	२८	३८	४८	५८	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	०		१६
वृ	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	वृ	२९९	०९
१	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४८	५९	९	२०	३१	४२	५२	३	१४	२५	३५	४६	५७	८	१८	२९	४०	५१	२	१२	२३	१		५८
मि	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	मि	३२३	०१०
२	३४	४५	५५	६	१७	२८	३८	४९	०	११	२२	३२	४३	५४	५	१५	२६	३७	४८	५८	९	२०	३१	४१	५२	३	१४	२५	३५	४६	२		४६
क	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२३	२३	२३	२३	२३	२३	क	३२३	०१०
३	५७	८	१८	२९	४०	५१	१	१२	२३	३३	४३	५३	३	१३	२३	३३	४३	५३	३	१३	२३	३३	४३	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	३		४६
सिं	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८	२८	सिं	२९९	०९
४	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३१	४१	५०	५९	८	१८	२७	३६	४५	५५	४	१३	२२	३२	४१	५०	०	९	१८	२७	३७	४		५८
क	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	क	२७८	०९
५	४६	५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१९	२८	३७	४६	५६	५	१४	२६	३३	४२	५१	०	१०	१९	२८	३८	४७	५६	५	१५	५		१६
तु	३३	३३	३३	३३	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३८	तु	२७८	०९
६	२४	३३	४२	५२	१	१०	१९	२९	३८	४८	५८	८	१८	२८	३८	४८	५८	८	१८	२८	३८	४८	५८	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	६		१६
वृ	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	३९	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	वृ	२९९	०९
७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४८	५९	९	२०	३१	४२	५२	३	१४	२५	३५	५६	५७	८	१८	२९	४०	५१	२	१२	२३	७		५८
ध	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	ध	३२३	०१०
८	३४	४५	५५	६	१७	२८	३८	४९	०	११	२२	३२	४३	५४	५	१५	२६	३७	४८	५८	९	२०	३१	४१	५२	३	१४	२५	३५	४६	८		४६
म	४८	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	म	३२३	०१०
९	५७	८	१८	२९	४०	५१	१	१२	२३	३३	४३	५३	३	१३	२३	३३	४३	५३	३	१३	२३	३३	४३	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	९		४६
कुं	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	४८	५८	कुं	२९९	०९
१०	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३१	४१	५०	५९	०	१८	२७	३६	४५	५५	४	१३	२२	३२	४१	५०	०	९	१८	२७	३७	१०		५८
मी	५८	५८	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	३	३	मी	२७८	०९
११	४६	५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१९	२८	३७	४६	५६	५	१४	२३	३३	४२	५१	०	१०	१९	२८	३८	४७	५६	५	१५	११		१६

अथ नतोन्नतं विना लग्नग्रहेभ्य स्तुयभावसाधनम् ।)

लग्नाद्ग्रहाद्वा रात्र्यर्द्धं लग्नपत्रेण साधयेत् ।
भावपत्रान्तदिष्टेन लग्नवत्स्वचतुर्थकम् ॥
सदोपयुक्तं मैत्र्यां च दशायां पाचकादिषु ॥ ८९ ॥

अर्थ–लग्नपरसे या ग्रहपरसे लग्नसारणी द्वारा रात्र्यर्द्ध लाकर भावपत्रद्वारा उस रात्र्यर्द्ध इष्टपरसे जो लग्न सिद्ध होगा वह चतुर्थ भाव होगा । यह चतुर्थ मैत्री, दशा अन्तरादिकमें उपयोग करने योग्य है ॥ ८९ ॥

अथ ससन्धिसर्वभावसाधनम् ।

विलग्नतुर्यं षड्भक्तं पंचवारं तनौ क्षिपेत् ।
एकार्द्धयुक्तास्ते व्यस्ता भावाः षट्षड्युताः परे ॥ ९० ॥

अर्थ–अब सन्धिसहित सर्वभावसाधन लिखते हैं–तहां चौथे भावमें लग्न घटाकर शेष जो बचे उसको छः से भाग देकर पाँचवार लग्नमें जोडते जाना, और ये पाँचों जगहं जो राश्यादि हों उसमें उलटा एकर बढाकर राशिस्थानमें जोडनेसे क्रमसे ससन्धि छः भाव हो जायँगे, पीछे क्रमसे लग्नादि छहों भावमें छः छः राशि मिलानेसे दूसरे छहों भाव होते हैं अर्थात् लग्नमें राशि मिलानेसे सप्तम, द्वितीयमें छः राशि मिलानेसे अष्टम इत्यादि जानना ॥ ९० ॥

अथ चलितभावबलयोः साधनम् ।

यस्यारम्भान्त्ययोः सन्ध्योर्मध्यस्थस्तद्गतो भवेत् ॥
भावतुल्ये बलं पूर्णं सन्धौ खमनुपाततः ॥ ९१ ॥

अर्थ–चलित करनेका प्रकार और भावबलसाधन लिखते हैं–भावके पूर्वसन्धिको आरम्भ सन्धि कहते हैं, और अगले सन्धिको अन्त्य सन्धि कहते हैं जिस भावके आदि और अन्त्य सन्धिके बीचमें ग्रह हों उसी भावमें उस ग्रहको जानना चाहिये और भावके तुल्य (बराबर) ग्रह होनेसे पूर्ण अर्थात् रूप (एक १) बल पाता है, तथा सन्धिके बराबर ग्रह होनेसे शून्य बल पाता है और भाव सन्धिके बीचमें ग्रहके होनेसे अनुपातसे बल जानना अर्थात् ग्रह और सन्धिका अन्तर करके भाव और सन्धिके अन्तरसे भाग देनेसे स्पष्ट बल होगा ॥ ९१ ॥

अथ चलितस्यावश्यकम् ।

चतुर्थे भवने सूर्याद्ज्ञाच्छौ वक्रोदयोऽप्यतः ।
रामांगचक्रं चलितेऽजार्के नन्दादितो यतः ॥ ९२ ॥

अर्थ-अब चलित करनेकी आवश्यकता लिखते हैं-प्रथम तो प्राचीन ग्रन्थमें वज्र जव आदिके योग लिखे गये हैं और उन योगोंके होनेमें जो लक्षण बृहज्जातकादि ग्रन्थोंमें लिखे हैं उन लक्षणोंमें सूर्यसे चौथे घरमें बुध और शुक्रको होनेसेही वज्रादि योग बनते हैं परन्तु सिद्धान्तकी युक्तिसे या गणितसे कथमपि सूर्यसे चौथे स्थानमें बुध और शुक्र नहीं होते हैं अतः सिद्ध होता है कि चलित मान करकेही प्राचीनोंने वज्रादि योग कहे हैं । दूसरी बात यह है कि त्रेतामें रामचन्द्रजीकी कुण्डलीमें सूर्य चलित होकरही मेषमें आया है कारण यह है कि यदि चलित नहीं माना जाय तो सिद्धान्तकी युक्ति और गणितसे चैत्रशुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्रमें जन्म होना असम्भव होगा । क्योंकि अमान्तके पीछे सूर्य चन्द्रका १२ बारह अंश अन्तर होनेपर एक तिथि होती है इस हिसाबसे अष्टमीके अन्तमें ९६ अंश अन्तर होना चाहिये नवमीमें औरभी अधिक परन्तु उस दिन मेषके आदिमेंही सूर्य माने जांय और चन्द्रमा पुनर्वसुके अन्तमें माने जायँ तोभी तिरानवे अंश बीस कलासे अधिक अन्तर नहीं हो सकता अतः चलित माननेपरही उन रामकी जन्मकुण्डली ठीक हो सकती है इसलिये प्राचीनोंसे स्वीकृत चलितको अवश्य मानना चाहिये ॥ ९२ ॥

सदानंददं रामचलितलग्नम् ।

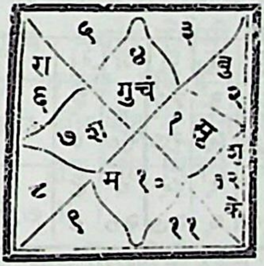

अथ भावगतग्रहफलानि ।

पापा ऋद्धिगताः श्रेष्ठास्त्रिनिन्द्यान्यगताः शुभाः ।
स्वाभाविका ज्ञः सद्रन्ध्रे नेष्टो भावे तनौ विधुः ॥ ९३ ॥

अर्थ-अब ग्रहोंके भावगत फल लिखते हैं-पापग्रह (सूर्य-क्षीणचन्द्र, मङ्गल, पापयुत बुध, शनैश्वर) ऋद्धि (उपचय)३ । ६ । १० । ११ इन स्थानोंमें होनेसे श्रेष्ठ फल देते हैं इनसे अन्य १ । २ । ४ । ५ । ७ । ८ । ९ । १२ स्थानोंमें अशुभ फल देते हैं । शुभ ग्रह (पूर्णचन्द्र, पापयोगरहित बुध, गुरु, शुक्र) तीसरा ३

निंच (६-८-१२) इन स्थानोंको छोडकर अन्य १ । २ । ४ ।५। ७ । ९ । १० । ११ स्थानोंमें होनेसे शुभफल देते हैं और ३ । ६ । ८ । १२ इनमें अशुभ फल देते हैं । अब विशेष कहते हैं कि बुध शुभ ग्रह होनेपरभी केवल अष्टम स्थानमें ही अशुभ फल देते हैं और चन्द्रमा शुभ होने परभी लग्नमें होनेसे अशुभ फल देता है ॥ ९३ ॥

अथोच्चनीचे ।

मेषो वृषो मृगः कन्या कर्कों मीनस्तुला रवेः ।
तुंगा नकैर्गैर्हरैर्भ्यैर्मैः स्वैर्नाखैः सनीचकाः ॥ ९४ ॥

अर्थ--अब ग्रहोंके उच्च नीच कहते हैं--रवि आदिके जो सातों ग्रह हैं उनको क्रमसे मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुलामें दश १०, तीन ३, अट्ठाईस२८ पन्द्रह १५, पाँच ५, सत्ताईस २७, वीस २० इतने २ अंशपर उच्च होते हैं और उच्चसे सातवें स्थानमें पूर्व कहे हुए अंशहीपर नीच होते हैं जैसे सूर्यका उच्च मेषके दश अंशपर है और नीच तुलाके दश अंशपर, चन्द्रमाका उच्च वृषके तीन अंशपर नीच वृश्चिकके तीन अंशपर, इसी प्रकार सभी ग्रहोंके चक्रसे उच्च नीच समझना ॥ ९४ ॥

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा	ग्रहाः
० १०	१ ३	९ २८	५ १५	३ ५	११ २७	६ २०	२ ०	भाद्युच्चं
६ १०	७ ३	३ २८	११ १५	९ ५	५ २७	० २०	८ ०	भादिनीचं

अथ ग्रहाणां मूलत्रिकोणराशयः ।

लेयगोजस्त्र्यश्विजूकघटा मूलत्रिकोणकाः ।
नखैर्नगैर्नरैर्नरैर्नरैर्नाखैर्लवै रवेः ॥ ९५ ॥

अर्थ--अब ग्रहोंके मूल त्रिकोण कहते हैं--लेय (सिंह), गो (वृष), अज (मेष) स्त्री (कन्या), अश्वि (धनु,), जूक (तुला) और घट (कुम्भ) इन राशियोंमें क्रमसे २०, ३०, २०, २०, २०, २०, २० इतने २ अंशपर रवि आदि ग्रहोंके मूलत्रिकोण होते हैं । नीचे चक्रमें स्पष्ट है ॥ ९५ ॥

मूलत्रिकोणभवनानि ।

सू	चं	मं	बु.	गु	शु	श	ग्रहाः
४	१	०	५	८	६	१०	राशयः
मू २० स्व १०	उ ३ मू २७	मू २० स्व १०	उ १५ मू ५ स्व १०	मू २० स्व१०	मू २० स्व१०	मू २० स्व १०	अंशाः

अथ निसर्गमैत्री ।

चन्द्रारेज्या रविबुधौ सूर्येन्द्वीज्या रविभृगू ।
सूर्येन्दुभौमा मन्दज्ञौ शुक्रज्ञौ सुहृदो रवेः ॥ ९६ ॥
सूर्याच्छुक्रशनी शून्यं ज्ञ इन्दुर्बुधभार्गवौ ।
रवीन्दू रविचन्द्राराः शत्रवः स्युः परे समाः ॥ ९० ॥

अर्थ–अब नैसर्गिक मैत्री लिखते हैं–रविके चन्द्रमा मङ्गल और बृहस्पति ये तीनों मित्र हैं । चन्द्रमाके रवि और बुध ये दोनों मित्र हैं । मङ्गलके सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति ये तीनों मित्र हैं ! बुधके रवि और शुक्र ये दोनों मित्र हैं । बृहस्पतिके रवि, चन्द्र और मङ्गल ये तीनों मित्र हैं । शुक्रके शनि और बुध ये दोनों मित्र हैं । शनिके शुक्र और बुध ये दोनों मित्र हैं ॥ ९६ ॥ रविके शुक्र और शनि ये दोनों शत्रु हैं । चन्द्रमाके शत्रु शून्य अर्थात् कोईभी ग्रह शत्रु नहीं । मङ्गलके बुध एकही शत्रु है । बुधके चन्द्रमा एकही शत्रु है । बृहस्पतिके बुध और शुक्र ये दोनों ग्रह शत्रु हैं । शुक्रके रवि और चंद्र ये दोनों शत्रु हैं । शनिके रवि, चन्द्रमा और मङ्गल ये तीनों शत्रु हैं । शत्रु और मित्रसे भिन्न (बचे) जो ग्रह सो सम होते हैं चक्रमेंभी स्पष्ट है ॥ ९७ ॥

अथ नैसर्गमैत्रीचक्रम् ।

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा के	ग्रहाणां
चं मं गु	सू बु	सू चं गु	सू शु	सू चं मं	बु श	बु शु	बु श	मित्राणि
बु	मं गु शु श	शु श	मं गु श	श	मं गु	गु	गु शु	समाः
शु श	०	बु	चं	बु शु	बु शु	सू चं मं	सू चं मं	शत्रवः

राश्यधिपतिचक्रम् ।

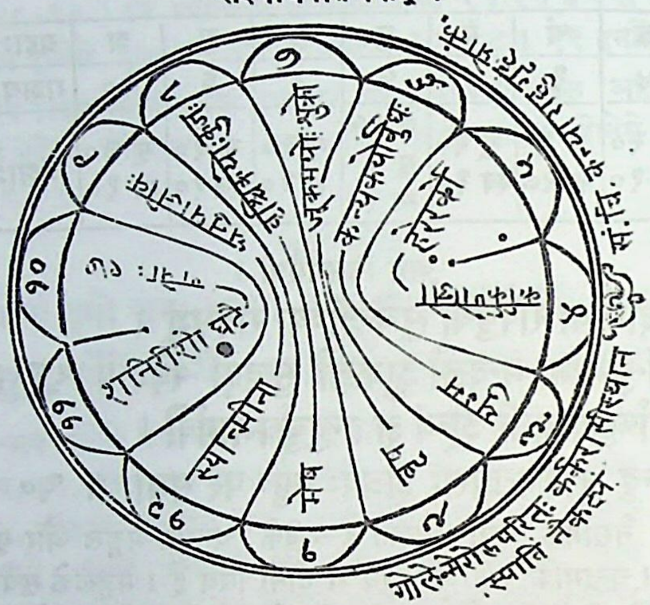

अथ तात्कालिकमैत्री ।

मित्राणि पार्श्वत्रयगास्तत्काले चान्यथाऽरयः ॥ ९८ ॥

अर्थ-अब तात्कालिक मित्र शत्रु लिखते हैं-जिस ग्रहका तात्कालिक मित्र विचारना हो वह ग्रह जिस स्थानमें हो उससे दोनों पार्श्व (बगल) तीन तीन स्थानके भीतर अर्थात् दूसरे, तीसरे, चौथे, दशवें ग्यारहवें और बारहवें स्थानमें जो ग्रह हो वे सभी मित्र होते हैं। और इन स्थानोंसे अन्य स्थानमें स्थित जो ग्रह सो शत्रु होते हैं। तात्कालिकमें सम नहीं होता है ॥ ९८ ॥

आभ्यां पञ्चधा मैत्री ।

मित्रं मित्रं चाधिमित्रं समो मित्रं तु मित्रकम् ।
मित्रं शत्रुः समः प्रोक्तः समः शत्रू रिपुः स्मृतः ॥
शत्रुः शत्रुश्चाधिशत्रुर्मैत्री स्यात्पञ्चधा खलु ॥ ९९ ॥

अर्थ-अब निसर्गमैत्री और तात्कालिक मैत्री इन दोनों मैत्रीपरसे पाँच प्रकारके मित्रादि संज्ञा कहते हैं-तहाँ निसर्गमें मित्र, सम, शत्रु, तीनों होते हैं और तात्कालिकमें मित्र, शत्रु दोही होते हैं। अब निसर्ग और तत्काल इन दोनोंमें जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र कहाता है १ और जो निसर्गमें सम,

और तत्कालमें मित्र हो वह मित्र होता है २, फिर दोनोंमेंसे किसी एकमें मित्र और दूसरेमें शत्रु होय तो सम होता है ३, निसर्गमें सम और तत्कालमें शत्रु हो तो शत्रु होता है ४, और जो ग्रह दोनोंमें शत्रु हो वह अधिशत्रु होता है ५, यही पाँच प्रकारके मित्रादि हैं ॥ ९९ ॥

अथ सप्तवर्गसंज्ञा फलञ्च ।

वर्गा भहोरा द्रेष्काणसप्तनन्दार्कत्रिंशकाः ।
उच्चस्वाधिसुहृद्भस्थः षड्वर्गेष्वपि राज्यदः ॥ १०० ॥

अर्थ–अब सप्तवर्ग कहते हैं–१ भ (राशि) २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ सप्तमांश ५ नवमांश, ६ द्वादशांश, ७ त्रिंशांश ये सातों वर्ग कहलाते हैं उच्च, स्वगृह और अधिमित्रके घरमें स्थित जो ग्रह तथा अपने षड्वर्गमें स्थित जो ग्रह सो राज्य देता है ॥ १०० ॥

अथ होरा द्रेष्काणसप्तमांशज्ञानम् ।

समे चन्द्रार्कयोर्होरे विषमे रविचन्द्रयोः ।
कमझानां द्रकाः सप्त विषमे स्वात्समेऽस्तभात् ॥ १०१ ॥

अर्थ–अब होरा, द्रेष्काण और सप्तमांश कहते हैं–राशिके आधेको होरा कहते हैं (समराशि वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन) में प्रथम १५ पन्द्रह अंशपर्यंत चन्द्रमाकी होरा होती है पीछे १५ पन्द्रह अंशसे ऊपर राश्यन्त (३० अंश) पर्यन्त सूर्यकी होरा होती है विषम राशिमें पहिला पन्द्रह १५ अंशतक सूर्यकी होरा पीछे चन्द्रमाकी होरा होती है । अब द्रेष्काण राशिके तीसरे हिस्सेको कहते हैं अर्थात् एक राशिमें दश २ अंशके तीन द्रेष्काण होते हैं इन तीनों द्रेष्काणके स्वामी क्रमसे क (पहिली) म (पाँचवाँ) झ (नवमाँ) राशिके द्रेष्काण होते हैं अर्थात् जिस राशिमें द्रेष्काण विचार करना हो उसमें प्रथम दश अंशतक उसी राशिका द्रेष्काण होता है फिर द्वितीय द्रेष्काण (दश अंशसे ऊपर वीस अंश पर्यन्त) उससे पञ्चम राशिका होता है और तृतीय द्रेष्काण (बीससे ऊपर तीस अंशपर्यन्त) उससे नवम राशिका द्रेष्काण होता है, इन राशियोंके जो स्वामी सो द्रेष्काणकेभी स्वामी होंगे। अब सप्तमांशका विचार ऐसा है कि एक राशि (तीसअंश) को सात हिस्सा करनेसे सप्तमांश होता है । विषम राशिमें उसी राशिसे सात राशियोंके क्रमसे सातों सप्तमांश होते हैं । सम राशिमें उससे सातवें राशिसे सात राशियोंके सप्तमांश क्रमसे होते हैं जैसे सम राशि प्रथम सप्तमांश सप्तमका दूसरा सप्तमांश अष्टमका तीसरा नवम राशिका इत्यादि ॥ १०१ ॥

अथ त्रिंशांशद्वादशांशज्ञानम् ।

विषमे ममजासी मैमैं कुंध मितुत्रिंशकाः ।
समभे मासि जामामै गोंकंमीमत्रीनाः स्वभात् ॥ १०२ ॥

अर्थ-अब त्रिंशांश और द्वादशांशज्ञान लिखते हैं-विषम राशिमें म (५) पांच अंशतक मे (मेष) का, पीछे फिर म (५) अर्थात् १० अंशपर्यन्त कुं (कुम्भ) का, इसके पीछे जा (८) अर्थात् १८ अंश पर्यन्त ध (धनु) का, फिर सी (७) अंश अर्थात् २५ अंश पर्यन्त मि (मिथुन) का, इसके पीछे म (५) अंश अर्थात् तीस अंश पर्यन्त तु (तुला) का त्रिंशांश होता है । इसी प्रकार सम राशिमें पाँचवा अंश तक वृष, बारह १२ अंशतक कन्या, बीस २० अंशतक मीन, पचीस २५ अंशपर्यन्त मकर, तीस ३० अंशपर्यन्त वृश्चिक त्रिंशांशका स्वामी होते हैं अर्थात् उक्त राशियोंके स्वामी त्रिंशांश स्वामी हैं । अब द्वादशांश जिस राशिका विचारना हो उसी राशिसे गणनाभी करनी चाहिये ॥ १०१ ॥

अथ ग्रहभावविचारः ।

दोषकृन्नच सर्वत्र स्वतुङ्गादि गतो ग्रहः ।
स्वाम्याभिदृष्टो युक्तश्च भावः खेटोऽपि वृद्धिदः ॥ १०३ ॥

अर्थ-ग्रह और भावके गुण दोष विचार लिखते हैं-पहिले जो निन्द्य स्थान लिखे हैं उसमें ग्रह होनेपरभी यदि अपने उच्च आदिसे और अपने गृहमें हो तो दोष नहीं करता, तथा शुभ ग्रह, स्वामीसे दृष्ट और युत भाव और ग्रहभी वृद्धिको देते हैं ॥ १०३ ॥

अथ जन्मवर्षप्रश्नादौ कार्यसिद्धिज्ञानम् ।

लग्नपः कार्यपश्चापि लग्नगौ कार्यगौ युतौ ।
मिथस्थौ स्वस्वगौ दृष्टौ स्वोच्चादौ चेत्सुसिद्धिदौ ॥ १०४ ॥

अर्थ-अब जन्मसमय, वर्षसमय और प्रश्नादि समयमें कार्य सिद्धिज्ञान लिखते हैं-जन्मसमयमें या वर्ष प्रवेश समयमें या प्रश्नसमयमें पहले लग्नका साधन कर लेना उस लग्नका जो स्वामी सो लग्नेश कहाता है, फिर जिस विषयका विचार करना हो सो जिस भावसे विचारा जाता हो (जैसे स्त्री विचार सप्तम भावसे, पुत्रविचार पञ्चमसे, सुखविचार चतुर्थसे इत्यादि) उस भावका स्वामी कार्येश कहलाता है अब

कार्येश और लग्नेश दोनों लग्नमें हों तो कार्यकी सिद्धि होती है यह पहला योग भया अथवा लग्नेश और कार्येश दोनों कार्य स्थानमें हो तो कार्य सिद्धि होती है यह दूसरा योग भया । अथवा जिसकिसी स्थानमें लग्नेश और कार्येश साथ हो तो कार्य सिद्धि होती है यह तीसरा योग भया । अथवा लग्नेश कार्य स्थानमें हो और कार्येश लग्नमें हो तो कार्यकी सिद्धि होती है, यह चौथा योग भया । अथवा लग्नेश लग्नमें हो और कार्येश कार्यभावमें हो तो कार्यकी सिद्धि होती है, यह पाँचवां योग भया। अथवा जिस किसी स्थानमें लग्नेश और कार्येश हों परन्तु आपसमें देखता हो तो कार्य सिद्धि होती है, यह छठा योग भया। अथवा लग्नेश और कार्येश अपने २ उच्च या स्वगृहके हों तो कार्यसिद्धि होती है, यह सातवाँ योग भया। बस इन सात योगोंमेंसे कोई योग हो तो कार्य सिद्धि कहनी अन्यथा नहीं ॥ १०४ ॥

अथ षोडशयोगमूलभूतेत्थशालज्ञानम् ।

इत्थशालोऽल्पोऽनयोः सन् शीघ्रोंशैर्दृग्यदैतयोः ।
व्यारार्क्यन्तर्गतो दीप्तोऽर्कान्म्या रव्याजसझासझैः ॥ १०५ ॥

अर्थ-अब इत्थशालका लक्षण कहते हैं-पूर्व कहे हुए लग्नेश और कार्येश इन दोनोंमें जो शीघ्रगतिवाला हो अर्थात् जिसकी गति अधिक हो सो जिस किसी राशिमें मन्द गती ग्रहकी अपेक्षा थोडा अंशका हो और वह मन्दगती ग्रह शीघ्र गती ग्रहकी दीप्तांशमें वर्त्तमान हो तो इत्थशालयोग होता है । अब सूर्यादि ग्रहोंके क्रमसे १५ । १२ । ८ । ७ । ९ । ७ । ९ ये दीप्तांश हैं परन्तु मङ्गल और शनिको छोडकर सूर्यसे अपने २ दीप्तांशके भीतर आजाने पर सभी दीप्त होते हैं ॥ १०५ ॥

अथ द्विधाकार्यावधिज्ञानम् ।

इन्दुदृग्योगतो लग्धिश्चारात्कार्यांगयोर्युजि ॥ १०६ ॥

अर्थ-पूर्वश्लोकोंमें जो लग्नेश और कार्येशसे कार्यसिद्धि कहा है सो कब होगा ? उसका ज्ञान लिखते हैं चन्द्रमाकी दृष्टि और योगसे जो समय आवे उस समयमें अथवा चारक्रमसे जब लग्नेश और कार्येशका योग (मिलाप) होवे सो पञ्चाङ्ग द्वारा निश्चय करके कार्यसिद्धिका समय कहना ॥ १०६ ॥

अथ प्रकारान्तरेणावधिज्ञानम् ।

षण्माः क्षणो दिनमृतुर्माः पक्षोऽब्दोऽवधी रवेः ।
प्रश्नलग्नांशपवशादुदितांशकसंख्यकः ॥ १०७ ॥

अर्थ–अब प्रकारान्तरसे कार्यसिद्धिके अवधि कहते हैं–प्रश्नकालमें जो लग्न हो उस लग्नके नवांशपतिके वशसे काल ज्ञान होता है और रवि नवांशप हो तो छः मास (एक अयन), चन्द्र हो तो क्षण, मंगल हो तो दिन, बुध होतो ऋतु, बृहस्पति हो तो मास, शुक्र हो तो पक्ष, शनि हो तो वर्ष अवधि जानना। परन्तु कितने मास अयन, या कितने क्षण या कितने दिन इत्यादि जाननेके लिये उदितांश देखना चाहिये अर्थात् जितने अंशपर हो उतनीही संख्या कहनी चाहिये ॥ १०७ ॥

अथ केन्द्रायुर्मानज्ञानम् ।

केन्द्रांकसंख्या त्रिगुणा शुभखेटाङ्कसंयुता ।
पापाङ्कहीना स्यादायुः शतायुः सर्वसम्मतम् ॥ १०८ ॥

अर्थ–अब आयुका प्रमाण जानना लिखते हैं–प्रत्येक कुण्डलीमें केन्द्र चार होते हैं सभी केन्द्रको मेषादिसे गिनकर जो संख्या हो उन सब अङ्कोंका जोड करके तीनसे गुणा करना पीछे मेषसे गिनकर सब शुभ ग्रहोंका अङ्क जोडकर मिला देना और पाप ग्रहोंके जो मेषसे गिनकर अङ्क हों सो घटा देना तो आयु हो जायगा यह शतायु सर्वसम्मत है ॥ १०८ ॥

अथ मध्यमस्पष्टांशायुर्ज्ञानम् ।

नवांशो यस्य राशेश्च तत्सङ्ख्याब्दोऽत्र जायते ।
ग्रहाङ्गमष्टाभ्रेन्दुघ्नं राश्यूर्ध्वं चार्कशेषितम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–अब मध्यम और स्पष्ट अंशायु लानेका प्रकार लिखते हैं–ग्रह और लग्नसे जिस राशिका नवमांश हो उसको मेषसे गिनकर ग्रहण करना जैसे वृषराशिमें रवि कुम्भके नवमांशमें है तो ११ ग्रहण करना ऐसे लग्नसहित सभी ग्रहोंका आनकर योग करनेसे जो वर्ष होगा वह मध्यम अंशायु होगी। स्पष्ट लानेका प्रकार यह है कि, ग्रह और लग्नको अंशात्मक राशिको ३० से गुणाकर अंशयुक्त कर एक सौ आठ १०८ से गुणकर बारहसे भाग देनेपर जो शेष रहेगा वही उस ग्रहकी अंशायु होगी इसी प्रकार सब ग्रहोंके आनकर योग करनेसे स्पष्ट आयुर्ज्ञान हो जायगा ॥ १०९ ॥

मध्यांशायुः स्फुटं त्रिघ्नं स्वोच्चवक्रगते ग्रहे ।
वर्गोत्तमस्वदृग्नन्दभागे द्विघ्नमुदाहृतम् ॥
लग्नं युतं राशितुल्यैर्वर्षैश्चेत्सबला तनुः ॥ ११० ॥

अर्थ-अब पूर्व श्लोकसे लाये हुए जो मध्यमांशायु या स्पष्टांशायु सो कहीं २ द्विगुणित (दूना) त्रिगुणित (तिगुना) भी होता है उसको कहते हैं-जो ग्रह अपने उच्चके या वक्रगतिवाला हो उस ग्रहकी आयुको त्रिगुण करना चाहिये और जो ग्रह वर्गोत्तम स्वद्रेष्काण, स्वनवमांश, स्वराशिमें हो उसकी आयुको द्विगुण करना चाहिये । और यदि लग्न बलवान् होय तो पूर्व प्रकारसे लाई हुई जो अंशायु है उसमें राशि तुल्य वर्ष और मिलानेसे लग्नकी आयु होगी ॥ ११० ॥

अथ शत्रुनीचास्तहानिः ।

त्र्यंशोनं भौमरहिते शत्रुगे नीचगेऽर्द्धकम् ।
अस्तेऽर्द्धकं विनार्क्यच्छौ द्विद्विव्याप्तौ स्मृताधिका ॥ १११ ॥

अर्थ-अब शत्रुके स्थान, नीच और अस्तगत ग्रहकी आयुमें हानि लिखते हैं- मङ्गलको छोडकर शत्रुस्थानमें स्थित जो ग्रह सो अपनी तिहाई (तीसरा हिस्सा) आयुको कम करता है। और नीचमें जो ग्रह हो वह अपनी आधी आयुको कम ता है । शुक्र और शनिको छोडके सूर्यके साथ होनेसे अस्त हुआ जो ग्रह सोभी आधी आयुको कम करता है । अब इस प्रकारसे जिन २ ग्रहोंमें दो २ हानि प्राप्त हों अर्थात् जो ग्रह शत्रुके गृहमें होकर अस्त हो उसकी शत्रुके घरमें होनेसे तृतीयांश आयु कम करनी चाहिये और अस्त होनेसे आधी आयु कम करनी चाहिये यहाँ दोनों हानि प्राप्त हैं ऐसे जगह दोनों हानियोंमेंसे जो अधिक हानि होता हो सोही करना अर्थात् त्र्यंश, आधा दोनों हानि प्राप्त होनेसे एक आधी हानि करनी चाहिये ॥ १११ ॥

अथ चक्रपातार्द्धहानिः ।

व्ययाद्वामं समग्रार्द्धत्रिचतुःपञ्चषष्ठकम् ।
भागं हरति पापः सन् तदर्द्धं द्वित्रिके बली ॥ ११२ ॥

अर्थ-चक्रार्द्धहानि लिखते हैं-जन्मकुण्डलीमें लग्नसे जो बारहवाँ स्थान है उससे १२ । ११ । १० । ९ । ८ । ७ इन स्थानोंमें जो पाप ग्रह हों उनकी आयुमें क्रमसे सब, आधा, तृतीयांश (तीसरा हिस्सा), चतुर्थांश, पञ्चमांश, षष्ठांश हानि होती है अर्थात् जो पाप ग्रह लग्नसे बारहवें स्थानमें हो उस ग्रहकी पूर्वगणितानुसार लाई हुई आयु समूचा नाश हो जाती है (उसकी आयु शून्य होता है), और जो पाप ग्रह लग्नसे ग्यारहवें भावमें हो उस ग्रहकी आधी आयु कम होती है, जो लग्नसे दशम लग्न ग्रह हो उसकी तिहाई कम आयु होती है, जो

पाप ग्रह नवममें हो उसकी आयु चतुर्थांश कम होती है, जो पाप ग्रह आठवें स्थानमें हो उसकी आयुमें पञ्चमांश हरण (कम) होता है, और लग्नसे सप्तम स्थानमें स्थित पाप ग्रहकी पूर्वानीत आयुमें षष्ठांश कम होता है । शुभ ग्रह यदि लग्नसे इन्हीं १२ । ११ । १० । ९ । ८ । ७ स्थानोंमें हों तो पूर्व जो पाप ग्रहके लिये उस स्थानमें हानि कही गई है उसकी आधी हानि होती है जैसे बारहवें स्थानमें शुभ ग्रह हो तो आधी आयु कम होती है, ग्यारहवेंमें शुभ ग्रह हो तो चतुर्थांश, दशममें षष्ठांश, नवममें अष्टमांश, अष्टममें दशमांश, सप्तममें द्वादशांश आयु कम होती है, और यदि उक्त हानिके स्थानोंमें दो तीन ग्रह हो तो उन दोनों तीनोंमें जो अधिक बलवाला हो उसकीही आयुमें हानि करनी चाहिये ॥ ११२ ॥

अथ रिष्टतद्भङ्गज्ञानम् ।

अष्टमेशस्तथा दृक्केट् रन्ध्रस्य च व्ययाधिपः ।
रिष्टदास्तद्भंगदाः स्युः शुभाः कण्टककोणगाः ॥ ११३ ॥

अर्थ–अब रिष्ट और रिष्टभंग कहते हैं–अष्टमेश (लग्नसे अष्टम स्थानका स्वामी), तथा अष्टमके द्रेष्काणके स्वामी, और लग्नसे बारहवें स्थानके स्वामी यही तीनों रिष्टकारक होते हैं, परन्तु कण्टक (केन्द्र) १ । ४ । ७ । १० और कोण ९ । ५ में यदि शुभ ग्रह स्थित हों तो रिष्टका भङ्ग करते हैं ॥ ११३ ॥

यथा गणिते त्रैराशिकेनोपपत्तिस्तथा फलिते
कक्षावशतोऽनेन भचक्रेण ।

अर्थ–इस प्रकारसे गणितग्रन्थमें त्रैराशिकसे सब उपपत्ति होती है उसी रीतिसे फलित ग्रन्थमें कक्षापरसे नीचे लिखे भचक्रके द्वारा होते हैं ।

ग्रहाणां क्षेत्रादीनां १ क्षेत्राधिपकारणस्य २ मनोदेहा-
दीनां ३ पुंस्त्र्यादीनां ४ भूपत्वादीनां ५ शुभपापयोः ६
तथा क्रूरविषमोष्णादीनां राशीनां ७ फलितस्य च ८
उपपत्तिर्भवतीति मम प्रतिभाति ॥

अर्थ–ग्रहोंके जो क्षेत्र (राशि) कही है, उन क्षेत्रोंके स्वामी होनेका कारण, मन और देहादिमें ग्रहोंका सम्बन्ध, राशि तथा ग्रहोंमें पुरुष और स्त्रीत्वका कथन, ग्रहोंमें राजा और मन्त्री आदिका कथन, शुभ और पापका कथन, पाप विषम उष्ण आदि राशियोंका कथन और इनके साथ फलितकी भी उपपत्ति होती है ऐसी मुझको प्रतीति होती है अर्थात् ग्रहोंमें और राशियोंमें जो ये सब लिखे गये हैं

कि, अमुक राशिके स्वामी अमुक अमुक ग्रह राजा इत्यादिककी युक्तिभी कक्षासे विदित होती है उसको आगे कहते हैं ॥

सा चेत्थम्-अथ ऊर्द्धकक्षाग्रहाणां शीघ्रादिगतिभिर्दृशो ज्ञायन्ते ताश्चोक्ता वसिष्ठसिद्धान्ते ॥

अर्थ-वह उपपत्ति ऐसी है कि, नीचे और ऊपर जो ग्रहोंकी कक्षाये हैं सो शीघ्र और मन्दादि गतियोंद्वारा दृष्टिसे जानी जाती है उन कक्षाओंके प्रमाण वसिष्ठसिद्धान्तमें लिखा है ॥

वेदषट्काष्टशून्याष्टखरव्यद्रिगजेन्दवः ।
सहस्रघ्ना भवेत्कक्षा गगनस्य महायुगे ॥
स्युः शुक्रार्कविदां कक्षा खाभ्रेष्वेकामराब्धयः ॥ १ ॥
इत्यादि कक्षाभ्यो भगणोच्छित्यादयोऽपि भवन्तीति ।

अथ-हजारसे गुणा हुआ जो अठारह १८ पद्म एक हत्तर ७१ कोटि बसि २० लाख अस्सी ८० हजार आठ सौ चौसठ ६४ अर्थात् १८७१२०८०८६४००० इतने महायुगकल्पमें आकाशकी कक्षाको ग्रह भोगते हैं और शुक्र, सूर्य, बुध इनकी कक्षा तैंतालिस ४३ लाख एकतीस ३१ हजार पाँच ५० सौ है अर्थात् ४३३१५०० इन कक्षाओं परसे ग्रहोंके ऊँचाई आदि भी जाने जाते हैं अर्थात् कौन ग्रह पृथ्वीसे कितने योजनपर हैं सो भी ज्ञात होते हैं ॥ इति ॥

अथ ग्रहाणां योजनात्मिका गतिस्तु समैव ११८५९ कलादिकल्पनयाऽग्रे कथ्यते॥

अर्थ-अब सब ग्रहोंके योजनात्मिका गति तो तुल्य (बराबर) ही हैं परन्तु कलादि कल्पनासे न्यून और अधिक गतिवाले होते हैं सो आगे कहते हैं ॥ ८ ॥

आदौ समुद्रे मीनाद्धीतेनाऽमृतमयेनातिशीघ्रगामिनेन्दुना स्थातुं मेरोरुपरितोऽत्यासन्नं समालपजलं कर्कगृहं गृहीतम्, ततः स्पर्धया शीघ्रेणोष्णरश्मिनात्युग्रं वनपर्वतादियुतं विषमं सिंहालयं गृहीतम्, ततो लोभात्सूर्यासन्नं चन्द्रेण चन्द्रासन्नं सूर्येण गृहीतमिति षट्षड्राश्यधिपावभूताम् ॥

अर्थ-अब राशियोंके स्वामीकी उपपत्ति लिखते हैं पहले सृष्टिके पीछे समुद्रमें मछलियोंके भयसे अमृतमय जो चन्द्रमा अपने रहनेके लिये सुमेरु पर्वतके ऊपर अत्यन्त समीप समान थोडा जलवाला कर्क नामका घर ग्रहण कर लिये । तब चन्द्रमाके इस कामको देख सूर्य बहुत शीघ्र ईर्षा करके अत्यन्त उग्र, वनपर्वत आदिसे युत विषम जो सिंहका घर ग्रहण किये पीछे चन्द्रमा और सूर्य ये दोनों छः छः राशि अपने २ तरफकी ग्रहण कर लिये तब दोनों छः छः राशिको स्वामी भये ॥

ततो हास्यादिभिस्तुष्टौ त्रिमूर्तिद्विजराजौ शीघ्रसहायाय समशीघ्राय बुधाय, ततः समाय शुक्राय, ततः समभदाय भौमाय, ततो मन्दाय गुरवे, ततोऽतिमन्दाय शनये रक्षितायाः उर्व्याः षष्ठांशमिव षड्वर्गेष्वन्त्यजवर्गं त्रिंशांशं त्यक्त्वा आद्यमहोरात्रविकल्पं होरावर्गरूपं करं गृहीत्वा प्रत्येकस्मै स्वस्वासन्नमेकैकालयं ददतुः अतो रविचन्द्रयोर्होरे नान्येषाम् ॥

अर्थ-तब हास्यादिसे प्रसन्न होकर सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों शीघ्र सहाय होनेवाला सम शीघ्र है गति जिसकी ऐसे जो बुध उसको अपने २ पार्श्वका एकर घर देदिये अर्थात् चन्द्रमाका घर कर्क है उसके पार्श्व (बगल) में मिथुन है सो चन्द्रमाने बुधको दिया और सूर्यका गृह है सिंह उसके बगलमें है कन्या सो कन्याराशि सूर्यने बुधको देदिया तब बुध दो स्थानका स्वामी हो गया, इसी प्रकार सम शुक्रकोभी पार्श्ववर्ती एकेक राशि दिये अर्थात् शुक्रको चन्द्रमाने वृष दिया और सूर्यने तुला. पीछे सममदयुक्त मङ्गलको चन्द्रमाने मेष, और सूर्यने वृश्चिक दिये तब मन्दगति बृहस्पतिको चन्द्रमाने मीन और सूर्यने धनु दिया । इसके पीछे अत्यन्त मन्द गतिवाले शनैश्चरको चन्द्रमाने कुम्भ राशि दिया और सूर्यने मकर राशि देदिया इस प्रकार पृथ्वीके षष्ठांशके नाईं षड्वर्गमेंभी त्रिंशांशको छोड कर अहोरात्रि विकल्प होरारूप करके ग्रहण करके वाँट दिये । इसलिये होरा केवल चन्द्रमा और सूर्य ये दोहीके होते हैं दूसरेके नहीं ॥

रविचन्द्रयोरेकैकालयं द्विव्यालयाधिकम् । उक्तञ्च बृहज्जातके "द्रेकाणुक्तभपान्सुहृत्समारिपून्संचिन्त्य नैसर्गिकान्" इत्यत्र रविचन्द्रावेकराशीशावपि मित्रे इति ॥

अर्थ-अब पूर्वोक्त प्रकारसे वाँट करने पर चन्द्रमा और सूर्यको एक राशि ही रह गये, परन्तु अन्य ग्रहोंको दो २ राशि होनेपरभी चन्द्रमा सूर्यको किसी प्रकारकी

हानि नहीं है क्योंकि इन दोनोंकी एक २ राशिभी दूसरे ग्रहके दो २ राशिसे अधिक है जिस लिये बृहज्जातकमें "इकानुक्तभपान्" इत्यादि श्लोकमें दो स्थानके स्वामी मित्र और एक स्थानके स्वामी सम और जो "सुहृदस्त्रिकोणभवनात्स्वा-स्वान्त्यधीधर्मपाः स्वोच्चायःसुखपाः" इन स्थानोंमेंसे किसी स्थानका स्वामी न हों वे शत्रु होते हैं इस जगह रवि और चन्द्रमा यदि एक स्थानकाभी स्वामी हो जायँ तो मित्र ही होते हैं इति ॥

नन्वर्कबुधशुक्राणां भगण ४३२०००००० समत्वे कथं सूर्यः शीघ्रः प्रथमतः सत्यन्तस्य गतेरेकस्वभावत्वात्। उक्तञ्च नरपतिजयचर्यादौ सर्वतोभद्रवेधे--"गतेरेकस्वभावत्वात्तेषां दृष्टित्रयं सदा" इति । समरसारे "वक्री दक्षं कर्णगत्याऽथ वामं शीघ्रो विद्धचेदीक्षतेऽग्रे समस्तु। नित्यं वक्रौ राहुकेतू इनेन्दू नित्यं शीघ्रावव्यधा तुल्यरूपौ॥" इति। बुधशुक्रयोर्मध्येऽस्तादिविचारे दृग्गणितेनापि बुधस्य शीघ्रत्वमिति ॥

अर्थ-यहाँ प्रश्न यह है कि-सूर्य, बुध और शुक्र इन तीनोंके भगण ४३२०००००० समान है तब गतिके एक स्वभाव होनेपरभी सूर्य शीघ्र प्रथम क्यों भया ? कारण जो नरपतिजयचर्या आदि ग्रन्थोंमेंभी सर्वतोभद्रचक्रके वेधमें कहा है कि "गतिके एक स्वभाव होनेसे इन तीनोंकी तीन दृष्टि सर्वदा होती है" समरसारमेंभी कहाहै कि, "वक्र गति ग्रह कर्णमार्गसे अपने दहिने तरफको देखता है, शीघ्रगति ग्रह अपनेसे वाम तरफको वेधता है और समगतिवाले जो ग्रह हैं सो अपने सामने आगेको देखते हैं। इन ग्रहोंमें राहु और केतु सर्वदाके लिये वक्र हैं, सूर्य और चन्द्रमा नित्य शीघ्र हैं वेधसे रहित हैं और तुल्यरूप (एकसा) रहते हैं" इति। बुध और शुक्र इन दोनोंमें अस्त आदिके विचारमें दृग्गणितक्रयसेभी बुधको शीघ्रत्व सिद्ध है तो प्रथम सूर्य क्यों भया ॥

अथ चन्द्रस्यातिशैघ्र्यान्मनस्त्वम्, मनोधीनानीन्द्रियाणीति। तदल्पगतिर्देहः सूर्यः। एतयोर्वादे वाणी बुधः। तद्द्वयोः कामसेनात्वेन कामोत्पत्तौ कामः शुक्रः। ततः सत्त्वे सत्त्वरूपो भौमः। देहाद्युत्पत्त्यनन्तरं सुखेच्छायां ज्ञानसुखरूपो

गुरुः । लौकिकसुखस्यानित्यत्वे तदनन्तरं दुःखोत्पत्तौ दुःखं शनिरिति ।

अर्थ-चन्द्रमा अत्यन्त शीघ्रगतिवाला है इसलिये मन माना गया है, मनके अधीनही सब इन्द्रियें हैं । मनसे अल्पगतिवाला देह सूर्य है । इन दोनों (मन और देह) के योग होनेसे वाणी प्रसन्न होती है तब वाणी बोलनेके स्वामी बुध भया । तब इन तीनोंके होनेसे कामोत्पत्ति होती है इसलिये कामं शुक्र भया । तब बलमें बलरूप भौम (मङ्गल) है । अब देह और शक्ति उत्पत्तिके पीछे सुखपर इच्छा होनेसे ज्ञान और सुखरूप गुरु है । लौकिक सुखके अनित्यत्व होनेसे ज्ञान सुखके पीछे दुःखोत्पत्ति होनेसे शनि दुःख है ॥

अथ गृहनिवासाद्ग्रहाणां पुंस्त्र्यादिप्रकृतिः । यथा सौम्यश्चन्द्रो जलगृहनिवासाच्छीतलत्वतया स्त्री । उग्रः सूर्यः सिंहग्रहणपौरुषेण पुरुषः । एवं सर्वे ।

अर्थ-मेषादिगृहोंमें निवास होनेसे गृहोंकीभी पुरुषप्रकृति और स्त्रीप्रकृति कहे गये हैं । जिस प्रकारसे सौम्य जो चन्द्रमा सो जलगृहके निवाससे शीतलताके कारण स्त्रीसंज्ञक है । उग्रस्वभाववाला जो सूर्य सो सिंहस्थानके ग्रहण करनेके पुरुषतासे पुरुष है, इसी प्रकार सभी ग्रहोंको समझना चाहिये ॥

अथ नवीनस्थानराज्योत्पादनेन राजानौ चन्द्रसूर्यौ एवं शेषग्रहेषु युवराजादयो ज्ञेयाः ।

अर्थ-अब कहते हैं कि, रवि और चन्द्र राजा क्यों कहलाते हैं ? इसके उत्तरमें कहते हैं. सूर्य और चन्द्रमा नवीन स्थान और राज्यको उत्पन्न करनेवाले हैं इसी लिये ये दोनों राजा कहे जाते हैं, इसी प्रकार शेष जो भौमादि ग्रह बचे उनमें युवराजादि जानना चाहिये ॥

अथ गोलविषये मेरुस्थब्रह्मलोकादौ क्रान्तिवृत्तवशात्कर्कस्यात्यासन्नत्वं ग्रहाणामासन्नासन्नक्रूरसौम्यभवनानां प्रथमं ग्रहणाच्छुभाशुभत्वं, सोमसुतत्वात्सौम्यस्यापि बुधस्य चन्द्रासन्नालयेऽपि प्रथमासन्नक्रूरभवनग्रहणात्क्रूरग्रहसंगतौ क्रूरत्वं, सूर्यापस्त-

तेजाश्चन्द्रस्तदनुगामित्वेन तच्छीलतया क्रूरः पुरःसरस्त्वल्पल-ब्धमहोऽपि वर्धिष्णुतया शुभः ॥

अर्थ–गोलके विषयमें मेरुमें स्थित ब्रह्मलोकादिमें क्रान्तिवृत्तके होनेसे क्रान्तिवृत्तमें कर्कका जो स्थान है सो मेरुके बहुत नजदीक है, और ग्रहोंके नजदीक नजदीक जो पापशुभ घर हैं उसमें प्रथम ग्रहण करनेसे शुभ और पाप चन्द्र है । सोमका पुत्र होनेसे शुभ बुधकाभी, चन्द्रमाके नजदीक घर होनेसे, प्रथम आसन्न पापभवनके ग्रहण करनेसे, क्रूरग्रहकी संगतिमें क्रूरत्व होता है । कृष्णपक्षमें चन्द्रमाका तेज सूर्यसे हरण हो जानेके कारण और सूर्यके पीछे २ चलनेसे सूर्यके स्वभावसे पाप होता है । शुक्लपक्षमें सूर्यसे आगे होनेके कारण थोरा तेज पानेपरभी वृद्धचोन्मुख होनेसे शुभ होता है ॥

उक्तं विवाहवृन्दावने-" उदेति चायं प्रतिपत्समाप्तौ कृशोऽपि वर्द्धिष्णुतया प्रशस्तः ॥" इति । श्रुतावपि–"नवो नवो भवति जायमानः॥ " इति ।

अर्थ–विवाहवृन्दावनमेंभी कहा है " यह जो चन्द्रमा है सो प्रतिपदाकी समाप्तिमें उदय पाता है वृद्धचोन्मुख होनेके कारण प्रशस्त है " इति । वेदमेंभी लिखा है कि, " उत्पन्न होनेसे नया नया होता है " इति ॥

अथ चन्द्रस्थानानां षण्णां चन्द्रस्य शीतरश्मित्वादिरूपे सौम्य-स्त्रीसमशीतादि रूपता, एवं सूर्यस्थानानां षण्णां सूर्यधर्मसमा-नक्रूरपुरुषविषमोष्णादि धर्मता ।

अर्थ–अब चन्द्रमाके शीतल किरण आदिके कारण चन्द्रमाकी जो छः राशियें हैं उनकी भी सौम्य, स्त्री, सम, शीत आदि रूपता होती है, इसी प्रकारसे सूर्यके जो छः राशियें हैं उनकी भी सूर्यके समान क्रूर, पुरुष, विषम, और उष्ण आदि धर्म हैं ॥

अथ च आधानजातकप्रश्नादौ ग्रहाणां स्थानानिवासैरतिचम-त्कृतिकराण्यनुभवदानि फलान्यपि भवन्ति । यथा बलिष्ठाः पुंग्रहाः पुरुषराशिनवांशस्थाः पुंप्रदाः स्त्रीराश्यंशगौ बलिष्ठौ स्त्रीग्रहौ स्त्रीप्रदावित्यलं पल्लवितेन ॥

अर्थ–अब पूर्व करी हुई संज्ञाके सार्थकत्व बताते हैं गर्भाधान, जातक, प्रश्न आदियोंमें ग्रहोंके स्थाननिवाससे अत्यन्त चमत्कारिक फल होते हैं, जैसे बलवान् पुरुष ग्रह पुरुष राशि और पुरुष राशिके नवांशमें होनेसे पुरुषका जन्म करते हैं। तथा बलवान् स्त्री ग्रह स्त्रीराशि और स्त्रीराशिके नवमांशमें होनेसे स्त्रीका जन्म करते हैं पूर्व की हुई संज्ञा इस प्रकार फलवती है। इससे वेसी कहना व्यर्थ है ॥

अथ विंशोत्तर्यां विशेषः ।

सदाये मझपौ श्रेष्ठौ जेशः सन् यदि चेत्कपः ।
केन्द्राधिपत्यात्ऽघौ ज्ञेज्जे बलवान् गुरुशुक्रयोः ॥ ११४ ॥

अर्थ–अब विंशोत्तरीमें विशेष कहते हैं–नक्षत्रायुर्दायके (विंशोत्तरी) विचारमें पञ्चमेश और नवमेश श्रेष्ठ होते हैं अर्थात् ये अपनी दशामें उत्तम फल देते हैं। अष्टमेश यदि लग्नकाभी स्वामी हो तो श्रेष्ठ होता है। बुध और चन्द्रमा ये दोनों केन्द्रके स्वामी होनेसे पापी होते हैं, परन्तु गुरु और शुक्रको तो यह केन्द्राधिपत्य दोष बहुत प्रबल होता है ॥ ११४ ॥

मृत्युदा जसराख्येशा गचक्येशाश्च पापदाः ।
नीचांशेऽप्युच्चगो दीनः पापश्चाघदशां विशेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ–अष्टमेश, सप्तमेश, द्वितीयेश और द्वादशेश मृत्युदायक होते हैं। तृतीयेश, षष्ठेश और एकादशेश ये पापफल देते हैं। उच्चस्थित जो ग्रह सो जब नीचांशमें पडता है तो दीन कहा जाता है तथा पाप भी दीन कहाता है और जो ग्रह पाप-ग्रहोंकी दशामें प्रविष्ट होता है वहभी दीन कहाता है ॥ ११५ ॥

आयुःसमस्तमध्याल्पं रवेर्मित्रादिगोऽङ्गपः ।
विंशोत्तरीतारकाभी रिष्टदा प्राक्चवाखिभिः ॥ ११६ ॥

अर्थ–अब पूर्णायु आदिका विचार लिखते हैं लग्नका स्वामी यदि सूर्यके मित्र (मं० बृ० चं०) के स्थान (मेष, वृश्चिक, धनु, मीन, कर्क) में हो तो दीर्घायु कहना चाहिये। यदि लग्नेश सूर्यके सम (बुध) के स्थान (मिथुन, कन्या) में हो तो मध्यायु कहना चाहिये। यदि लग्नेश सूर्यके शत्रु (शुक्र, शनि) के स्थान (वृष, तुला, मकर, कुम्भ) में हो तो अल्पायु जानना। दूसरा अर्थ इसका यहभी होता है, कि लग्नेश यदि सूर्यका मित्र हो तो पूर्णायु, सम हो तो मध्यायु और शत्रु हो तो अल्पायु जाननी। विंशोत्तरी दशा लानेमें जो तीन तारायें (नक्षत्र) होती हैं उनसे

प्रथम नक्षत्रमें जन्म होनेसे छः वर्ष अरिष्ट, द्वितीय नक्षत्रमें चार वर्ष, तृतीय नक्षत्रमें दो वर्ष बालारिष्ट जानना ॥ ११६ ॥

अथ सप्रयोजनं निसर्गदशाज्ञानम्।

टरेझैत्रज्यत्रोन्मान्दाः खगे वाचामके सियाम् ।
नैसर्गिकान्दयोगेन स्वदशातिफलप्रदा ॥ ११७ ॥

अर्थ-अब नैसर्गिकदंशाज्ञान और उसका प्रयोजन लिखते हैं-निसर्ग उसको कहते हैं हर समय हरेकको एक रूप रहै यहाँ क्रमसे चन्द्र, मङ्गल, बुध, शुक्र बृहस्पति, सूर्य और शनैश्चर इन ग्रहोंके एक १, दो २, नौ ९, बीस २०, अठारह १८, बीस २०, और पचास ५० इतने २ वर्ष निसर्गदशा होती है। ऊपर श्लोकमें अङ्क अक्षरसे लिया गया है और ग्रहभी अक्षरहीसे लिया गया है ख (२) से चन्द्र इत्यादि। निसर्गदशाके समय यदि स्वदशा पडजाय अर्थात् जिस ग्रहकी निसर्गदशा हो उसी ग्रहकी यदि विंशोत्तरी दशाभी आजाय तो उस ग्रहके जो जातकोक्त शुभाशुभ हैं उसको विशेष करके देती है ॥ ११७ ॥

अथ निसर्गदशाचक्रम् ।							
ख चं	गे मं	वा बु	चा शु	मं गु	के सू	सूश	संख्याग्रहाः
क १	·रे २	झै ९	त्र २०	ज्य१८	त्रो२०	न्मा ५०	संख्याब्दाः

अथ सगणितफलपाकविचारछायादशाज्ञानम्।

पाके फलानि सर्वाणि फलयो रिपुता विना ।
स्वप्नचिन्तास्ववीर्यस्यानुभावाद्भूतजा दशा॥ ११८ ॥

अर्थ-जिस ग्रहका जो फल जातकमें कहा है वह सब अपने पाक (दशा) में देता है परन्तु यदि फलमें विरोध नहीं हो तो अर्थात् जहाँ एकही ग्रहके शुभ अशुभ दोनों फल न हों वहाँ दशामें सब फल कहना चाहिये। मतलब यह है कि जहाँ एकही ग्रहके शुभ अशुभ दोनों फल परस्पर विरुद्ध होते हैं दोनों फल नाश हो जाता है अथवा जो योग अधिक बलिष्ठ हो उसका फल होता है जैसे बृहज्जातकमेंभी लिखा है "एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे नाशं वदेयदधिकं परिपच्यते तत्"। बलहीन ग्रहकी दशामें भी वह फल स्वप्नमें या चिन्तामेंभी होता है। पञ्च महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) की दशा अनुभवसे (नासा, जिह्वा, दृष्टि, त्वचा, कर्णसे) जाननी चाहिये अर्थात् जिस पुरुषकी जन्मपत्री आदि नहीं

हैं उसका लक्षण देखकर दशा समझनी चाहिये जैसे जिस समय तीव्ररूदवान उत्तम कान्ति देखनेमें आवे उस समय अग्निकी दशा भई परन्तु "शिखिभूखपयोमरुद्गणानामधिपा भूमिसुतादयः क्रमेण" इससे अग्निके स्वामी मङ्गलकी दशा भई इसी प्रकार पञ्चमहाभूतकी दशा जाननी बृहज्जातकमें सविस्तर है ॥ ११८ ।

छायादशाज्ञानचक्रम् ।

पृ	ज	अग्नि	वा	आ	महाभूतैः
नासा	जिह्वा	नेत्र	त्वक्	कर्ण	सुखानुभवात्
बु	चं शु	सू मं	श	गु	ग्रहाणांशुभदशा

अथ योगिनीदशासाधनम् ।

अश्विभाज्जन्मभं लग्नं मङ्गलाद्याजशेषितम् ।
त्रैराशिकाच्छुभानान्तु दशाश्चान्तर्दशाः शुभाः ॥ ११९ ॥

अर्थ- अब योगिनीदशा लानेका प्रकार लिखते हैं-अश्विनी नक्षत्रसे शुरू करके जिस नक्षत्रमें जन्म हो वहाँतक गिनना जितनी संख्या होय उसमें तीन और मिलाना तब जो होय उसमें आठका भाग देकर शेष बचेसे मङ्गला आदि आठ योगिनी दशा होती है, फिर त्रैराशिकसे एकमें सभीकी अन्तर्दशा जाननी चाहिये त्रैराशिक ऐसा करना चाहिये कि, ३६ छत्तीस वर्षमें स्वदशा पाते हैं तो इष्ट योगिनीदशामें कितने पावेंगे अर्थात् इसमें जिसका अन्तर लाना हो उन दोनोंका गुणनफल जो हो उसमें छत्तीसका भाग देनेसे जो लब्धि होगी वही अन्तर्दशा होगी । अब शुभ दशामें यदि शुभका अन्तर आवे तो शुभ फल जानना, शुभमें पाप हो तो मध्यम, पापमें पाप हो तो अशुभ ॥ ११९ ॥

अथाष्टयोगिनीनामानि ।

मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिकोल्कका ।
सिद्धा च संकटाद्ध्यां चं सूजीमं बुसौशुराः ॥ १२० ॥

अर्थ-पूर्व श्लोकके अनुसार अश्विनीसे जन्मनक्षत्रपर्यन्त गिनकर तीन और जोड आठसे भाग लेनेपर एक शेष बचे तो मङ्गला, दो बचे तो पिङ्गला, तीनसे धान्या चारसे भ्रामरी, पाँचसे भद्रिका, छः से उल्का, सातसे सिद्धा और आठसे सङ्कटा

होती है ये आठों योगिनीकी दशा क्रमसे एक एक वर्ष वृद्धि करके होती है अर्थात् मङ्गलादशा एक वर्षकी १, पिङ्गला दो वर्ष २, धान्या तीन वर्षकी ३, भ्रामरी चार वर्षकी ४, भद्रिका पाँच वर्षकी ५, उल्का छः वर्षकी ६, सिद्धा सात वर्षकी ७, संकटा आठ वर्षकी होती है । इन आठों योगिनीके स्वामी क्रमसे चन्द्र ७, सूर्य २, बृहस्पति ३, मङ्गल ४; बुध ५, शनैश्चर ६, शुक्र १ और राहु ८ ये आठ हैं अर्थात् मंगलके चन्द्र, पिंगुलाके सूर्य इत्यादि ॥ १२० ॥

योगिनीदशाचक्रम् ।

आ चि श्र	पु स्वा ध	पु वि श	श्ले नु पू अ	म ज्ये उ भ	पू मू रे कृ	उ पू रो	ह उ मृ	भानि
मं	पिं	ध	भ्रा	भ	उ	सि	सं	नाम
१	२	३	४	५	६	७	८	वर्ष
चं	सू	बृ	मं	बु	श	शु	रा	स्वा.ग्रह

अथ विंशोत्तरीदशासाधनम् ।

सूचं मंराबुशबुके शुत्रिरावृत्तितोऽग्निभात् ।
छैर्नकैः सैजंकैस्ताकैर्झुकैः साकैः सनैर्नखैः ॥ १२१ ॥

अर्थ–अब ग्रहोंके विंशोत्तरी दशा साधन लिखते हैं–कृत्तिकानक्षत्रसे नौ नौ नक्षत्रकी तीन आवृत्तिमें क्रमसे सूर्यादि नवों ग्रहोंकी दशा होती है जैसे सूर्यकी छः वर्ष ६, चन्द्रमाकी दश वर्ष १०, मङ्गलकी सात वर्ष ७ राहुकी अठारह १८, बृहस्पतिकी सोलह १६ शनिकी उन्नीस १९, बुधकी सतरह १७, केतुकी सात ७ और शुक्रकी वीस वर्ष २० दशा होती है अर्थात् कृत्तिका उत्तरा फाल्गुनी और उत्तराषाढा इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनसे प्रथम सूर्यकी दशा छः वर्षकी होती है इसी प्रकार नीचे सभी ग्रहोंके नक्षत्र और वर्ष चक्रमें स्पष्ट लिखा हैं । जन्मकालमें जिस ग्रहकी दशा आती है उसमें भुक्त भोग्यभी लाई जाती है सो आगे साधन १२२ श्लोकमें लिखेंगे ॥ १२१ ॥

विंशोत्तरी दशाचक्रम् ।

कृ. उ. उ.	रो. ह. श्व.	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पु. वि. पू.	पुः नु. उ.	श्ले. ज्ये. रे.	म. मू. ऽश्वि	पू. पू. भ.	भानि
सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के	शु.	ग्रह
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	२०	२०	वर्ष

अथ श्लोकार्द्धाभ्यां सूक्ष्मर्क्षादष्टोत्तरीदशाज्ञानम् ।

प्रागर्जितोऽघश्च शुभश्चतुस्त्रिक्रमतः शिवात् ।

सूचैश्चाष्पैमर्जैबुंस्यैः शन्फैर्गुझ्यै राफ्यैः शुक्रैः ॥ १२२ ॥

अर्थ-यहाँ दो अर्द्ध कहनेका आशय यह है कि,पूर्वार्द्ध अनुष्टुप् है और उत्तरार्द्ध विद्युन्माला है । अब अष्टोत्तरी दशाज्ञान लिखते हैं-आर्द्रासे चार नक्षत्र और तीन नक्षत्रोंके क्रमसे पाप ग्रह और शुभ ग्रहमें देनेसे उन उन नक्षत्रोंमे क्रमसे सूर्यादि ग्रहोंकी दशा होती है यथा सूर्यकी आर्द्रासे चार नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा) में च (६) छः वर्षकी दशा होती है जिसका फल अशुभ है । मघासे तीन नक्षत्र (मघा, पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी) में चन्द्रमाकी म्य (पन्दरह)१५ वर्षकी शुभ दशा होती है । हस्तसे चार (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखामें मङ्गलकी आठ वर्षकी दशा अशुभ होती है । अनुराधा, ज्येष्ठा मूलमें बुधकी १७ सतरह वर्षकी शुभ पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् श्रवणमें शनिदशा दश१० वर्षकी अशुभ धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदामे गुरुदशा उन्नीस १९ वर्षकी शुभ उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणीमें राहु दशा बारह १२ वर्षकी अशुभ कृत्तिका,रोहिणी, मृगशिरमें शुक्र दशा एक्कीस वर्ष २१ की शुभ होती है चक्रमेंभी स्पष्ट लिखा है॥१२२॥

अथ अष्टोत्तरीदशाचक्रम् ।

आ.पु. पुः श्ले.	म. पू.उ	हस्ति स्वा।ति.	ऽनु ज्येमू	पू. उ. ऽभिश्र	ध. श.पू.	ऊ, रे. ऽश्विभ.	कृ. रोमृ	भानि
सू.	चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	ग्रहाः
६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१	ऽब्दाः

अथ दशाभुक्तभोग्यसाधनम् ।

सर्वर्क्षेणाब्दमानं चोत्कं भोग्यघटिकादिभिः ॥ १२३ ॥

अर्थ–अब यहाँ सभी दशाओंके अर्थात् योगिनी, विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदियोंके भुक्त भोग्य दशा लानेका प्रकार लिखते हैं–पूर्वके अनुसार जन्मनक्षत्रपरसे जिस ग्रहकी दशा आवे उस ग्रहके जो पठित वर्ष हों उस वर्षपरसे अनुपात करना चाहिये कि सर्वर्क्ष (भभोग) में यदि ग्रहके उक्त वर्ष पाते हैं तो भोग्यघटीमें क्या (भोग्य घटी उसको कहते हैं जो भयातको भभोगमें घटानेसे शेष बचे अर्थात् ग्रहके वर्षको भोग्य घटी आदिसे गुणकर भभोगसे भाग लेनेसे भोग्य वर्षादि होंगे यह क्रिया सर्वत्र भुक्त भोग्य दशा लानेमें जाननी चाहिये ॥ १२३ ॥

अथान्तर्दशाविदशोपदशाप्राणदशासाधनम् ।

दशादशाहताः कार्याः स्वाब्दयोगेन भाजयेत् ।
लब्धमन्तर्दशाद्याः स्युः फलाद्याः स्वस्वके क्रमात् ॥ १२४ ॥

अर्थ–अब अन्तर्दशा, विदशा, उपदशा, प्राणदशा आदि साधनके प्रकार लिखते हैं–जिस ग्रहकी महादशामें जिस ग्रहकी अन्तर्दशा लानी हो उन दोनों ग्रहोंके जो महादशावर्ष हैं उनका गुणनफल जो हो उसमें स्वदशावर्षके योगसे अर्थात् विंशोत्तरीमें एक सौ बीससे १२०– अष्टोत्तरीमें एक सौ आठसे १०८, योगिनीमें छत्तीससे ३६ लब्ध जो वर्षादि होगा वह अन्तरवाले ग्रहकी अन्तर्दशा होगी । इसी प्रकार जिस ग्रहकी अन्तर्दशामें . जिस ग्रहकी विदशा लानी हो उन दोनों ग्रहोंके अन्तर्दशाका गुणनफलमें जिस ग्रहकी अन्तर्दशामें विदशा लाते हैं उस ग्रहके महादशावर्षसे भाग देनेसे विदशा होगी । फिर जिस ग्रहकी विदशामें जिस ग्रहकी उपदशा लानी हो उन दोनोंके विदशाके गुणनफल जो हो उसमें जिस ग्रहकी विदशामें उपदशा लानी है उस ग्रहके अन्तर्दशासे भाग देनेसे उपदशा होगी इत्यादि आगे सबोंकी महादशा अन्तर्दशा चक्र दिया है ॥ १२४ ॥

योगिनी ३६ मध्येऽतर्दशाः ।

मंगला १ मध्ये ।

मं	पिं	ध	भ्रा	भ	उ	सि	सं
०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	१	१	१	२	२	२
१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०

पिंगला २ मध्ये ।

पिं	ध	भ्रा	भ	उ	नि	सं	मं
०	०	०	०	०	०	०	०
१	२	२	३	४	४	५	०
१०	०	२०	१०	०	२०	१०	२०

धन्या ३ मध्ये ।

ध	भ्रा	भ	उ	सि	सं	मं	पिं
०	०	०	०	०	०	०	०
३	४	५	६	७	८	१	२
०	०	०	०	०	०	०	०

भ्रामरी ४ मध्ये ।

भ्रा	भ	उ	सि	सं	मं	पिं	ध
०	०	०	०	०	०	०	०
५	६	८	९	१०	१	२	४
१०	२०	०	१०	२०	१०	२०	०

भाद्रिका ५ मध्ये ।

भ	उ	सि	सं	मं	पिं	ध	भ्रा
०	०	०	०	०	०	०	०
८	१०	११	१	१	३	५	६
१०	०	२०	१०	२०	१०	०	२०

उल्का ६ मध्ये ।

उ	सि	सं	मं	पिं	ध	भ्रा	भ
१	१	१	०	०	०	०	०
०	२	४	२	४	६	८	१०
०	०	०	०	०	०	०	०

धन्या ७ मध्ये ।

सि	सं	मं	पिं	ध	भ्रा	भ	उ
१	१	०	०	०	०	०	१
४	६	२	४	७	९	११	२
१०	२०	१०	२०	०	१०	२०	०

संकटा ८ मध्ये ।

सं	मं	पिं	ध	भ्रा	भ	उ	सि
१	०	०	०	०	१	१	१
९	२	५	८	१०	१	४	६
१०	२०	१०	०	२०	१०	०	२०

अष्टोत्तरी १०८ गजदशामध्येंऽतर्दशाः।

सूर्य ६ मध्ये

सू	चं	मं	बु	श	गु	रा	शु
०	०	०	०	०	१	०	१
४	१०	५	११	६	०	८	२
०	०	१०	१०	२०	२०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०

चंद्र १५ मध्ये

चं	मं	बु	श	गु	रा	शु	सू
२	१	२	१	२	१	२	०
१	१	४	४	७	८	११	१०
०	१०	१०	२०	२०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०

भौम ८ मध्ये

मं	बु	श	गु	रा	शु	सू	चं
०	१	०	१	०	१	०	१
७	३	८	४	१०	६	५	१
३	३	२६	२६	२०	२०	१०	१०
२०	२०	४०	४०	०	०	०	०

बुध १७ मध्ये

बु	शं	गु	रा	शु	सू	चं	मं
२	१	२	१	३	०	२	१
८	६	११	१०	३	११	४	३
३	२६	२६	२०	२०	१०	१०	३
२०	४०	४०	०	०	०	०	२०

शनि १० मध्ये

श	गु	रा	शु	सू	चं	मं	बु
०	१	१	१	०	१	०	१
११	९	१	११	६	४	८	६
३	३	१०	१०	२०	२०	२६	२६
२०	२०	०	०	०	०	४०	४०

गुरु १९ मध्ये

गु	रा	शु	सू	चं	मं	बु	श
३	२	३	१	२	१	२	१
४	१	८	०	७	४	११	९
३	१०	१०	२०	२०	२६	२६	३
२०	०	०	०	०	४०	४०	२०

राहु १२ मध्ये

रा	शु	सू	चं	मं	बु	श	गु
१	२	०	१	०	१	१	२
४	४	८	८	१०	१०	१	१
०	०	०	०	२०	२०	१०	१०
०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र २१ मध्ये

शु	सू	चं	मं	बु	श	गु	रा
४	१	२	१	३	१	३	२
१	२	११	६	३	११	८	४
०	०	०	२०	२०	१०	१०	०
०	०	०	०	०	०	०	०

विंशोत्तरी १२० केरलीमध्येऽन्तर्दशा ।

सूर्य ६ मध्ये

सू	चं	मं	रा	गु	श	बु	के	शु
०	०	०	०	०	०	०	०	१
३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चंद्र १० मध्ये

चं	मं	रा	गु	श	बु	के	शु	सू
०	०	१	३	१	१	०	१	०
१०	७	६	४	७	९	७	८	६
०	०	०	०	०	०	०	०	०

मंगल ७ मध्ये

मं	रा	गु	श	बु	के	शु	सू	चं
०	१	०	१	०	०	१	०	०
४	०	११	१	११	४	२	४	७
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राहु १८ मध्ये

रा	गु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
२	२	२	२	१	३	०	१	१
८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

गुरु १६ मध्ये

गु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
२	२	२	०	२	०	१	०	२
१	६	३	११	८	९	४	११	४
१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

शनि १९ मध्ये

श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	गु
३	२	१	३	०	१	१	२	२
०	८	१	२	११	७	१	१०	६
३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

बुध १७ मध्ये

बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	गु	श
२	०	२	०	१	०	२	२	२
४	११	१०	१०	९	११	६	३	८
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

केतु ७ मध्ये

के	शु	सू	चं	मं	रा	गु	श	बु
०	१	०	०	०	१	०	१	०
४	२	४	७	४	०	११	१	११
२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

शुक्र २० मध्ये

शु	सू	चं	मं	रा	गु	श	बु	के
३	१	१	१	३	२	३	२	१
४	०	८	२	०	८	२	१०	२
०	०	०	०	०	०	०	०	०

आद्येके विंशतिः २० सूर्य.
सूर्यमध्ये २०।१७।३२ सावनांतर्दशा विदशा ।

सू.	चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	
१ ८	२ ४९	१ ३०	३ १२	१ ५३	३ ३४	२ १५	३ ५६	२० १७
सू. ० ४	चं. ० २३	मं. ० ७	बु. ० ३०	श. ० १०	गु. ० २७	रा. ० १५	शु. ० ४६	विदशा
चं. ० २	मं. ० १२	बु. ० १४	श. ० १८	गु. ० २०	रा. ० ३४	शु. ० २६	सू. ० १३	
मं. ० ५	बु. ० २७	श. ० ८	गु. ० २४	रा. ० १३	शु. ० ४१	सू. ० ८	चं. ० ३३	
बु. ० ११	श. ० १६	गु. ० १६	रा. ० २१	शु. ० २२	सू. ० १२	चं. ० १९	मं. ० १८	
श. ० ६	गु. ० ३०	रा. ० १०	शु. ० ३७	सू. ० ६	चं. ० ३०	मं. ० १०	बु. ० ३७	
गु. ० १२	रा. ० १९	शु. ० १८	सू. ० ११	चं. ० १६	मं. ० १६	बु. ० २१	श. ० २२	
रा. ० ८	शु. ० ३३	सू. ० ५	चं. ० २७	मं. ० ८	बु. ० ३४	श. ० १२	गु. ० ४१	
शु. ० १३	सू. ० ९	चं. ० १२	मं. ० १४	बु. ० १८	श. ० २०	गु. ० २४	रा. ० २५	

तृतीये दश १० चन्द्रमाः २ ।
चन्द्रमध्ये ५०।४३।४९ सावनांतर्दशा ।

चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	सू.	
७ ३	३ ४५	७ ५९	४ ४२	८ ५६	९ ३८	९ ६२	२ ४९	५० ४४
चं. ० ५९	मं. ० १७	बु. १ १६	श. ० २६	गु. १ ३४	रा. ० ३७	शु. १ ५५	सू. १ ९	विदशा
मं. ० ३१	बु. ० ३५	श. ० ४४	गु. ० ५०	रा. १ ०	शु. १ ६	सू. ० ३३	चं. ० २४	
बु. १ ७	श. ० २१	गु. १ २४	रा. ० ३१	शु. १ ४४	सू. ० १९	चं. १ २२	मं. ० १२	
श. ० ३९	गु. ० ४०	रा. ० ५३	शु. ० ५५	सू. ० ३०	चं. ० ४७	मं. ० ४८	बु. ० २७	
गु. १ १४	रा. ० २५	शु. १ ३३	सू. ० १६	चं. १ १४	मं. ० २५	बु. १ ३३	श. ० १६	
रा. ० ४७	शु. ० ४४	सू. ० २७	चं. ० ३९	मं. १ ४०	बु. ० ५३	श. ० ५५	गु. ० ३०	
शु. १ ११	सू. ० १२	चं. १ ७	मं. ० २१	बु. १ २४	श. ० ३१	गु. १ ४४	रा. ० १९	
सू. ० २४	चं. ० ३१	मं. ० ३५	बु. ० ४४	श. ० ५०	गु. १ ०	रा. १ ६	शु. ० ३२	

चतुर्थे सप्त २६।४० भौमश्च ३।
भौममध्ये सावनां २७।३।२२ तद्दशा विदशा।

मं. २ ७	बु. ४ १६	श. २ ३०	गु. ४ ४५	रा. ३ १	शु. ५ १५	सू. १ ३०	चं ३ ४५	२७ ३
मं. ० ९	बु. १ ४०	श. ० ४०	गु. ० ५०	रा. ० २०	शु. १ १	स. ० ५	च. १ ३१	विदशा
बु. ० १९	श. ० २४	गु. ० २६	रा. ० ३२	शु. ० ३५	सू. ० १८	चं. ० १२	मं. ० १७	
श. ० ११	गु. ० ४५	रा. ० १७	शु. ० ५६	सू. ० १०	चं. ० ४४	म. ० ७	बु. १ ३५	
गु. ० २१	रा. ० २८	शु. ० २९	सू. ० १५	चं. ० २५	मं. ० २३	बु. ० १४	श. ० २१	
रा. ० १३	शु. ० ५०	सू. ० ८	चं. ० ४०	मं. ० १३	बु. १ ५०	श. ० ८	गु. ० ४०	
शु. ० २४	सू. ० १४	चं. ० २१	मं. ० २१	बु. ० २९	श. ० २९	गु. ० १६	रा. ० २५	
सू ० ७	चं. ० ३६	म. ० ११	बु. ० ४५	श. ० १७	गु. ० ५५	रा. ० १०	शु. ० ४४	
चं. ० १७	मं. ० १९	बु. ० २४	श. ० २६	गु. ० ३२	रा. ० ३५	शु. ० १८	सू. ० १२	

षष्ठे त्रीन् ५६।४० चंद्रजः स्मृतः ४।
बुधमध्ये सावनां ५७।२९।४० तद्दशा विदशा।

बु. ९ ३	श. ५ २०	गु. १० ७	रा. ६ २३	शु. ११ १०	सू. ३ १२	चं. ७ ५९	मं. ४ १६	५७ ३०
बु. १ २६	श. ० ३०	गु. १ ४७	रा. ० ४२	शु. २ १०	सू. ० ११	चं. १ ७	मं. ० १९	विदशा
श. ० ५०	गु. ० ५६	रा. १ ८	शु. १ १५	सू. ० ३७	चं. ० २७	मं. १ ३६	बु. १ ४०	
गु. १ ३६	रा. ० ३६	शु. १ ५८	सू. ० २१	चं. १ ३३	मं. ० १४	बु. १ १५	श. ० २४	
रा. १ ०	शु. १ २	सू. ० ३४	च. ० ५३	मं. ० ४९	बु. ० ३०	श. ० ४४	गु. ० ४५	
शु. १ ४६	सू. ० १८	चं. १ २४	म. ० २८	बु. १ ४६	श. ०० १८	गु. १ २४	रा. ० २८	
सू. ० ३०	चं. ० ४४	मं. ० ४५	बु. १ ०	श. १ २	गु. ० ३४	रा. ० ५३	शु. ० ५०	
चं. १ १०	मं. ० २४	बु. १ ३५	श. ० ३६	गु. १ ५८	रा. ० २१	शु. १ ३३	सू. ० १४	
मं. ० ४०	बु. ० ५०	श. ० ५६	गु. १ ८	रा. ७ १५	शु. ० २७	सू. ० ३७	चं. ० ३६	

सप्तमे सप्त ३३।२० मंदश्च ५ ।
शनिमध्ये सावनां ३३।४९।१३ तद्दशा विदशा ।

श.	गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.	
३ ८	५ २७	३ ४५	६ ३५	१ ५२	४ ४२	२ ३०	५ ०	३२ ४९
श. ० १७	गु. १ ३	रा. ० २५	शु. ० १७	सू. ० ६	चं. ० ३९	मं. ० ५१	बु. ० ५१	विदशा
गु. ० ३३	रा. ० ४०	शु. ० ४४	सू. ० २२	चं. ० १६	मं. ० २१	बु. ० २४	श. ० ३०	
रा. ० २१	शु. १ ९	सू. ० १२	चं. ० ५५	मं. ० ८	बु. ० ४४	श. ० १४	गु. ० ५६	
शु. ० ३७	सू. ० २०	चं. ० ३१	मं. ० २९	बु. ० १८	श. ० २६	गु. ० २६	रा. ० ३६	
सू. ० १०	चं. ० ५०	मं. ० १७	बु. १ २	श. १ ०	गु. १ ५०	रा. ० १७	शु. १ २	
चं. ० २६	मं. ० २६	बु. ० ३५	श. ० ३७	गु. १ २०	रा. ० ३१	शु. ० २९	सू. ० १७	
मं ० १४	बु. ० ५६	श. ० २१	गु. ० ४५	रा. ० १२	शु. ० ५५	सू. ० ८	च. ० ४४	
बु. ० ३०	श. ० ३३	गु. ० ४०	रा. ० ४४	शु. ० २२	सू. ० १६	चं. ० २१	मं. ० २४	

नवमे दश ६३।२० चागिराः ६ ।
गुरुमध्ये सावनां ६४।१५।३१ तद्दशा विदशा ।

गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.	श.	
११ १९	७ ८	१२ ३०	३ ३४	८ ५६	४ ४५	१० ७	५ ५७	६४ १६
गु. २ ०	रा. ० ४८	शु. २ २६	सू. ० १२	चं. १ १४	मं. ० २१	बु. १ ३६	श. ० ३३	विदशा
रा. १ १५	शु. १ २३	सू. ० ४२	चं. ० २९	म. ० ४०	बु. ० ४५	श. ० ५६	गु. १ ३	
शु. २ १२	सू. ० २४	चं. १ ४४	म. ० १६	बु. १ २४	श. ० २६	गु. १ ४७	रा. ० ४०	
सू. ० ३८	चं. ० ५९	मं. ० ५६	बु. ० ३३	श. ० ५०	गु. ० ५०	रा. १ ७	शु. १ ९	
चं. १ ३४	मं. ० ३२	बु. १ ५८	श. ० २०	गु. १ ३४	रा. ० ३२	शु. १ ५८	सू. ० २०	
मं. ० ५०	बु. १ ७	श. १ ९	गु. ० ३८	रा. १ ०	शु. ० ५५	सू. ० ३४	चं. ० ५०	
बु. १ ४७	श. ० ४०	गु. १ १२	रा. ० २४	शु. १ ४४	सू. ० १६	चं. १ २४	ग. ० २६	
श. १ ३	गु. १ १५	रा. १ २३	शु. ० ४२	सू. ० ३०	चं. ० ४०	मं. ० ४५	बु. ० ५६	

शेषात् ७०१० शुक्रः फलप्रदः ८।
शुक्रमध्ये सावनां ७१।१।२१ तद्दशा विदशा।

७१ १								
रा. ७ ५३	रा. ० ५३	शु. १ ३२	सू. ० २६	च १ ६	मं. ० ३५	बु. १ १४	श. ० ४४	गु. १ २३
गु. १२ ३०	गु २ १२	रा. १ २३	शु. २ २६	सू. १ ४२	चं. १ ४४	मं. ० ५६	बु. १ ५८	श. १ ९
श. ६ ३४	श. ० ३६	गु. १ ९	रा. ० ४४	शु. १ १७	सू. ० २२	चं. ० ५५	मं. ० २९	बु. १ २
बु. ११ ११	बु १ ४६	श. १ २	गु. १ ५८	रा. १ १५	शु. २ १०	सू. ० ३७	चं. १ ३३	म. ० ५०
मं. ५ १६	म. ० २३	बु. ० ५०	श. ० २९	गु. ० ५६	रा. ० ३५	शु. ० ६१	सू. ० १८	च. ० ४४
चं. २ ५९	चं ० २२	मं. ० ४४	बु. १ ३३	श. ० ५५	गु. १ ४४	रा. १ ६	शु. १ ५५	सू. ० ३३
सू. ९ ५२	सू. ० १३	चं ० ३३	मं. ० १८	बु. ० ३७	श. ० २२	गु. ० ४२	रा. ० २६	शु. ० ४६
शु. १३ ४८	शु. ० ४१	सू. ० ४६	चं. १ ५५	मं. १ १	बु. २ १०	श. १ १७	गु. १ २६	रा. १ ३२

दशमे विंशती ४०१० राहुः ७।
राहुमध्ये सावनां ४०।३५।३ तद्दशा विदशा।

४० ३५								
गु. ७ ८	गु. १ १५	रा. ० ४८	शु. १ २३	सू. ० २४	च. ० ५९	मं. ० ३२	बु. १ ७	श ० ४०
श. ३ ४६	श. ० २१	गु ० ४०	रा. ० २५	शु. ० ४४	सू. ० १२	चं ० ३१	मं. ० १७	बु. ० ३६
बु. ६ २३	बु. १ १	श. ० ३५	गु. १ ७	रा. ० ४३	शु. १ १५	सू. ० २१	चं ० ५३	मं. ० २८
मं. ३ ०	मं. ० १३	बु. ० २८	श. ० १७	गु. ० ३२	रा. ० २०	शु. ० ३५	सू. ० १०	चं ० २५
चं ५ ३८	च ० ४६	मं. ० २५	बु. ० ५३	श ० ३१	गु १ ०	रा. ० ३८	शु. १ ६	सू. ० १९
सू. २ १५	सू. ० ८	चं. ० १९	मं. ० १०	बु. ० २१	श. ० १२	गु. ० २४	रा. ० १५	शु. ० २६
शु ७ ५४	शु १ ३२	सू. ० २६	चं. १ ६	मं. ० ३५	बु. १ १५	श. ० ४४	गु १ २३	रा. ० ५३
रा. ४ ३१	रा. ० ३०	शु. ० ५२	सू. ० १५	चं. ० ३८	मं. ० २०	बु. ० ४३	श ० २५	गु. ० ४८

वर्षप्रवेशादिसाधनम् ।

शको जन्मशकोनः स्याद्गताब्दस्तस्य कोष्ठकः ।
जन्मवारादिसहितोऽब्दवेशे ध्रुमुखो ध्रुवः ॥ १२९ ॥

अर्थ—अब वर्षप्रवेशादि (वर्षपत्र) करनेका उपाय लिखते हैं—जिस शकका वर्षपत्र बनाना हो उस शकमें जिस मनुष्यका वर्षपत्र बनाना है उसका जन्मका शक घटा देना जो शेष बचे वह उस मनुष्यका उस शकमें गताब्द (बीता हुआ वर्ष) जानना । इस प्रकारसे जो गताब्द संख्या हो उस संख्यातुल्य नीचेके कोठेमेंसे अङ्क लेकर जन्मवारादि (जिस दिनमें जन्म भया हो उस दिनकी संख्या रविवारसे गिनकर लेना और जन्मसमयका जो सूर्योदयसे इष्ट घटी फल है उसकोभी दिन संख्याके आगे रखना इसीको जन्म वारादि कहते हैं) कोंसे मिलावे यदि मिलानेपर घटी पलके स्थानमें ६० से अधिक हो तो ६० से भाग लेकर शेष रखे और लब्धि ऊपरके अङ्कमें मिलावे और दिनके स्थानमें सातसे अधिक हो तो सातसे भाग लेकर शेषको रखना । इस प्रकारसे गताब्दसे अग्रिम (आगेके) वर्ष प्रवेशका वारादि होगा अर्थात् वारस्थानमें जो अङ्क हो उस संख्यातुल्य रविवारसे गिनकर दिन जाने और घटी पलको वर्षप्रवेशका इष्ट समझे इसी वारादिको ध्रुवा भी कहते हैं ॥ १२९ ॥

वर्ष	वार	घटि	पल	तिथि	नक्षत्र	योग	लग्न
१	१	१५	३१	११	१०	१०	३-
२	२	३१	३	२२	२०	२०	६ ≡
३	३	४६	३४	३	३	३	९।-
४	५	२	६	१४	१३	१३	।≡
५	६	१७	३७	२५	२३	२३	१॥
६	०	३३	९	६	६	६	६ ।॥=
७	१	४८	४०	१७	१६	१६	९ ॥
८	३	४	१२	२६	२६	२६	०॥ ।-
९	४	१९	४३	१०	९	९	३॥ ।≡
१०	५	३५	१५	२१	१९	१९	७-
११	६	५०	४६	१	२	२	१० =
१२	१	६	१८	१३	१२	१२	१।
१३	२	२१	४९	२४	२१	२१	४। =
१४	३	३७	२१	५	४	४	७॥
१५	४	५२	५२	१६	१४	१४	१० ॥-
१६	६	८	२४	२७	२४	२४	१॥ =
१७	०	२३	५५	८	७	७	४॥ ।-
१८	१	३९	२७	१९	१७	१७	७॥ ।≡
१९	२	५४	५८	०	०	०	११
२	४	१०	३०	११	१०	१०	२-
२१	५	२६	१	२२	२०	२०	९ ≡
२२	६	४१	३३	३	३	३	८ ।-
२३	०	५७	४	१४	१३	१३	११ ।≡
२४	२	१२	३६	२६	२३	२३	२।
२५	३	२८	७	७	६	६	५॥ =
२६	४	४३	३९	१८	१६	१६	८॥
२७	५	५९	१०	२९	२६	२६	११ ॥।-
२८	०	१४	४२	१०	९	९	२॥ ।≡
२९	१	३०	१३	२१	१९	१९	३-
३०	२	४५	४५	२	२	२	९ =
३१	४	१	२६	१३	१२	१२	।
३२	५	१६	४८	२४	२२	२२	३। =
३३	६	३२	१९	५	५	५	६॥
३४	०	४७	५१	१६	१५	१५	९।-
३५	२	३	२२	२७	२५	२५	।≡
३६	३	१८	५४	८	८	८	३ ॥।
३७	४	३४	२५	२९	१७	१७	६॥ ।≡
३८	५	४५	५७	०	०	०	१०
३९	०	५	२८	११	१०	१०	१-
४०	१	२१	०	२३	२०	२०	४।
४१	२	३६	३१	४	३	३	७ ।-
४२	३	५२	३	१५	१३	१३	१० ≡
४३	५	७	३४	२६	२३	२३	१॥
४४	६	२३	६	७	६	६	४॥ =
४५	०	३८	३७	१८	१६	१६	७ ॥।
४६	१	५४	९	२९	२६	२६	१० ॥।-
४७	३	९	४०	१०	९	९	१॥ ।≡
४८	४	२५	१२	२१	१९	१९	५
४९	५	४०	४३	२	२	२	८ =
५०	६	५६	१५	१३	१२	१२	११ ।
५१	०	११	४६	२४	२१	२२	२ ।=
५२	२	२७	१८	५	५	५	५॥
५३	३	४२	४९	१६	१५	१५	८ ॥-
५४	४	५८	२१	२७	२५	२५	११ ॥=
५५	६	१३	५२	८	८	८	२ ॥।
५६	०	२९	२४	२०	१८	१८	५॥ ।=

५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	गताब्दाः।
१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	गताब्दवारादिजन्मवारघटी
४४	०	१५	३१	४७	२	१८	३३	४९	४	२०	३५	५१	६	२२	३७	५३	८	२४	३९	५५	१०	२६	४२	पलयुतो वर्षप्रवेशवारादिः
५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६	७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८	१९	५१	२२	५४	२५	१७	२८	०	सूक्ष्मो निश्चितो भवति।
१	१२	२३	४	१५	२६	७	१८	२९	१०	२१	२	१३	२४	५	१७	२८	९	२०	१	१२	२३	४	१५	जन्मतिथियुता तिथिर्भवति।
१	११	२१	४	१३	२३	६	१६	२६	९	१९	२	१२	२२	५	१५	२५	८	१८	१	११	२१	४	१४	जन्मर्क्षयुगृक्षमासन्नं भवति।
१	११	२१	४	१३	२३	६	१६	२६	९	१९	२	१२	२२	५	१५	२५	८	१८	१	११	२१	४	१४	जन्मयोगयुग्युग्मवति।
९	०-	३≡	६।-	९।≡	०॥	३॥=	६॥।	९॥-	॥=	४	७८	१०।	११·	४।≡	७॥-	१०।=	१॥।	४॥=	८	११-	२≡	२।	५।=	जन्मलग्नयुतं लग्नं भवति।

सू.बुशु.	चं.	चं.उ.	ग.	मं.	बु. कं.	गु.	शु. के.	श.	ग्र.
०	४	१	०	६	१	१	७	०	रा.
०	१२	१०	१९	३१	२४	०	·१५	१२	अ.
०	४६	४०	२१	२४	४५	२१	·१२	१२	क.
०	३०	१६	३३	२७	३	४	३३	२१	वि.
०	४३	३४	५५	५	१८	३३	२०	३२	प्र.

१	९	९	३२	४६	१२	८	३०	१९	वर्ष
सू.बुश	चं.	चं. उ.	मं.	बु. के.	गु.	श के.	श	रा.	ग्रह
०	३	०	०	११	०	०	०	०	मा.
०	२४	६	५	२८	४	१	६	७	वि.
०	२९	२	२	३२	१२	४०	५५	४९	क्ष.
०	५७	२९	२७	३२	५५	२७	४६	४४	प.

१	९	३२	४६	१२	८	३०	१९	१	१	१०	१
सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु	श.	रा.	ति.	न.	यो.	ल.
०	३	०	०	०	०	०	०	११	९	९	३
०	१५	२	०	४	०	६	७	३॥। =	५७॥	५७॥	३
							२८				९

संवत् १९२६ प्र. वैशाखवद्य ३० रवौ इष्टघट्यादि ३६ । १३ । २ स्फुटो मेषार्कप्रवेशः पार्श्वांतरे चतुर्दशभक्ते मध्यकोष्ठार्कस्य स्फुटा गतिः ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	
०	०	०	०	०	१	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	४	५	५	५	
४	६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२३	०	७	३३	२०	२७	३	१०	१७	२३	०	७	१३	२०	२७	४	११	१८	
०	५०	३८	५५	१०	५३	३५	१७	५९	३६	१५	५०	३१	९	४८	२७	७	४८	३१	१४	५९	४६	३४	२४	१६	१०	पं
०	७	२८	५	७	३९	२४	३०	१२	३२	११	२७	२४	३५	१५	३३	४३	४९	३	३५	३५	१०	२६	२९	२८	१९	क्ते
२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	
५	६	६	६	६	७	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	
२५	२	९	१६	२३	०	७	१४	२१	२८	५	१२	२०	२७	४	११	१८	२५	२	१०	१७	२४	१	८	१४	२१	
६	३	३	४	७	११	१६	२३	३१	३९	४८	५८	८	१८	२७	३६	४३	५०	५६	१	४	५	५	३	५९	५३	पूर्व
२	४०	५	५४	०	१४	४९	२९	११	४२	५३	३२	२७	१३	३१	९	२७	५०	३७	६	७	३५	२२	२१	३०	४३	

सं. १९२६ प्र. वैशाखवद्य ३० मेषार्कप्रवेशे वारादि

मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
१	४	७	४	१	४	६	१	२	४	५	७
३६	३२	५७	३५	३	५	३२	२५	५४	१४	४१	३०
१३	२१	४६	४९	५०	३०	२	६	५१	२६	५१	४२
२	४८	१२	४५	१०	२९	२२	४०	१	२८	३०	१६

स्वस्वगता वद्ध्रुवयुते स्वस्ववर्षजा भवंति ।

मेषार्कप्रवेशध्रुवे स्ववारादियुते मेषवृषाद्यर्कप्रवेशध्रुवो भवति ।

मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
०	२	६	२	६	२	४	६	१	२	४	५
०	५६	२१	५९	२७	२९	२५	४८	१८	३८	५	५४
०	३८	३३	३६	३७	१७	४९	५३	३७	१३	३८	२९
०	४६	१०	४३	८	२७	२०	३८	२९	३६	२८	१४

ध्रुवस्पष्टीकरणम् ।

ताजिकाब्दध्रुवान्नैव सिद्धान्ताद्यर्कजाः समाः ।
ध्रुवोऽर्कचलितः श्रेष्ठोऽतस्ते त्वज्ञाः कृतो नयैः ॥ १२६ ॥

अर्थ–अब पूर्वश्लोकसे जो वर्षप्रवेशका वारादि ध्रुवा लाये हैं उसका स्पष्टीकरण लिखते हैं– वर्षप्रवेशका मुख्य समय वह है कि जन्म समयका सूर्यराश्यादि वर्षप्रवेश कालिक सूर्यराश्यादिके बराबर हो अर्थात् प्रत्येक वर्षप्रवेशके समय जन्मकालिक सूर्यतुल्यही सूर्य होना चाहिये । परन्तु ताजिक ग्रन्थोंसे जो वर्ष प्रवेशमें वारादि ध्रुवा आती है उसपरसे और सिद्धान्तग्रन्थसे लाये हुए सूर्यतुल्य नहीं होते हैं कारण यह है कि ताजिकमें एक सौर वर्षमें सावन दिनादि ३६५ । १५ । ३१ । ३० ग्रहण किया है और सिद्धान्तमें ३६५ । १५ । ३० । २२ । ३० ग्रहण किया है अतः अन्तर होना सम्भव है । इसलिये ताजिकसे लाई हुई जो वर्षप्रवेशकी वारादि ध्रुवा है उसपरसे सूर्यको लाकर जन्मकालिक स्पष्ट सूर्यसे अन्तर करे जो कला विकला शेष रहे उसको ६० से गुणकर उस दिनका रविगतिसे भाग देकर घट्यादिक जो लब्ध हो उसको वर्षप्रवेशके वारादि ध्रुवामें घटानेसे स्पष्ट वर्षप्रवेशकी वारादि ध्रुवा होती है । परन्तु बहुतसे लोक ताजिकोक्त वारादि ध्रुवापरसेही वर्षपत्री बनाते हैं उक्त प्रकारसे स्पष्ट नहीं करते इस लिये आचार्य (ग्रन्थकार) कहते हैं कि स्पष्ट क्रिया नहीं करनेवाले अज्ञ (सिद्धान्तको नहीं जानते हैं) ॥ १२६ ॥

ध्रुववारादेश्चालनरूपं वर्षमासदिनघटीप्रवेशसाधनम् ।

जन्मार्कतुल्ये भाद्यर्केऽब्दवेशः प्रतिभान्तरे ।
अंशादितुल्ये मासाश्चाहःप्रवेशः कलासमे ॥ १२७ ॥

अर्थ–अब ध्रुवचालनरूप वर्षप्रवेश, मासप्रवेश, दिनप्रवेश और घटीप्रवेशका साधन लिखते हैं–जन्मकालिक सूर्यके राश्यादि तुल्य जब सूर्य होता है तो वर्षप्रवेश होता है, प्रत्येक राश्यन्तरपर अंशादि तुल्य होनेसे मासप्रवेश होते हैं । मासप्रवेशकालिकसूर्यमें एकएक अंश बढाकर कलादिक तुल्य होनेसे दिनप्रवेश होते हैं और दिनप्रवेशकालिक सूर्यमें एकएक कला बढाके विकलातुल्य होनेसे घटीप्रवेश होते हैं मासप्रवेशादि लानेके लिये अवधिके सूर्य और मास प्रवेशादि कालिक जन्मपत्रानुसार जो सूर्य है उन दोनोंका अन्तर करके साठसे गुण सूर्यगतिसे भाग देनेपर इष्ट घटी पल होगा । आगेके चक्रमें मासप्रवेश निकालनेकी सारिणी दी है । इस सारिणीके द्वारा मासप्रवेश लानेका उपाय यह है कि वर्षप्रवेशकालिक जो वारादि हैं उसमें अग्रिम मासके जो सूर्यकी राशि अंशपरसे इस कोष्ठकमें अङ्क (वारादि) आवे उसको मिलावे

तथा जिस कोष्ठकका अङ्क ग्रहण किया है उससे आगेका कोष्ठाङ्क अधिक हो या अल्प हो तो दोनों कोष्ठाङ्क अन्तर करे जो शेष रहे उससे सूर्यकी कला विकलाको गुणे तब जो हो वह पलमें धन या ऋण करे अर्थात् आगेको कोष्ठांक अधिक हो तो धन अल्प हो तो ऋण करे ॥ १२७ ॥

मुन्थानयनम् ।

मुन्था जन्मांगमाद्यब्दे प्रत्यब्दं राशिभोगिनी ।
वर्षमासाहःप्रवेशे ग्रहभावांश्च साधयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-प्रथम (पहिला) वर्षमें मुन्था जन्मलग्नमेंही रहती है फिर प्रत्येक वर्षमें एक एक राशि भोगती है अर्थात् वर्त्तमान वर्षसंख्यातक जन्मलग्नसे गिनने पर जो राशि हो उसी राशिमें मुन्था जाने । पूर्वजन्मपत्रमं जिस प्रकारसे ग्रह और भावका साधन लिखा है उसी प्रकारसे वर्षप्रवेश, मासप्रवेश दिनप्रवेशमेंभी ग्रह और भावका साधन करे ॥ १२८ ॥

दिनचर्याफलम् ।

दिनप्रवेशे भावानां येषां ज्ञांशाः शुभेन्दुभिः ।
युक्तेक्षितास्तदाप्तिः स्यात्सर्वताजिकसम्मता ॥ १२९ ॥

अर्थ-अब दिनचर्याका शुभाशुभ लिखते हैं-दिनप्रवेशकालिक द्वादश भावोंका साधन करके देखे कि जिन जिन भावोंका नवमांश शुभ ग्रह और चन्द्रमासे युक्त तथा दृष्ट हो उन उन भावंसंबन्धी शुभ फल जाने । और पाप ग्रहोंसे युत दृष्ट होनेसे उस भावसम्बन्धी अशुभ फल जाने यह विचार सब ताजिक ग्रन्थोंसे सहमत है ॥ १२९ ॥

समस्ताब्दफलदवर्षेशार्थं पञ्चाधिकारिणः ।

नेतारोऽद्भवेन्थेशा निशीन्दीशो दिवार्कपः ।
त्रिभपोरिष्टदानेषां दृष्टाङ्गं वर्षपो बली ॥ १३० ॥

अर्थ-सम्पूर्ण वर्षमें शुभाशुभ फलको देनेवाला वर्षेश होता है, इसलिये वर्षेश ज्ञानार्थ पञ्चाधिकारी लिखते हैं-१ वर्षलग्नेश २ जन्मलग्नेश, ३ इन्थिहेश (मुन्थेश) ४ रातमें वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रराशीश (जिस राशिमें चन्द्रमा हो उसका स्वामी) और दिनमें वर्षप्रवेश हो तो सूर्यराशीश (सूर्य जिस राशिमें हो उस राशिका स्वामी) और ५ त्रिराशिपति (आगेके चक्रमें देखना) यही पाँच वर्षेशाधिकारी

होते हैं इन पाँचोंमें जो बलाधिक (अधिक बलवाला) हो और लग्नको देखता हो वही वर्षेश होता है ॥ १३० ॥

त्रिभपा मेषादिवर्षलग्नात् ।

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	लग्नम्
सू.	शु.	श.	शु.	गु.	चं.	बु.	मं.	श.	मं.	गु.	चं.	दिवा
गु.	चं.	बु.	मं.	सू.	शु.	श.	शु.	श.	मं.	गु.	चं.	रात्रौ

वर्षलग्न जो हो उसके नीचेके ग्रहमेंसे दिन और रात्रिके विभागसे त्रिराशिपति ग्रहण करना जैसा कि वर्षलग्न कन्या है तो दिनमें वर्षप्रवेश हो तो चन्द्र और रात्रिमें वर्षप्रवेश हो तो शुक्र त्रिराशिपति होंगे ऐसेही सर्वत्र जानना ॥

अब ग्रहोंके बल जाननेके लिये पञ्चवर्गी कहते हैं।

चक्रमें सब खुलासा लिखा है किन्तु बालावबोधार्थ भाषामें खुलासा कर देते हैं- पाँच प्रकारके बल जिसमें हों वे पञ्चवर्गी कहे जाते हैं सो इस पञ्चवर्गीमें यह बल हैं-१ गृहबल, २ उच्चबल, ३ हद्दाबल, ४ द्रेष्काणबल, ५, नवांशबल।

इन पाँचों बलोंके आनयनप्रकार लिखते हैं-

१ गृहबल-जिस राशिके जो स्वामी हैं सो पहिले लिखाही है अब ग्रह यदि अपनी राशिमें हो तो तीस, मित्रके घरमें हो तो २२ । ३० समके घरमें १५ शत्रुके घरमें हो तो ७। ३० बल होते हैं इस प्रकारसे सभी ग्रहोंके गृहबल लिखनेके कोठेमें स्थापन करना ।

२ उच्चबल-ग्रहोंके उच्च नीच कह आये हैं वर्षप्रवेशकालिक स्पष्ट ग्रहकी राश्यादिमें उन उन ग्रहोंकी नीच राश्यादि घटाकर छः राशिसे कम हो तो उसीका अंशात्मक (राशिको ३० से गुणकर अंश मिलादेना) कर लेना । और यदि ग्रहोंमें नीच घटानेपर छः राशिसे अधिक शेष रहे तो फिर बारमें घटाके छः राशिसे कम करके अंश करना उस अंशादिमें नौ ९ का भाग देकर जो लब्धि हो वही उच्चबल होता है ।

३ हद्दाबल-हद्दाचक्र बृहत्पञ्चवर्गी चक्रमें दिया है । ग्रह जिस राशिमें जितने अंशपर ही उसी राशिके नीचे वह अंश जिस कोठेके भीतर आ जाय उसी कोष्ठकमें लिखा हुआ ग्रह हद्देश होता है अपनी हद्दामें ग्रह हो तो १५ मित्रहद्दामें ११ । १५ समहद्दामें ७ । ३० शत्रुहद्दामें ३ । ४५ बल होते हैं ।

४ द्रेष्काणबल–राशिका त्रिभाग अर्थात् दश दश अंशका एक एक द्रेष्काण होता है । मेषादि राशियोंके प्रथम द्रेष्काणमें मङ्गलसे राशिसंख्यातुल्य गिनकर ग्रह लेना, दूसरा द्रेष्काणमें सूर्यसे, तीसरा द्रेष्काणमें शुक्रसे गिनकर द्रेष्काणस्वामी जानना । ग्रह स्वद्रेष्काणमें हो तो १० मित्रमें ७ । ३० सममें ५ ।० शत्रुमें २। ३० बल होते हैं ।

५ नवांशबल–राशिके नौ टुकडे करनेको नवांश या नवमांश (मुसलह) कहते हैं । नवांशके प्रत्येक खण्ड तीन अंश बीस कलाके होते हैं मेष, सिंह, धनु इन तीन राशियोंमें मेषादिक नवांश होते हैं । वृष, कन्या, मकरमें मकरादिक नवांश होते हैं । मिथुन, तुला, कुम्भमें तुलादिक कर्क वृश्चिक मीनमें कर्कादिक नवांश होते हैं जिस राशिके नवांशमें ग्रह हो उस राशिके स्वामी स्वयं (वही ग्रह) अर्थात् स्वनवांशमें हो तो ५ मित्रमें ३ । ४५ सममें २ । ३० शत्रुमें १ । १५ बल होते हैं ।

उपरोक्त पांचों बल सभी ग्रहोंको पृथक् पृथक् आनकर योग करके चारसे भाग देनेसे जो लब्धि हो वही बल होते हैं यह बल पाँचसे अल्प हो तो हीन बली, पाँचसे अधिक दशके भीतर मध्यबली, दशसे ऊपर पूर्ण बली जानना ।

पञ्चवर्गी बल लानेका प्रकार जो पहिले लिखे हैं उस प्रकारसेभी कुछ देर हो सकता है इसलिये केवल ग्रहोंके राशि अंशोंपरसे चतुर्भक्त पञ्चवर्गीय बल लाकर आगे कोष्ठक दिये हैं । इस चक्रमें बारहों राशियोंमें प्रत्येक ग्रहके अंश देखकर बल लिखले ।

बृहत्पंचवर्गीचक्रम् ।

गृहकोष्ठे ग्रहगांशवशात् स्वर्क्षादिजं बलं स्थाप्यम्												गृह १
नीचखेटांतरं कार्यं षड्भाल्यं तु यथा तथा तल्लवा नवभिर्भक्तास्ताजिके तुंगजं बलम् ॥												उच्च २
मे ०	वृ १	मि २	क ३	सि ४	क ५	तु ६	वृ ७	ध ८	म ९	कुं १०	मी ११	हद्दा ३
गु ६	शु ८	बु ६	मं ७	गु ६	बु ७	श ६	मं ७	गु १२	बु ७	बु ७	शु १२	ग्रहस्थांशपातसंख्या बलम्
शु १२	बु १२	शु १२	शु १२	शु ११	शु १५	बु १४	शु ११	शु १७	गु १४	शु १३	गु १६	
बु २०	गु २२	गु १७	बु १९	श १८	गु २१	गु २१	बु १९	बु २१	शु २२	गु २०	बु १९	
मं २५	श २७	मं २४	गु २६	बु २४	म २८	शु २८	गु २४	मं २६	श २९	मं २५	मं २८	
श ३०	मं ३०	श ३०	श ३०	मं ३०	श ३०	मं ३०	श ३०	श ३०	मं ३०	श ३९	श ३०	

द्रेष्काणो हद्दावत् ।

मे०	वृ१	मि १	क. ३		कं ५	तु६	वृ७	ध८	म ९	कुं१०	मी ११	द्रेष्क.४
मं	बु	गु	शु	श	सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	१०
सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	सू	चं	मं	बु	गु	२०
गु	श	सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	सू	चं	मं	३०

अथ नवांशो द्रेष्काणवत् ।

मं०	वृ१	मि २	क३	सिं४	क५	तु६	वृ७	ध८	म९	कु१०	मी११	मुसल्लह २०
सू	शु	श	शु	सू	गु	श	शु	सू	शु	श	शु	१०
गु	चं	बु	मं	गु	चं	बु	मं	गु	चं	बु	मं	२०
श	मं	गु	चं	श	मं	गु	चं	श	मं	गु	चं	३०

स्वक्ष	उच्च	हद्दा	द्रेष्का.	मुसल्लह	नाज. भूष
३० ०	२० ०	१५ ०	१० ०	५ ०	स्वक्षे त्रादि
२२ ३०	१५ ०	११ १६	७ ३०	३ ४५	मित्र०
१५ ०	१० ०	७ ३०	५ ०	२ ३०॥।	सम०
७ ३०	५ ०	३ ४५	२ ३०	१ १५	शत्रु०

ग्रहस्य पंचकोष्ठवलैक्ये चतुर्भक्ते पंचाल्पे हीनवली पंचाधिके मध्यवली दशाधिके पूर्णवली

चत्वारिहर्षस्थानानिअत्र वलम ५

सू९	चं३	मं६	बु१	गु११	शु५	श १२

स्थानवलं १

स्वक्षत्रा वलं

अधिकारवलं २०

दिन पुंग्रहा रात्रौ स्त्रीग्रहा वलिनः

कालवलं ३

स्त्री	पुं.	स्त्री	पुं.	ग्र.
१	७	७	१०	भा
२	५	८	११	वें
३	६	९	१२	बु

पुंस्त्रीग्रहवलं ४

मेष.

०	सू	चं	मं.	बु	गु	शु	श.	रा.
३।२०	१२	११॥।	१६।	४।	११॥।	८॥	४।	७।
६।०	१२	११।	१५।	४॥	११॥	१०॥	४॥	७॥
६।४०	११	१०।	१४॥	५॥	८॥।	९॥	५॥	८॥
१०।०	११।	१०॥	१४।	६।	९	१३।	५।	८॥
१२।०	१२॥।	११॥	१५।	५॥	९।	११॥	४॥।	८।
१३।२०	१२॥।	११	१३।	७।	९।	११।	४॥।	८।
१६।४०	१३॥।	१३	१३	७॥	९॥	९।	५॥।	८॥
२०।०	१२॥	११	१२॥।	८॥	९।	९।	५॥।	८॥।
२३।२०	११।	११।	१४॥।	५।	९॥	९॥	४॥।	८॥
२५।०	११॥	११॥	१५॥।	५॥	९॥।	११	४॥।	८।
२६।४	१०॥	१०॥।	१२॥।	५॥	९	८	७।	९।
३०।१०	१०॥	११	१२।	६॥	९॥।	१०॥।	७॥	९

वृष.

१	सू.	चं	मं.	बु.	गु	शु.	श.	रा.
३।२०	८	८॥।	६	१०	७	१७	८॥	११॥।
६।४०	८	८॥	६	११।	८	१७	८॥	११॥।
८।०	८।	८॥।	६।	९॥	८	१६॥।	७॥।	११॥
१०।०	८।	८॥।	६।	११॥।	८।	१४॥।	७॥	११॥
१३।२०	८॥।	१०॥।	७॥	१०	८।	१४	७।	११
१४।०	८	१०।	६॥	१०॥	८	१५	७॥।	११॥
१६।४	९।	११।	७।	७॥।	१०॥।	१४	६॥।	१०॥
२०।०	९।	११	७।	८।	११	१३।	६॥।	१०॥।
२२।०	८॥।	१०	६	८	१०॥	१३॥	८॥	११
२३।०	७॥।	९	६	९	८।	१४।	११।	१२
२६।४०	८॥	८॥	६	९॥।	८।	१४।	११।	१२
२७।०	७॥	८	५॥।	१०।	७॥।	१४॥	११॥	१२॥
३०।०	८।	९	८	९।	८॥।	१३॥	९	११॥

मिथुन.

२	सू	चं.	मं.	बु	गु.	शु	श.	रा
३।२०	८	८॥	६	१४॥।	९।	१०॥।	८	११॥।
६।०	८	८॥।	६॥।	१४॥	१०।	१०॥।	७॥।	१०॥
६।४०	८	८॥।	६॥।	१२॥	१०।	११॥	७॥।	१२
१०।०	८	८॥।	६	१२॥।	१०॥	११॥	७॥।	८।
१२।०	७॥।	७।	७	१३	८॥।	११॥।	९	११॥
१३।२०	८॥	९	७॥।	१२।	११॥	८॥।	८	१०॥
१६।४०	८॥	९	७॥।	१२।	११॥।	८॥।	८	१०॥
१७।०	८॥।	९॥	८	१२।	१२॥	८॥	७।	१०।
२०।०	८॥।	९।	९॥	१२	११	८	७।	१०।
२३।२०	९॥।	९।	९	१२	१०।	८।	७।	९॥।
२४।२०	९॥	९	८	१४॥	१०	९।	९॥।	१०।
२६।४०	८॥	८	५।	१३॥	९।	१०	१०॥	१०।
३०।०	८॥	७॥।	५।	१४।	९॥	९।	११॥।	१२

कर्क०								
२	सू	५	म.	बु	गु	शु	श.	रा
३।२०	९॥	२४॥	२॥	९॥	११॥।	८	६॥	६॥
६।४०	१०॥।	२५॥।	९।	७॥	११॥।	९॥।	६॥	८॥
७।०	९।	२६॥	९	८॥	११।	८।	६॥।	८॥।
१०।०	८	२६॥	६	९॥	१०॥	११	७।	९॥
१३।०	८	१२॥	६	१०।	१०॥	११।	८	९॥
१३।२०	८	१२।	६।	१२	१०॥	१८।	८	१०॥
१६।४०	८।	१२॥	७	११॥।	११।	७।	७॥।	९
१७।१०	८।	१२॥	६।	१२	१३॥	७।	७॥।	९
२०।०	९	१२॥	७	९	१२॥।	६।	६॥।	८
२३।०	९।	१५	७।	७॥	१३॥	५॥।	७।	७॥
२६।०	८।	१४	७।	७॥।	१३॥	५॥।	७।	७॥
२६।४०	८।	१४	६।	८॥।	९॥	६॥।	१०।	८॥
३०।०	८॥	१४।	६॥	८॥	११॥	६॥।	२॥।	८

सिंह०								
४	सू.	च.	म.	बु.	गु	शु.	श.	रा.
३।२०	११॥।	९।	७॥।	८॥	१३	५।	८॥।	७॥।
६।०	१२।	९	६॥।	८॥	१२॥	६॥।	९॥।	८
६।४०	१३।	८	६	९॥	९॥।	९॥	९॥	७॥।
५।१०	११	८	६	१०।	९	९॥।	९॥।	८॥
११।०	१२	९॥	७	८॥।	११॥।	७॥।	७॥।	७॥।
१३।२०	१२	९॥	७	८॥।	११॥।	६	९॥।	७॥।
१६।४०	१३	८॥।	७	९	११॥।	५॥।	९॥।	७॥
१७।०	११॥	८।	६॥।	९॥।	११।	६	१०।	७॥।
२०।०	११॥	८।	६॥।	११॥	११।	६।	८।	७॥।
२३।२०	११।	८।	८।	११।	११	६॥	८॥	७॥
२४।०	११॥	८॥	९	१०	१०।	६॥	८।	७॥
२६।०	१२॥	९।	१२	८।	११	४॥	७।	७।
३०।०	१२॥	९।	११॥	८।	११।	४।	७।	६।

कन्या०								
५	सू.	चं.	मं.	बु	गु.	शु	श.	रा.
३।२०	६॥।	६	५।	१७।	७॥।	७॥	११।	९।
६।४०	६।	६	५॥	१७।	७॥।	७॥।	११।	९।
७।०	६॥।	६।	५॥।	१७	८॥	८॥	१०॥	९॥।
१०।०	६॥।	६।	६	१५	८॥।	८॥।	१०॥	९॥।
१३।२०	४॥।	५॥	६	१६	७।	७।	११।	९।
१६।४०	४॥	५	५	१६।	६॥।	६॥।	११॥	९॥
१७।०	४॥	५	५	१६॥।	६॥।	६॥।	११॥	९॥
२०।०	५।	५॥।	६।	१५॥।	९॥	९॥	१०।	९॥
२१।०	५॥	६॥।	६॥	१६	९॥।	९॥।	१०॥	८॥।
२३।२०	५॥	६॥।	८॥	१६	७॥।	६।	१०॥	८
२६।४०	६	६	८॥	१६	७॥।	६।	१०॥	८
२८।०	५	५॥।	८।	१६॥।	७॥	६॥	१०॥।	८।
३०।०	४	४॥।	८॥	१७॥	६	७॥	१३॥।	८।

तुला.

६	सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
३।२०	४॥	६॥	६।०	११	६॥।	११	१३।	८॥
६।०	४॥।	६॥।	७।	११	७।	१०॥	१३।	८
६।४०	४॥।	६॥	७।	१२।	७।	१०॥	११	८
१०।०	४॥	६॥	६॥।	१२॥।	७॥।	१०॥।	११।	८
१३।२०	३॥।	४।	५	१४।	६	११॥।	१४।	८॥
१४।०	३॥।	४।	६	१४।	६	११॥	१४।	८॥।
१६।२०	४॥।	५।	७	१४।	९।	१०॥।	१३॥	७॥।
२०।०	५।	५।	७।	११	९॥	१०॥	१२॥	७॥
२१।०	५॥	६	८॥	१०॥	१०।॥	१०।	१०॥	६॥।
२३।२०	५	४॥	७॥।	१०॥	८	१३।	११	६॥।
२६।४०	४॥।	४॥	६॥।	१०॥।	७॥	१४	११॥।	६॥।
२८।०	४॥।	४॥	६॥।	१०।	७॥	१३।	१२॥।	६॥।
३०।०	४॥।	४॥	९॥।	१०।	८।	१०॥	१०॥।	७॥।

वृश्चिक.

७	सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	र
३।२०	८।	८।	१७	७॥	९।	५॥	८॥	४॥
६।४०	८॥।	७॥	१७	७।	९	४॥।	८।	४॥
७।०	८	७।	१६॥	८।	८॥	५।	८॥	४॥।
१०।०	७	६॥	१४	९	७॥।	६॥	९॥	५॥
११।०	८॥	६॥	१६॥।	८॥	७॥।	८॥	९॥	५॥
१३।२०	८॥	६॥	१३	१०।	७॥	७	९।	५॥
१६।४०	८॥।	९	१२॥	९॥।	८	६।	९	५
१९।०	९	७	१३॥	९॥।	८॥	६।	९	४॥।
२०।०	९	८	१४।	९	११॥	६।	८	४
२३।०	७॥	७	१३।	११	९॥	६।	९॥	४॥।
२४।०	७॥।	७।	१३॥	७॥।	९॥	५।	९।	९॥।
२६।४०	७	६।	१२॥।	८॥।	६॥।	७।	१२।	४॥।
३०।०	७।	६॥।	१३॥।	८।	७॥	७	११।	५।

धनु.

८	सू	चं	म	ब	गु	शु	श	रा
३।२०	८।	८	११	८॥	१२॥	६।	८।	४॥
६।४०	८।	७॥	१०।	७॥।	१२	६।	८॥।	४॥
१०।०	८॥	७॥	१०।	७	१२।	७॥	८।	४॥।
१२।०	९।	१०।	११।	६।	११॥	८।	७।	५।
१३।२०	८।	९॥	१०।	७।	११	८॥।	८।	५।
१६।४०	९।	९	१०॥	७।	१०॥।	८॥।	७।	५।
१७।०	८	८॥।	१०।	८	१०॥	९	८॥	५
२०।०	८।	८॥।	१०।	९॥।	१०॥	७।	८।	५॥
२१।०	७॥	७	९॥	९॥।	९॥।	८॥	१०।	६
२३।२०	८॥	८	१२।	७	१०॥।	७॥।	९।	५।
२६।०	८॥।	८।	१३॥	६॥	११	६॥	८॥।	५।
२६।०	८	७॥	१७॥।	७॥	९॥।	७॥।	११॥	६
३०।०	८।	७॥	१७।	७॥।	१०॥	८	११॥	७

मकर.

९	सु	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
३।२०	६।।	६	९।	८	५।।।	९।।	१४।।	७।।।
६।०	६।।।	६	९।।।	७।।	५।।	९।।	१४।	७।।।
६।४०	६।।	५।।	१०।	७।।।	६।।	९।	१३।।	८
१०।०	८	६।।	१०।।	७।।	८।।	८।।	१३।	६।।।
१३।२०	८	७।।	११	७।	७।।।	८।।	१२	६।।
१४।०	९।	७।	११।	८।।	७।।	९।।	१२।।	७।
६।४०	७।।	६।।	१०	८।।	४।।	१२।।	१३।	८।
२०।०	८।	६।।	१०।।	९	४।	११।।	१३	८।
२२।०	३।।।	७।	९।।।	८	५	११।।	१२।।	८
२३।०	४।।	९।।	९।।	८	५	१४।।	१४	८
२६।०	९।।	९।।	९।।।	८	५।	[illegible]	१४।।	८
२६।४०	१०।।	१२।।	१२।।	७	६।	९	१३।।	७।
३०।०	९।।	३।।	१३।।	७।।।	६	९।	१४	७।।

कुंभ.

१०	सु	चं	म	बु	गु	शु	श	रा
३।२०	७	६।	८।।	१०।।	४।।	४।।।	१५	८।।
६।४०	७।	६।।	९।।	१०	४।।	१२	१३	८।।
७।०	७।	६।।।	८।।।	१०।	५।।	१२	१३	८।।
१०।०	७।।	६।।।	८।।।	८।	५।।।	१४	१३।	९।।
१३।०	७।	६।।	८।	९।।।	४।।।	११।	१२।।	८।
१३।२०	८	७।।	९।	८।।।	७।।	१०।	१२।।	८।
१६।४०	८।	७।।	९।	८।।	७।।।	१०।।	१२।।।	८।।।
२०।०	८।।	८	९।।	८।	८।।।	१०।	११।।।	८।।
२३।२०	९।	९।।।	१२।।	६।	७	९।।।	११	७
२५।०	९	९।।।	११।।	६।।	६।।।	१०।।।	११	८।
२६।४०	८।	८।।।	८।।	७।।	५।।।	११।।।	१४	९।
३०।०	८।	८।।।	८।।	८	५।	११	१४	९।

मीन.

११	स	चं	म	बु	गु	शु	श	रा
३।२०	९।।।	९	९।	५।।।	१०।	१२।।	७।।।	८
६।४०	१०।।।	९।।	१०।।	५।।	१०।।	१२	७।।।	८
७।०	१०।।।	९।	१०।	६।	१२।	१२।	८	८।
१०।०	९।।।	१०।।	९।।।	५।	१३	१२	५।	७।।।
१३।०	११।।	१०।।	११	४	१६	९।	५।	७
१६।२०	११।।।	११।	११।।	६।।।	१३।	६।।	४।।।	६।।।
१६।४०	११	१०।	१०।।।	६।।	१३।	९।।।	५।।	७।।
१९।०	१३	१०।	१०।	६।।	१४।	९।।	५।।	७।।
२०।०	१२	१३।	१३	३।।	१५।	८।।	४।।	४।।।
२३।२०	११।।।	११।	१३।।।	४।	१७	९	५।।	७।
२६।४०	११।।।	११।।	११।।।	४।।	१३।	९	५।	७।
२८।०	१२।	११।।	१४	४	१४।	६	४।।।	७
३०।०	११।	१०।।	११	५।	१३।	९।।	०	८

हीनांश पात्यांश दशा।

अल्पांशः प्राक् ततः पुष्टस्तदग्रे सांगखेचराः।
प्रान्त्यादुपान्त्यं संशोध्यं मुहुस्ते पात्यभागकाः॥
दशाब्दाद्यापात्ययुजा तष्टाः पात्यांशकाः पृथक्॥ १२१॥

अर्थ—अब वर्षपत्रमें हीनांश—पात्यांश दशा निकालनेका प्रकार लिखते हैं—वर्षप्रवेशकालिक जो लग्नसहित सूर्यादि सात ग्रह स्पष्ट हैं उन सबोंके राश्यङ्क छोडकर जिसका अंश सबसे कम हो उसको अंशादि सहित पहिले लिखै पीछे उससे अधिक अंशवालेको फिर इससेभी अधिक अंशवालेको इस प्रकार आठोंको अधिकाधिक क्रमसे लिखे इसीको 'हीनांश' कहते हैं। अब इसी हीनांशको, जिसी प्रकार अधिकाधिक क्रमसे लिखै उसी प्रकारसे अधिक अंशवालेमें न्यून (थोडे) अंशवालेंको घटाता जाय अर्थात् सबसे जो कम अंशका है उसका तो जैसाका तैसाही अलग रक्खे और उसीको आगेके आसन्न अधिकांशवालेमें घटाकर लिखे इसी तरह अन्तके अधिकांशतक करैं, इसीको पात्यांश कहते हैं। अब सभी पात्यांशका योग जो कि सबसे अधिक अंशवाले ग्रहके अंशादिके तुल्य होता है उससे प्रत्येक ग्रहोंके और लग्नके पात्यांशको पृथक् पृथक् भाग देनेसे वर्षादिक दशा होगी भाज्य भाजककी एक जातीय करके भाग देना वर्ष तो शून्यही होगा मासादि लानेके लिये बारह तीस आदिसे शेषको गुणकर पुनः पुनः भाग देना॥ २१॥

मुग्धादशा दृष्टि मैत्री साधनम्।

मुग्धा प्रत्यब्दमग्राग्राद्विंशोत्तर्यनुपाततः।
गक्के भन्के मझे कासे पादर्घ्यां दृग्वितारिगा॥ १२२॥

अर्थ—मुग्धादशा (इसीको बहुतसे आदमी मुद्दादशा कहते हैं) दृष्टि और मैत्री जाननेका प्रकार लिखते हैं—प्रत्येक वर्षमें अन्तिम मुद्दादशा जिस ग्रहके जितने दिन बीत जाय उससे आगेके वर्षसे उसी ग्रहके बाकी मास दिन ग्रहण करके विंशोत्तरीके अनुसार सभी ग्रहोंकी दशा क्रमसे लिखें और मुद्दादशा किस ग्रहकी कितनी होनी चाहिये इसको जाननेके लिये विंशोत्तरी दशासे अनुपात करे अर्थात् एक सौ बीस वर्षमें यदि प्रत्येक ग्रहकी महादशावर्ष पाते हैं तो एक वर्षमें कितनी दशा होगी इस अनुपातसे यह सिद्ध भया कि एक सौ बीससे प्रत्येक ग्रहके महादशावर्षको भाग देनेसे जो लब्धि हो वही दशा होगी जैसा कि सूर्यके महादशा वर्ष ६ हैं इसको १२० भाग देनेपर भाग न भया इसलिये वर्ष स्थानमें शून्य भया, पीछे ६ को मास बनानेके लिये बारहसे गुणा किया तो ७२ हुए इसमेंभी मास नहीं लगा इसलिये मास-

स्थानमेंभी शून्य भया अब दिन बनानेके लिये ७२ को ३० से गुण तो २१६० हुआ इसमें १२० से भाग दिया तो १८ दिन सूर्यकी मुद्दादशा भई अथवा प्रत्येक ग्रहकी महादशा वर्षको ३६० से गुणकर १२० से भाग देनेसे दिनात्मक मुद्दादशा होगी जिस ग्रहके दिनमें ३० से अधिक हो तो ३० से भाग लेकर मासादिक कर लेना । यदि गतवर्षके आखरीकी दशा ज्ञात नहीं हो तो "जन्मर्क्षसंख्या सहिता गताब्दा द्व्यूनिता नन्दहृतावशेषात् । आचंकुराजीशबुकेशुपूर्वा मुद्दा दशा स्यात्किल वर्षवेशे ॥" अर्थात् गत वर्षमें जन्मनक्षत्रकी संख्या अश्विनीसे गिनकर मिला देना तब जो हो उसमें दो घटा देना और नौ ९ से भाग देनेपर एक शेष रहै तो आ (आदित्य) सूर्य, २ शेष रहै तो चन्द्र, ३ रहै तो मङ्गल, ४ रहै तो राहु, ५ रहै तो बृहस्पति, ६ रहै तो शनि, ७ रहै तो बुध, ८ रहै तो केतु, ९ शेष रहै तो शुक्रकी दशा वर्षारम्भमें जाननी । जिस ग्रहकी दशा वर्षादिमें हो उस ग्रहकी दशा जो नीचे कोष्ठकमें लिखी है उसको दिनात्मक करके वर्षप्रवेशकालिक भजातसे गुणकर भभोगसे भाग देनेसे भुक्तदशा-दिन होगा उसको सम्पूर्ण दशामें घटानेसे भोग्यदशा होगी भोग्य दशा लिखकर आगेके ग्रहोंकी दशा क्रमसे लिखै ॥

मुग्धादशाचक्रम् ।

ग्रहः	सू.	चं.	मं	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	१	०	१	१	१	१	०	२
दि.	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०

अब वर्ष प्रवेशमें दृष्टि विचार लिखते हैं—ग्रह जिस स्थानमें हो उससे तीसरे और ग्यारहवें स्थानपर एक चरण १५ कला दृष्टि होती है और उक्त दोनों स्थानोंमें ३। ११ टिके हुए ग्रह मित्र होते हैं । चतुर्थ और दशम स्थानपर दो चरण (३० कला) दृष्टि होती है और इन दोनों ४।१० स्थानोंमें टिके हुए ग्रह शत्रु होते हैं । पञ्चम और नवम स्थानपर तीन चरण (४५ कला) दृष्टि होती है तथा इन दोनों ५ । ९ स्थानोंमें टिके हुए ग्रह मित्र होते हैं । प्रथम (जिस स्थानमें ग्रह है) और सप्तम स्थानपर पूर्ण (चार चरण ६० कला) दृष्टि होती है इन दोनों १ । ७ में टिके हुए ग्रह शत्रु होते हैं बाकिये स्थानमें स्थित ग्रह सम होते हैं, अर्थात् जिस ग्रहका मित्र, सम, शत्रु जानना हो वह जिस स्थानमें हो उसस्थानसे ३ । ५ । ९ । ११ में जो ग्रह हों वे सब मित्र होते हैं २ । ६ । ८ । १२ में जो ग्रह हों वे सम होते हैं और १ । ४ । ७ । १० में टिके हुए ग्रह शत्रु होते हैं ग्रन्थान्तरमें श्लोकभी है कि

" मित्रं त्रिकोणत्रिभवस्थितः स्याद्विरिष्फषष्ठाष्टगतः समः स्यात् । केन्द्रेषु शत्रुः कथितो मुनीन्द्रैर्वर्षादिवेशे फलनिर्णयाय ॥ " अर्थ स्पष्ट है और आशय पहिले लिख भी चुके हैं ॥ १३२ ॥

वर्षलग्नेन त्रिपताकाज्ञानम् ।

नवभिर्हायनैश्चन्द्रश्चतुर्भिः शेषखेचराः ।
भाज्याः समाद्याश्चन्द्रश्चेच्छुभविद्धः शुभप्रदः ॥ १३३ ॥

अर्थ–अब त्रिपताकीका ज्ञान लिखते हैं–त्रिपताकीचक्र नीचे लिखा है उस चक्रमें ऊपरकी तीन रेखाओंमें जो मध्य (बीच) की रेखा है उसमें वर्षलग्नकी संख्यासे लिखना शुरूकरके बारहों अङ्क लिखै पीछे गत वर्षसंख्यामें नौसे भाग देकर जो शेष बचै उसको जन्मकालिक चन्द्रमामें मिलावे तब जो राश्यादि चन्द्र हो उसके अनुसार त्रिपताकी चक्रमें चन्द्रमा स्थापित करै और दूसरे अन्य ग्रहके लिये गताब्दमें चारसे भाग देकर जो शेष बचै वह प्रत्येक ग्रहमें मिलाकर त्रिपताकीचक्रमें उस उस स्थानमें लिखै यदि उस त्रिपताकीचक्रमें चन्द्रके साथ शुभग्रहका वेध हो तो शुभ जानना । और पाप ग्रहका वेध हो तो अशुभ जानना । मास प्रवेशमें गताब्दसावयव ग्रहण करके अनुपातद्वारा अंश लाकरभी जन्मकालिक ग्रहमें मिलावै ॥ १३३ ॥

त्रिपताकी चक्रम् ।

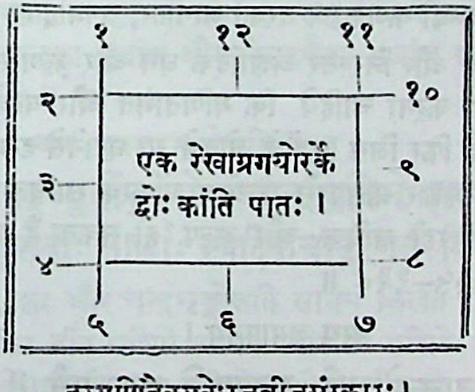

दृग्गणितैक्यवेधजवीजसंस्कारः ।

दीनानाथकृतं वीजं मध्येन्दौ षट्कली ऋणम् ।
ग्रहलाघवजे तुङ्गेऽङ्गांशाः पातेङ्कदकलाः ॥ १३४ ॥

अर्थ–अब ग्रहलाघवसे जो ग्रह स्पष्ट होते हैं उनको दृग्गणितैक्य करनेके लिये वीजसंस्कार लिखते हैं–दीनानाथ (ग्रन्थकार) का किया हुआ वीज इस प्रकार है

कि ग्रहलाघवके अनुसार जो मध्यम चन्द्र हो उसमें छः कला घटा देना चाहिये तथा चन्द्रोच्चमें छः अंश ऋण करना चाहिये और पात (राहु) में २९ कला ऋण करना चाहिये ऐसा करनेसे दृग्गणितैक्य होगा ॥ १३४ ॥

अथ गोलज्ञानं विनाऽपि तन्त्रकरणविदां बीजसाधनोपायः ।

अगोलज्ञहितार्थं हि ब्रुवेऽहं बीजसाधनम् ।
स्पार्शं श्रवोन्मीलनजमन्तरं बहुवर्षजम् ॥ १३५ ॥
ज्ञात्वा सूक्ष्मतरं यन्त्रैः सूर्येन्दूच्चं धनाधनम् ।
लवादिकं तथा कार्यं पूर्वाब्देषु निरन्तरम् ॥ १३६ ॥
कल्पना चासकृत्कार्या कोऽस्मिन्हीनोऽधिकस्तु कः ।
येन दृग्गणितैक्यं स्यात्तत्स्फुटं बीजसंज्ञितम् ॥ १३७ ॥
एवं ग्रासवशात्पातो बहुकालान्तरे पुनः ।
गोलज्ञसाधिता वेलाऽधिकाल्पा तु युगान्तरे ॥ १३८ ॥

अर्थ–अब बीजसाधनका उपाय लिखते हैं–जो गोलको नहीं जानते हैं उनके हितके वास्ते बीजसाधनका प्रकार कहते हैं, बहुत वर्षोंसे उत्पन्न स्पर्शकर्णसम्बन्धी अथवा उन्मीलनसम्बन्धी कर्णके अन्तरको जानकर, यन्त्रोंद्वारा सूर्य और चन्द्रमाका उच्च पूर्व वर्षोंमें सूक्ष्म और निरन्तर अंशादिक धन और ऋण साधन करना चाहिये तथा वारंवार कल्पना करना चाहिये कि गणितागत और यन्त्रोत्पन्नमें कौन अल्प और कौन अधिक है फिर जिस अङ्कोंके जोडने या घटानेसे दृग्गणितैक्य हो उसीको बीज कहते हैं इसी प्रकार ग्रासपरसे गोलवेत्ताओंकरके साधित जो पातकाल उसमें बहुत कालान्तर होनेपरही अधिक और अल्प हो सकता है अर्थात् जल्दी फरक नहीं पडता है ॥ १३५–१३८ ॥

अथ क्षमापनम् ।

मया तु बालबोधार्थं ग्रहणादि प्रकथ्यते ॥
क्वचित्सूक्ष्मादिरहितं न दूष्यं विबुधैरतः ॥ १३९ ॥

अर्थ–ग्रन्थकार क्षमा प्रार्थना करता है–मैं बालकोंके बोधके लिये ग्रहण आदि विषय कहता हूं इसलिये कहीं स्थूल प्रकारभी विद्वानोंसे दूषित करने योग्य नहीं है ॥ १३९ ॥

अथ ग्रहणसम्भवज्ञानम् ।

व्यग्विन्दुभुजभागाश्चेदिन्द्राल्पा ग्रहसम्भवः ।
याम्यगोले व्यगुविधौ तेऽष्टाल्पाश्चेद्रविग्रहः ॥ १४० ॥

अर्थ–अब ग्रहणसम्भवज्ञान लिखते हैं–चन्द्रमामें राहुको घटाकर शेष जो बचे उसका भुज करके अंश कर लेना वह अंश यदि चौदहसे कम हो तो चन्द्रग्रहणका सम्भव होता है । राहु घटा॰हुआ चन्द्रमा यदि याम्य गोलमें होय और इसका भुजांश आठसे कम होय तो सूर्यग्रहणका सम्भव होता है । ग्रहलाघवादि ग्रन्थोंमें विराह्वर्कके भुज चौदहसे कम होनेपर चन्द्रग्रहण संम्भव लिखा है यहाँ विराहु चन्द्रके भुजांश चौदहसे कम होनेपर सम्भव लिखा है सो यह विरुद्ध क्यों भया ? इसका उत्तर यह है कि, पूर्णिमामें चन्द्रग्रहण होता है और पूर्णिमामें चन्द्र और सूर्यमें छः राशिका अन्तर होता है उस समय अंशादिक तुल्यही रहते हैं, जैसा कि गणिताध्यायमें भी लिखा है " समगृहांशकलाविकलौ स्फुटौ रविविधू विदधीत रविग्रहम् । सैमलवावयवौ तु विधुग्रहं समवगन्तुमगुं च तदोक्तवत् ॥ 'आशय यह है कि सूर्यग्रहणमें चन्द्रमा और सूर्य इन दोनेंके राशि अंश, कलादिकाभी समान हो जाते हैं जिसलिये "दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः" लिखा है अर्थात् उसीका नाम अमावास्या है कि जिसमें चन्द्रमा सूर्यकी राशि आदि सभी बराबर हो और चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा और सूर्यके अंश आदि तो तुल्यही होते हैं परन्तु राशिमें छः राशिके अन्तर होते हैं इसीलिये विराहु चन्द्रका भुजांश और विराह्वर्कका भुजांश एकही होगा इस लिये कोईभी विरुद्ध नहीं है ॥ १४० ॥

अथ भुजशरशृङ्गोन्नतिज्ञानम् ।

भुजः सषट्च्युतोऽङ्गोनो भच्युतस्त्रित्रिभे शरः ।
व्यग्वब्रदोर्लवाः सार्द्धाः स्वदिक्चाङ्गं नतं विधोः ॥ १४१ ॥

अर्थ–अब भुज, शर और चन्द्रशृङ्गोन्नति साधन लिखते हैं–तीन राशि पर्यन्त वही भुज होता है फिर तीन राशिसे अधिक और छः राशिके भीतर हो तो॰छःमें घटानेसे शेष भुज होता है फिर छः राशिसे अधिक और नौ राशिके भीतर हो तो छः राशि उसमेंसे निकाल देनेसे भुज होता है फिर नौसे ऊपर होनसे बारहमें घटानेसे भुज होता है । भुजकरनेका सर्वत्र यही प्रकार है ! राहु घटा हुआ चन्द्रमाके भुजांशमें उसीका आधा और मिलानेसे शर होगा वह शर चन्द्रमाकी जो दिशा है उसी दिशाका होगा । और उसी दिशाके तरफ चन्द्रमाका शृङ्ग॰ नत (नीचा) होगा ॥ १४१ ॥

अथाङ्गुलादिबिम्बसाधनम् ।

दीशकोना गतिश्चान्द्री चान्द्री चैना समा क्रमात् ।
भूभाचन्द्रार्कबिम्बानि खखैर्वासैस्तनैर्हृता ॥ १४२ ॥

अर्थ—अब भूभाबिम्ब, चन्द्राबिम्ब और सूर्यबिम्ब अङ्गुलात्मक साधनका प्रकार लिखते हैं—चन्द्रमाकी स्पष्ट गतिमें १९८ एक सौ अट्ठानवें घटाकर खख (२२) बाईससे भाग देने पर भूभाबिम्ब होता है । केवल चन्द्रमाकी स्पष्ट गतिमें वास (७४) चौहत्तरसे भाग देनेसे चन्द्रबिम्ब होता है । सूर्यकी स्पष्ट गतिमें पाँच और मिलाकर सम (६) छः से भाग देनेसे सूर्यबिम्ब अङ्गुलात्मक होता है ॥ १४२ ॥

अथ ग्रासानयनम् ।

इन्दुनार्कौ भूभयेन्दुश्छाद्यते छादकात्तयोः ।
बिम्बार्द्धयोगो बाणोनो ग्रासः स्यादङ्गुलात्मकः ॥१४३॥

अर्थ—अब ग्रास लानेका प्रकार लिखते हैं—तहां सूर्यग्रहणमें चन्द्रमासे सूर्य आच्छादित होता है और चन्द्रग्रहणमें भूभा (पृथ्वीकी छाया) से चन्द्रमा आच्छादित होता है उसीको ग्रहण कहते हैं, उस ग्रहणमें छादक (आच्छादित करनेवालेके बिम्ब) से छाद्य (आच्छादित होनेवालेका बिम्ब) जितना आच्छादित हो जाय (ढक जाय) उसीको ग्रास कहते हैं वह ग्रास छादक और छाद्य इन दोनोंके अङ्गुलात्मक बिम्ब जो पहले लाये हैं उसकी व्यासार्द्धके योगमें बाण (शर) घटानेसे अङ्गुलात्मक होता है ॥ १४३ ॥

अथ ग्रासस्पर्शमोक्षदिग्ज्ञानम् ।

शरान्यदिशिको ग्रासश्चन्द्रेऽर्के चान्यथा भवेत् ।
इन्दोः प्राग्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययः ॥ १४४ ॥

अथ—अब ग्रास, स्पर्श और मोक्षकी दिशा कहते हैं— चन्द्रग्रहणमें शरकी दिशा जो पूर्व साधन करके आई है उससे अन्य दिशासे ग्रास होगा अर्थात् यदि शरकी दिशा उत्तर आवे तो दक्षिणसे ग्रास समझना और यदि शरकी दिशा दक्षिण हो तो उत्तर तरफसे ग्रास जानना । यहां लोगोंको यह सन्देह होगा कि, ग्रहलाघवादि ग्रन्थमें जिस दिशाका शर उसी दिशासे ग्रास होता है यहां शरसे भिन्न दिशाका ग्रास क्यों लिखा ? इसका उत्तर यह है कि, ग्रहलाघवमें व्यगवर्कपरसे व्यगवर्क दिशाकाही शर लाया गया है लिखाभी है कि, "व्यगवर्काशः स्यात्पृषत्कोऽङ्गुलादिः" और इस ग्रन्थमें व्यगु चन्द्रपरसे व्यगुचन्द्रदिशाकाही शर लाया गया है, यद्यपि चन्द्र-

ग्रहण समयमें चन्द्रसूर्यके षडान्तर होनेके कारण दोनों परसे लाये हुए शर तुल्यही होंगे परन्तु दिशाका उलटा होगा इस लिये इस ग्रन्थके अनुसार चन्द्रग्रहण शर लानेसे शरान्यदिशिक ग्रास कहनाही ठीक है। सूर्यग्रहणमें इसका उलटा अर्थात् जिस दिशाका शर हो उसी दिशासे ग्रास जानना। अब स्पर्शका विषय लिखते हैं- चन्द्रमाका ग्रहण (स्पर्श) पूर्व दिशासे होता है और मोक्ष पश्चिमसे होता है, तथा सूर्य ग्रहणमें इसका उलटा होता है अर्थात् पश्चिमसे स्पर्श और पूर्वमें मोक्ष होता है इसका उपपत्तिरूप सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखा है " पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या। पश्चात्स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव क्वापि च्छन्नः कचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात् ॥" इसका आशय यह है कि, सूर्यग्रहणमें चन्द्रमा छादक होता है और ग्रहमात्रके पूर्वाभिमुख गमन है, अमान्तसे पहिले चन्द्रमा सूर्यसे पीछा रहता है परन्तु शीघ्र गति होनेके कारण पश्चिम तरफसे मेघके नाईं आकर सूर्यको ढक लेता है इसीलिये पश्चिमसे स्पर्श और पूर्वभागमें मोक्ष होता है और चन्द्रग्रहणमें पूर्वसे स्पर्श और पश्चिम दिशामें मोक्ष होनेका कारणभी सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखा है " पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तयतः शशी विशति। तेन प्राक्प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः ॥" आशय यह है कि चन्द्रग्रहणमें छादक पृथ्वीकी छाया होती है उसीको भूभा कहते हैं वह भूभा सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर हरसमय रहती है परन्तु चन्द्रमा तो पूर्णिमान्तमेंही सूर्यसे षड्भान्तरपर होता है इसलिये सूर्यकी गति तुल्य चलती हुइ भूभामें चन्द्रमा पश्चिम भागसे आकर प्रवेश करता है अतः चन्द्रबिम्बका पूर्वभागही प्रथम भूभामें जानेके कारण पूर्वसे स्पर्श और पश्चिममें मोक्ष होता है। इति ॥ १४४ ॥

अथ स्पर्शमध्यमोक्षकालज्ञानं ग्रहणविशेषफलञ्च ।

पर्वान्ते ग्रहमध्योऽर्धःस्थित्योनाढ्ये मुखान्त्यकौ ।
भूकम्पाशनिपाताद्या ग्रहणे तत्फलप्रदाः ॥ १४५ ॥

अर्थ-अब स्पर्श, मध्य और मोक्ष ये तीनों सूर्योदयसे कितने २ घटी पलापर होंगे उसको लिखते हैं-पञ्चाङ्गमें तिथि नक्षत्र योगादियोंकी घटीपला सूर्योदयसे रहती है सो जिस पूर्णिमा या अमावस्यामें ग्रहणका सम्भव होय उसमें समझ जाना चाहिये कि पूर्णिमाकी या अमावस्याकी जितनी घटी पला पञ्चाङ्गमें लिखी हो सूर्योदयसे उतनेही इष्ट घटी पलापर ग्रहणका मध्य होगा। इस मध्यग्रहणकालमें स्थित्यर्ध घटानेसे मुख अर्थात् स्पर्शकाल होता है और मध्यग्रहणमें स्थित्यर्ध जोडनेसे मोक्षकाल होता है। ग्रहणका फल भूकम्प, वज्रपात आदि उत्पातही हैं॥ १४५॥

अथोत्पातवृष्टिज्ञानम् ।

प्रकृत्याविकृतोत्पातो दिग्दाहादिर्न सत्फलम् ।
चैत्राद्याङ्झेर्दिनैर्गर्भ इनेशर्क्षात्प्रवर्षति ॥ १४६ ॥

अर्थ–अब उत्पात और वर्षाका ज्ञान लिखते हैं–प्रकृतिसे विकृति होनेका नामही उत्पात है अर्थात् जिस चीजमें जो नहीं होना उसमें वह हो जाय और जिस समय जो चीज नहीं होना उस समय वह हो जाय चीजका उत्पात जैसे जम्बूके वृक्षमें आम्र दीखनेमें आवे समयका उत्पात जैसे ठण्ढीके समयमें ग्रीष्मकी धूप होय इत्यादि और दिशाओंका दाह ये सब उत्पात कहाते हैं ग्रन्थान्तरोंमें दिव्य आन्तरिक्ष, भौम इन तीन उत्पातोंके अन्तर्गत सब उत्पात वर्णन किये हैं सो सब उन्हीं २ ग्रन्थोंसे जानने योग्य हैं यहाँ विस्तारसे प्रयोजन नहीं है । परन्तु यह जो उत्पात सो राजाको अशुभ फल देता है । चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे लेकर नौ दिनपर्यन्त यदि मेघको गर्भ रहता है तो आर्द्रासे चित्रानक्षत्रपर्यन्त सूर्यके रहते वर्षा होती है अर्थात् चैत्रशुक्लप्रतिपदाको यदि मेघको गर्भ रहै तो आर्द्रानक्षत्रमें सूर्यके जानेसे वर्षा होती है द्वितीयामें गर्भ रहै तो पुनर्वसुनक्षत्रमें वर्षा होवै तृतीयामें गर्भ रहै तो पुष्यमें जल होवै इत्यादि जानना चाहिये ॥ १४६ ॥

अथ प्रमितवृष्टिसद्योवृष्टिप्रश्नाः ।

मार्गाद्वर्षोद्विश्वपक्षैर्गर्भस्तद्भेऽभ्रवातजः ।
सद्योगेऽस्तोदये पर्वचारे सद्योम्बुलिङ्गके ॥ १४७ ॥

अर्थ–अब प्रमितवृष्टि और सद्योवृष्टिप्रश्न लिखते हैं–मार्गशीर्षसे तेरह पक्ष अर्थात् साढे छः महीनेमें जिस नक्षत्रमें मेघ लगै और हवा चलै उस नक्षत्रका गर्भ समझना चाहिये उसी नक्षत्रमें वर्षा ऋतुमें वर्षा कहनी चाहिये । और यदि कोई ग्रहोंके स्थितिसे जलयोग बनता हो या किसी ग्रहका उदयास्त हो या ग्रहण आदिका पर्व हो और ग्रहोंके चार हों तथा जल होनेका कोई चिह्न (जैसे साण्ड पिपीलिकापंक्ति, मण्डूक आदिका बोलना आदि) से शीघ्र जल समझना चाहिये ॥ १४७ ॥

अथ जलनाडीविचारः ।

शसूमंगुशुबुश्चोग्नेरहौ चण्डमरुन्मरुत् ।
अग्निःसौम्येऽम्बुदो नीरोऽमृतश्चारः स्वदोऽखिले ॥ १४८ ॥

अर्थ-अब जलका विचार सप्तनाडीचक्रद्वारा लिखते हैं-बाजूमें दिये सर्पाकार चक्रमें कृत्तिकासे लेकर भरणी पर्यन्त अभिजित सहित अट्टाइसों नक्षत्रोंको क्रमोत्क्रमसे लिखना उसमें प्रथम (आद्य) नाडीके चार नक्षत्र (कृत्तिका, विशाखा अनुराधा, भरणी) यह चण्डमरुत् नाडीके हैं इसका स्वामी शनैश्चर है । रोहिणी स्वाती, ज्येष्ठा और अश्विनी ये चार नक्षत्र द्वितीयमरुत् (वायु) नाडीके हैं इसका स्वामी सूर्य है । मृगशिरा, चित्रा, मूल और रेवती ये चार नक्षत्र तृतीय अग्निनाडीके हैं इसका स्वामी मंगल है । आर्द्रा, हस्त, पूर्वाफाल्गुनी और उत्ताराभाद्रपदा ये चार नक्षत्र चौथे सौम्यनाडीके हैं इसका स्वामी बृहस्पति है पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपदा ये चार नक्षत्र पाँचवें अम्बुद (मेघ) नाडीके हैं इसका स्वामी शुक्र है। पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी अभिजित् और शतभिषा ये चार नक्षत्र छठे नीर (जल) नाडीके है इसका स्वामी बुध है । आश्लेषा, मघा, श्रवण और धनिष्ठा ये चार नक्षत्र सप्तम अमृत नाडीके हैं । इसका स्वामी चन्द्रमा है । पूर्ण बली चन्द्रमा जिस ग्रहकी नाडीमें स्थित होय उस ग्रहसे यदि युत ·दृष्ट होय तोजल होता है इसका बृहत विचार नरपतिजयचर्यामें है इस लिये यहाँ संक्षेपहीलिखा गया है ॥ १४८ ॥

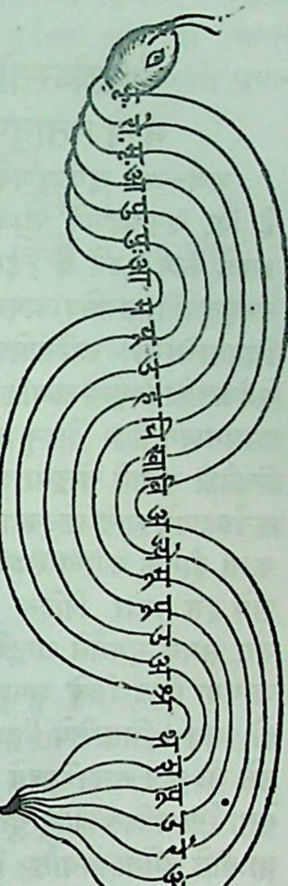

अथ केतुचारः ।

केतुः सहस्ररूपोऽस्ति कश्चिदर्केन्दुगोऽशुभः ।
दिव्यन्तरिक्षौ भौमश्च तथैकाद्वित्रिचूडकः ॥ १४९ ॥

अर्थ-केतुका रूप हजार है अर्थात् हजार तरहके केतु हैं, कोई एक मस्तकवाले कोई दो मस्तकवाले कोई तीन मस्तकवाले हैं । कोई आचार्य कहते हैं कि वह केतु सूर्यबिम्ब और चन्द्रबिम्बके साथ देखनेमें आवे तो अशुभ है और केतुके उदयसेही दिव्य अन्तरिक्ष और भौम उत्पात होता है ॥ १४९ ॥

अथ लम्बनानयनम् ।

न्यूर्थेऽलोऽस्तोदये लम्बः खमध्ये नास्ति लम्बनम् ।
मध्ये नतानुपातेन ऋणं स्वं प्राक्परे नते ॥ १८० ॥

अर्थ—अब सूर्यग्रहणके लिये लम्बनानयन लिखते हैं—यहाँ प्रथम तो यह शंका है कि, चन्द्रग्रहणमें लम्बन आदिका काम कुछ नहीं पडा और सूर्यग्रहणमें क्यों इसके काम पडते हैं ? इस प्रश्नोत्तरके लिये गोलाध्यायमें लिखा है " पर्वान्तेऽर्के नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येद्भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम् । तादृक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेतः कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम् ॥ समकलकाले भूभा लगति मृगाङ्के यतस्तया म्लानम् । सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती ॥ " इन दोनों श्लोकोंके आशय यह है कि, चन्द्रग्रहणमें चन्द्रकक्षस्थितही भूभामें चन्द्रमा प्रवेश करता है इसीलिये लम्बन और नति नहीं होती और सूर्यग्रहणमें चन्द्र छादक होनेसे चन्द्रकक्षा अलग है और सूर्यकक्षा अलग है अलग २ कक्षा होनेके कारण लम्बन और नति होती है, उस लम्बनकाभी आकार आकाशमें इस प्रकार विदित होता है कि जिस समय भूगर्भाभिप्रायसे अमान्त होगा उस समय भूगर्भसे चन्द्रकेन्द्रमें जो सूत्र आवेगा वह बढानेसे सूर्यकेन्द्रमें अवश्यही जायगा जिस लिये अमान्त वही है कि जिस समय चन्द्रमा और सूर्य एक सूत्रमें हो जाय । जिसलिये "दर्शः सूर्येन्दुसंगमः" ऐसा आगम है । परन्तु उस समय भूपृष्ठसे जो सूत्र चन्द्रबिम्बमें लाया जायगा वह सूत्र बढानेसे सूर्य बिम्बमें नहीं जायगा ऐसा रेखागणित आदि युक्तियोंद्वारा सिद्ध है इसलिये वह सूत्र सूर्यकक्षामें सूर्यसे आगे या पीछे लगेगा अर्थात् दिनार्द्धसे पहिले पश्चाङ्गस्थ अमान्त होनेपर सूर्यसे आगे लगेगा और दिनार्द्धोत्तर अमान्त होनेसे सूर्यसे पीछे लगेगा उस सूत्रका और सूर्यका जो अन्तर सोही लम्बन कहाता है वह लम्बन मध्याह्नसमयमें नहीं होता है इसका भी कारण यही है कि मध्याह्नसमयमें अमांत होनेसे भूगर्भसे और भूपृष्ठसे जो सूत्र चन्द्रबिम्बमें जायगा वह एकही सूत्र होगा, बढानेसे सूर्यबिम्बमेंभी जायगा इसलिये दिनार्द्धमें लम्बन नहीं भया । तथा उदय और अस्तके समयमें परमलम्बन होता है क्योंकि गर्भसूत्र और पृष्ठसूत्रको यहाँ जितना अन्तर होगा उससे ऊपर २ क्रमसे कमही होता जायगा । इसलिये अनुपात द्वारा लाया जाता है । उदय और अस्तके समय परमलम्बन दो सौ दशपल २१० (तीन घटी तीस ३ । ३०) होता है और मध्याह्नके समय शून्य होता है मध्यमें नतकाल परसे त्रैराशिकद्वारा लाना चाहिये वह अनुपात ऐसा है कि दिनार्द्धतुल्य नतकालमें परमलम्बन पल २१० पाते हैं तो

१ नसे शून्य ०, यसे एक १, द्से दो २ अर्थात् २१० ।

अमान्त कालीन नतकालमें क्या ? यहाँ परमलम्बनको नतकालसे गुणकर दिनार्द्ध भाग लेनेसे जो लब्धि होगी वह लम्बन होगा वह लम्बन पूर्वनत होय तो अमान्तमें ऋण करनेसे और पश्चिम नत होय तो अमान्तमें धन (जोड) करनेसे पृष्ठाभिप्रायसे अमान्त होगा ॥ १५० ॥

अथ संस्कृतदर्शशरौ स्वल्पग्रासव्यवस्था ।

लम्बेन संस्कृतो दर्शोऽमान्तो नत्या शरः शरः ।
सार्द्धाङ्गुलो न दृश्यः स्याद्ग्रासः सूर्येऽङ्गुलो विधौ ॥ १५१॥

अर्थ–अब संस्कृत अमा, संस्कृत शर और ग्रहण दृश्यका विचार लिखते हैं सूर्य ग्रहणमें पूर्व श्लाकके अनुसार लम्बन संस्कृत अमान्तकोही अमान्त समझना चाहिये अर्थात् लम्बन संस्कार विशेष्ट अमान्तमें सूर्य ग्रहणका मध्य होगा और नतिसे संस्कृत जो शर वह शर होता है । सूर्य ग्रहणमें डेढ अङ्गुलसे यदि अल्पग्रास आवे तो दृश्य नहीं कहना और चन्द्रग्रहणमें एक अङ्गुलतक यदि ग्रास आवे तो दृश्य नहीं कहना अर्थात् सूर्यग्रहणमें डेढ अंगुलसे ज्यादह ग्रास होनेसे दृश्य कहना और चन्द्रग्रहणमें एक अङ्गुलसे अधिक ग्रास होय तो दृश्य कहना ॥ १५१ ॥

अथ ग्रहणफलवेधज्ञानम् ।

जन्मर्क्षे ग्रहणे मृत्युर्जन्मभाच्चयगः शुभः ।
चतुस्त्रियामं नाश्नीत प्रागर्केन्द्वोर्ग्रहे क्रमात् ॥ १५२ ॥

अर्थ–अब ग्रहणका फल और ग्रहणका वेध कहते हैं–जिसका जन्म नक्षत्रपर ग्रहण होय उसका मरण[1] कहना और जन्मराशिसे चय (तृतीय, छठा, दशवाँ ग्यारहवाँ) राशिपर ग्रहण होय तो शुभ जानना । प्रत्येक स्थानका फल मुहूर्तचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है "जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिमतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा चिन्ता सौख्यकलत्रदौस्थ्यमृतयः स्युर्माननाशः सुखम् । लाभोपायः" इति । अर्थ इसका चक्रमें स्पष्ट है । सूर्यग्रहणमें चार प्रहर पूर्वहीसे वेध शुरू होता है और चन्द्रग्रहणमें तीन पहर पूर्व वेध शुरू होता है इनमें भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १५२ ॥

जन्मनक्षत्र	जन्मरा. १	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
मरण	घात	क्षति	लक्ष्मी	व्यथा	चिन्ता	सौख्य	स्त्रीहानि	मृत्यु	मानहानि	सुख	लाभ	मरण

[1] फलमें जहां मरण शब्द आवे वहाँ आठ प्रकारके मरण ग्रन्थान्तरमें लिखे हैं "व्यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च । बन्धनं चावमानं च मृत्युश्चाष्टविधः स्मृतः ॥ सो लेवे । अन्यथा जन्मपत्रादिनिर्णीत आयुमें व्यर्थता आजायगी इति ।

अथोदयास्तज्ञानम् ।

अल्पोऽल्पगोऽर्कात्प्राग्दृश्योऽधिकोऽधिकगतिः परे ।
परेऽधिकोऽल्पगोऽस्तोंऽशैः प्रागल्पोऽधिकगो ग्रहः ॥ १५३ ॥

अर्थ-अब ग्रहोंके उदय और अस्तका ज्ञान लिखते हैं-सूर्यसे थोरे गतिवाले ग्रह (मंगल, गुरु, शनि,) सूर्यसे अपने कालांशतुल्य अल्प अंश रहते पूर्व दिशामें रात्रिशेषमें दृश्य (उदय) होते हैं। और सूर्यसे अधिकगतिवाला ग्रह (चन्द्र) सूर्यसे अपने कालांशतुल्य अधिक होनेपर पश्चिम दिशामें सामको दृश्य (उदय) होता है यह उदयका नियम भया । अब अस्तका नियम यह है कि सूर्यसे अल्पगतिवाले ग्रह (मंगल, गुरु, शनि) सूर्यसे स्वकालांशतुल्य अधिक अंशपर पश्चिम दिशामें अस्त होता है और अधिक गतिवाला ग्रह (चन्द्र) कालांश तुल्य सूर्यसे अल्प रहते पूर्वदिशामें अस्त होता है । यहां बुध शुक्रके लिये विशेष यह बात है कि सूर्यसे अधिक गतिवाले होनेपरभी दोनों दिशाओं (पूर्वपश्चिम)में उदय और दोनों दिशाओं (पूर्वपश्चिम) में अस्त होता है इसका कारण यह है कि ये दोनों ग्रह वक्र होकर फिर सूर्यसे अपने २ कालांशान्तरपर आ जानेसे अस्तोदय प्राप्त करता है अर्थात् ये दोनों ग्रह सूर्यसे अधिक गतिवाले होनेके कारण पश्चिममें सूर्यसे आगे कालांशान्तरपर सायंकाल उदय होता है फिर वक्र होकर सूर्यासन्न आकर पश्चिममेंही अस्त होता है । फिर वक्र गतिहीसे सूर्यसे पीछा होकर अपने कालांशान्तरपर पूर्वतरफ रात्रिशेषमें उदय पाता है फिर मार्ग होकर पूर्वहीमें अस्त होता है ॥ १५३ ॥

अथ कालांशाः ।

चन्द्रात्खपाः सपा गोपाः काका धात्तु भपाः क्रमात् ।
कालांशा वक्रिणोः कूना ज्ञभृग्वोरुदयास्तदाः ॥ १५४ ॥

अर्थ-अब चन्द्रादि ग्रहोंके कालांश लिखते हैं-प्रथम कालांश क्या चीज है सो लिखते हैं-सूर्यके समीप होनेसे ग्रहोंका अपना तेज (ज्योति) नष्ट हो जाता है इसी लिये सूर्यके समीपस्थ ग्रह अस्त कहाता है परन्तु जिस ग्रहका बिम्ब छोटा है वह ग्रह सूर्यसे कुछ दूर रहतेही अस्त हो जाता है और उदयभी सूर्यसे वैसी हटने पर होता है तथा जिस ग्रहका बिम्ब बडा है वह ग्रह सूर्यके निकट आनेपर अस्त होता है और निकटहीमें थोडे अंश हटनेपर उदय होता है वही बिम्बके सूक्ष्म स्थूलके कारण जो ग्रह सूर्यसे जितने अंश अन्तरपर उदय और अस्त होता है वही अंश उस ग्रहका कालांश कहाता है वह कालांश चन्द्रमाका खप (१२) बारह अंश है अर्थात् सूर्यसे चन्द्रमा जब बारह अंश बढ ता है तब चन्द्रमाका उदय है ।

है और सूर्यसे वारह अंश पीछा रहता है तभी अस्त होता है । इसी प्रकार मङ्गलका सप (१७ सतरह) कालांश है । बुधका गोप (१३) तेरह है । बृहस्पतिका काक (११ ग्यारह) शुक्रका धानु (९ नौ) शनिका मप (१५ पन्द्रह) कालांश हैं । अब बुध और शुक्र वक्र होकरभी उदित और अस्त होते हैं इसी लिये वक्री बुध शुक्रका उदयास्त जाननेके लिये पूर्वोक्त कालांशमें एक घटाकर ग्रहण करना चाहिये अर्थात् बुधका कालांश १३ तेरह हैं सो बारह लेना चाहिये और शुक्रका कालांश ९ नौ हैं सो आठ लेना चाहिये । वक्र होनेसे कालांश कम लेनेकाभी कारण यही है कि नीचासन्नमें ग्रह वक्री होते हैं परन्तु नीचासन्नमें बिम्ब दूर होनेके कारण छोटा दीखता है इस लिये वक्रमें एक कालांश कम होना युक्ति युक्त है ॥ १९४ ॥

अथोदयास्तादिदिनज्ञानम् ।

ग्रहार्कान्तरमस्तादौ कालांशान्तरितं पुनः ।
गत्यन्तराप्तं घस्रादि वक्री चेद्गतियोगतः ॥ १९५ ॥

अर्थ–अस्तादि किस दिन होंगे उसको जाननेकी विधि लिखते हैं–प्रथम जिस ग्रहका उदयादि दिन जानना हो सूर्यके साथ उस ग्रहका अन्तर करना अर्थात् जिसमें जो घटै उसको घटाकर अन्तर ग्रहण करना फिर इस अन्तरको उसी ग्रहके कालांशके साथ अन्तरित करना (जिसमें जो घटै सो घटाना) शेष जो बचै उसमें सूर्य और ग्रह (जिसका दिन जानना है) उसके एक दिनके गत्यन्तरसे भाग देनेसे दिनादि (दिन, घटी, पल) होंगे और यदि ग्रह वक्री हो तो एकदिनसम्बन्धी सूर्यकी गति और ग्रहगतिका योग करके भाग देनेसे जो लब्धि होगी वही दिनादिक होंगे ॥ १९५ ॥

स्पष्टार्कात् स्पष्टांशांतरैर्गुर्वच्छयोरुदयास्तौ

मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी	सूर्यस्याशात्
१५	१३	११	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	१३	१५	ऊनांशे: पूर्वोदयो गुरोः
१०	१०	१०	११	१३	१२	१५	१३	११	१०	१०	१०	अधिकांशः परास्तो गुरोः
७	६	७	८	९	१०	९	७	६	६	६	६	अधिकांशैः परोदयो भृगोः
१०	८	७	६	६	७	७	६	६	७	८	१०	ऊनांशैः पूर्वास्तो भृगोः
६	५	६	८	१२	१४	१२	८	६	५	६	६	अधिकांशैः परास्तौ भृगाः
२	४	६	६	६	५	५	५	५	४	३	३	ऊनांशैः पूर्वोदयो भृगोः

अथ युद्धांशुविमर्दोल्लेखभेदाख्ययुद्धज्ञानम् ।

भादितुल्ये ग्रहे युद्धं चतुर्धा बाहुतो जयी ।
सितश्चोदक्स्थितोऽर्केण चास्तश्चन्द्रेण सङ्गमः ॥ १५६ ॥

अर्थ--अब ग्रहोंके युद्ध लिखते हैं--दो ग्रहोंकी राश्यादि तुल्य होनेसे चार प्रकारके युद्ध होते हैं उन चारोंके लक्षण यह है कि, ग्रहोंकी राश्यादि तुल्य होनेसे युद्ध होता है, और बिम्बभी दोनों ग्रहोंके आपसमें एकसे एक ढक जाय तो अंशु विमर्द युद्ध-कहाता है २ तथा दोनों ग्रहोंके बिम्बका स्पर्श होय तो उल्लेख युद्ध कहाता है ३ और दोनोंके बिम्ब आपसमें एकसे एक खण्डित हो तो भेद युद्ध कहाता है ४ यही चार प्रकारके युद्ध हैं इस युद्धमें कौन जीतेगा और कौन हारेगा ? इसके लिये कहते हैं कि जिस ग्रहका बाहु (कर) किरण सित (स्वच्छ) हों और उत्तर गोलमें स्थित हो वह ग्रह जीतता है । परन्तु यह युद्ध भौमादिकही पाँचों ग्रहोंका आपसमें होता है कारण कि सूर्यके तुल्य राश्यादिक जिस ग्रहके होते हैं वह ग्रह अस्त कहाता है। और चन्द्रमाके साथ समागम कहाता है ॥ १५६ ॥

अथ महापातज्ञानम् ।

झीघ्नायनांशघटयूनाः स्रास्तदर्धाश्च युग्गते ।
साग्रेर्केन्द्वोः क्रान्तिसाम्याद्वैधृतिर्व्यतिपातकः ॥ १५७ ॥

अर्थ--अब महापातज्ञान लिखते हैं-- यह महापात दो प्रकारका होता है १ एक व्यतीपात २ दूसरा वैधृति. उन दोनोंके जाननेका प्रकार लिखते हैं--अयनांशको झी (नौ ९) से गुणकर जो होय उसको घटी मानकर साठसे भाग लेकर योगादि करके स्रा (सत्ताईस २७) में घटानेसे जो शेष बचे उसके तुल्य योगादिमें वैधृति नामका महापात होता है और उसी पूर्वगुणित अयनांशको सत्ताईसको आधा अर्थात् साढे तेरह १३ । ३० में घटानेसे जो शेष बचे उसके तुल्य योगादिमें व्यतीपात नामका महापात होता है उसी समयमें सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिसाम्यद्वारा ये दोनों होते हैं इसका स्पष्टीकरण ग्रहलाघवमें इस प्रकार लिखा है कि, घटाकरके जो शेष बचे उसको भभोगसे गुणकर पैंसठसे भाग लेनेसे स्पष्ट महापातका काल होता है ॥ १५७ ॥

अथ भूपरिध्युपलक्षणं व्यासपरिध्यानयनं सूत्रम् ।

खखाब्धिबाणै भूवृत्तं योजनैः कंकभूहृतम् ।
तत्खखारिहृतं व्यासो व्यासाद्व्यस्तेन वृत्तकम् ॥ १५८ ॥

अर्थ–अब भूपरिधिके उपलक्षणसे व्यास और परिधिके आनयन लिखते हैं–पृथ्वीके वृत्ताकार एक परिधिका माप योजनात्मक पाँच हजार चार सौ ५४०० योजन है । इस परिधियोजनको एक सौ इक्यानवे १९१ से गुणकर छःसौ ६०० से भाग लेनेसे भूव्यास हो जायगा इसी प्रकार सर्वत्र परिधीपरसे व्यास जान-लेना और इसके उलटी रीतिसे व्यासपरसे वृत्त परिधिभी जानी जाती है अर्थात् व्यासको ६०० छःसौसे गुणकर एक सौ इक्यानवे १९१ का भाग देनेपर लब्धि परिधि होगी ॥ १५८ ॥

अथ भूगोलवर्णनम् ।

भूगोलमध्ये लंकाख्यो चास्याः प्राग्यमकोटिका ।
सिद्धं पुरं रोमकञ्च पार्श्वे देवासुरालये ॥ १५९ ॥

अर्थ–अब भूगोलवर्णन लिखते हैं–पृथ्वीके बीचमें लङ्का है और लङ्कासे पृथ्वीके चतुर्थांशपर पूर्वतरफ यमकोटि है । फिर यमकोटिसे पृथ्वीके चतुर्थांशपर पूर्व दिशामें सिद्धपुर (लङ्काके अधोभागमें) है । फिर सिद्धपुरसे पृथ्वीके चतुर्थांशपर पूर्वतरफ रोमक (लङ्कासे पश्चिम भू चतुर्थांश पर) है । और लंकासे दोनों पार्श्वमें चतुर्थांशपर सुमेरु और कुमेरु है अर्थात् उत्तर पार्श्वमें सुमेरु और दक्षिण पार्श्वमें कुमेरु है सुमेरुमें देवताओंके वास है और कुमेरुमें दैत्य रहते हैं ॥ १५९ ॥

अथ लोकनगखण्डाब्धिस्थितिः ।

क्षाराब्ध्युदग्भुवर्लोको नन्दखण्डनगान्वितः ।
पातालगर्भेऽर्द्धं भूर्याम्यं सप्ताब्धिद्वीपयुक् ॥ १६० ॥

अर्थ–अब लोक (चौदह) पर्वत, खण्ड और समुद्रकी स्थिति लिखते हैं–क्षार समुद्रसे उत्तर तरफ भुवर्लोक है, यह भुवर्लोक पर्वतों संहित नौ खण्डका है तथा पृथ्वीके गर्भमें पाताल लोक है, और दक्षिण तरफकी जो आधी पृथ्वी है उसमें सात समुद्र और छः द्वीप हैं । इसकी स्पष्टता गोलाध्यायमें है " भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः । अर्द्धेऽन्यस्मिन्द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बु-

धीनां निवेशः ॥ लवणजलधिरादौ दुग्धासिन्धुश्च तस्मादमृतममृतराश्मिः श्रीश्च यस्मा-द्बभूव । महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र ॥ दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः । स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पातालकोलोकः पृथिवीपुटानि ॥ शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रौञ्चश्च गोमेदकपुष्करे च । द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति ॥ लङ्कादेशाद्धिमगिरिरुदग्घेमकूटोऽथ तस्मात्तस्मान्यो निषध इति ते सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः । एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृङ्गवच्छुक्लनीला वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान् ॥ भारतवर्षमिदं हृद-गस्मात्किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम् । सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्धिढि हिरण्मयरम्यकवर्षे ॥ माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनाद्रोमकाच्च किल गन्धमादनः । नीलशैलनिषधावधी च ताव-न्तरालमनयोरिलावृतम् ॥ माल्यवज्जलधिमध्यवर्त्ति यत्तत्तु भद्रतुरगं जगुर्बुधाः । गन्ध-शैलजलराशिमध्यगं केतुमालकमिलाकलाविदः ॥ निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकैरल-मिलावृतमावृतमावभौ । अमरकेलिकुलायसमाकुलं रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम् ॥ ”

इसका सारांश यह है कि क्षार समुद्रसे उत्तर जम्बूद्वीप है और दक्षिणमें सात समुद्र, (१ क्षार, २ क्षीर, ३ दधि ४ घृत, ५ इक्षुरस, ६ मद्य, ७ स्वादूदक) हैं तथा इन दो दो समुद्रके बीचमें एक एक द्वीप सब मिलकर छः (१ शाक २ शाल्मल, ३ कौश, ४ क्रौञ्च, ५ गोमेदक, ६ पुष्कर) हैं अर्थात् क्षारसमुद्र और क्षीर समुद्रके बीचमें शाक-द्वीप फिर क्षीर और दधिके बीचमें शाल्मल इत्यादि । इस प्रकार जम्बूद्वीप लगाकर पृथ्वीमें सात द्वीप हैं इसी लिये “ सप्तद्वीपा ” पृथ्वी कहलाती है । तथा पर्वतोंकी स्थितिसे जम्बूद्वीपमें नौ खण्ड (१ भारत, २ किन्नर, ३ हरि, ४ कुरु, ५ हिरण्मय, ६ रम्यक, ७ भद्रतुरग, ८ केतुमाल, ९ इलावृत) वर्षनामसे बोले जाते हैं जैसे ‘भारतवर्ष ’ ‘ किन्नरवर्ष ’ इत्यादि । इस भारतवर्षमेंभी नौ खण्ड हैं जैसे “ ऐन्द्रं कशेरुशकलं किल ताम्रपर्णमन्यद्गभस्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम् । नागं च सौम्यमिह वारुणम-न्त्यखण्डं गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये ॥” अर्थात् १ ऐन्द्र, २ कशेरु, ३ ताम्रपर्ण ४ गभस्तिमत, ५ कुमारी, ६ नाग, ७ सौम्य, ८ वारुण, ९ गान्धर्व ये नौ खण्ड हैं अब अधिक लेखसे विस्तर हो जायगा इसका विषय चक्रमें दिया है ॥ १६० ॥

अथर्क्षग्रहस्थानाक्षांशप्राचीसाधनक्रोशमानज्ञानम् ।

भाधोऽधः शनिजीवारार्कार्च्छज्ञेन्दुकुवृत्तकम् ।
यंत्रोन्नतिर्ध्रुवेऽक्षांशा ध्रुवसूत्रे यमोत्तरे ॥
एकैकयाक्षकल्या क्रोशः स्याद्दक्षिणोत्तरः ॥ १६१ ॥

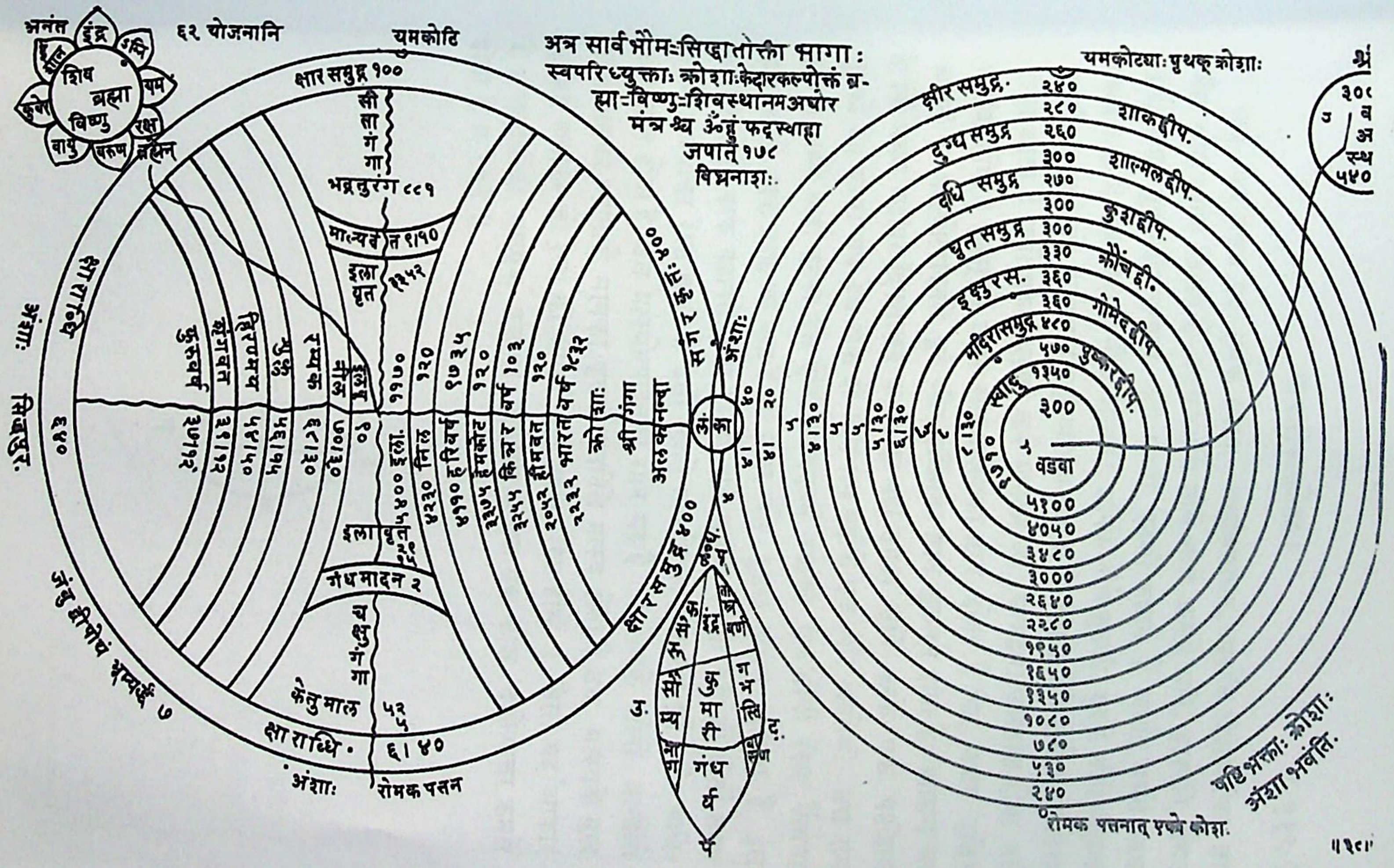
६२ योजनानि
यमकोटि
अत्र सार्वभौमःसिद्धांतोक्ता भागाः
स्वपरिध्युक्ताः क्रोशाःकेदारकल्पोक्तं ब्र-
ह्मा-विष्णु-शिवस्थानमघोर
मंत्र श्च ॐ हुं फट्स्वाहा
जपात् १७८
विघ्ननाशः
यमकोट्याः पृथक् क्रोशाः
अनंत
इंद्र
शिव
ब्रह्मा
विष्णु
यम
कुबेर
वायु
वरुण
क्षार समुद्र १००
सीता गंगा
भद्रतुरंग ८८१
माल्यवंत ११७०
इला वृत
इलावृत
गंधमादन २
चक्षु गंगा
केतुमाल
क्षाराब्धि
अंशाः
सिद्धपुर.
रोमक पत्तन
जंबु द्वीपोयं भग्यर्द्धं ७
कुरुवर्ष
श्रृंगवत
हिरण्मय
शुक्ल
रम्यक
नील
हरिवर्ष
हेमकोट
किंपुरुष वर्ष
हिमवत
भारत वर्ष
क्रोशाः
श्री गंगा
अलकनन्दा
क्षारसमुद्र ४००
लंका
क्षीर समुद्र. २४० शाकद्वीप.
दुग्ध समुद्र
दधि समुद्र
घृत समुद्र
इक्षुरस.
मदिरासमुद्र
स्वादु
२८० शाकद्वीप.
२६० शाल्मलद्वीप.
३०० कुशद्वीप.
३३० क्रौंचद्वी.
३६० गोमेदद्वीप.
५७० पुष्करद्वीप.
वडवा
५१००
४०५०
३४८०
३०००
२६४०
२२८०
१९५०
१६५०
१३५०
१०८०
७८०
५३०
२५०
रोमक पत्तनात् पृथ्वी क्रोशाः
बहिर्भक्ताः क्रोशाः अंशा भवंति.
कुमारी
गंधर्व

अर्थ–अब नक्षत्र ग्रह इनके स्थान, अक्षांशसाधन, पूर्वादि दिशाओंका ज्ञान और क्रोशप्रमाण लिखते हैं–नक्षत्रकक्षासे नीचे नीचे क्रमसे शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा और पृथ्वी इनकी कक्षायें हैं अर्थात् सबसे ऊपर नक्षत्र कक्षा है नक्षत्रकक्षाके नीचे शनिकी, शनिके नीचे गुरुकी, गुरुके नीचे मंगलकी इत्यादि । ध्रुवमें जो यन्त्रोन्नति वही अक्षांश कहाता है अर्थात् जैसे सूर्यका उन्नतांश साधा जाता है उसी प्रकार ध्रुवको सूर्य मानकर जो यन्त्रद्वारा उन्नतांश होगा वही अक्षांश होगा । ध्रुवसूत्रमें उत्तर और दक्षिणका ज्ञान होता है फिर उत्तर दक्षिण जानने पर मत्स्योत्पादनसे पूर्व और पश्चिमका ज्ञान सुलभसे होता है आशय यह है कि प्रथम जहाँपर दिक्साधन करना हो वहाँ समान भूमि करके एक यष्टीद्वारा ध्रुवको वेध करना जब वेध ठीक हो जाय तब यष्टीके मूल और अग्रसेभी उस सम भूमिपर लम्बे खडा करना उस दोनों लम्बमूलमें लगाकर एक सीधी रेखा खेंचना उस रेखासे ध्रुवके तरफ जो अग्र है सो उत्तर और दूसरा दक्षिण कहाता है इस रेखाको दोनों तरफ वढानेसे उत्तर दक्षिण होते जायँगे । और वही जो दोनों लम्ब मूलमें याम्योत्तर रेखा बन्धी है उसी रेखासे मत्स्योत्पादन करनेसे पूर्व और पश्चिमका ज्ञान होता है, उस मत्स्योत्पादनकी रीति यह है कि रेखाके दोनों प्रान्तोंसे उसी रेखाको व्यासार्द्ध मानकर वृत्तार्द्ध वनानेसे मत्स्य होता है उस मत्स्यके मुख पुच्छमें लगाकर जो रेखा की जायगी वही पूर्वापर रेखा होगी । जैसा यह आकार है । अक्षांशोंकी एकएक कलाकी अधिकतासे एक एक कोश दक्षिणोत्तर क्रमसे होता है ॥ १६१ ॥

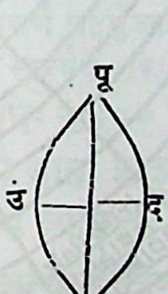

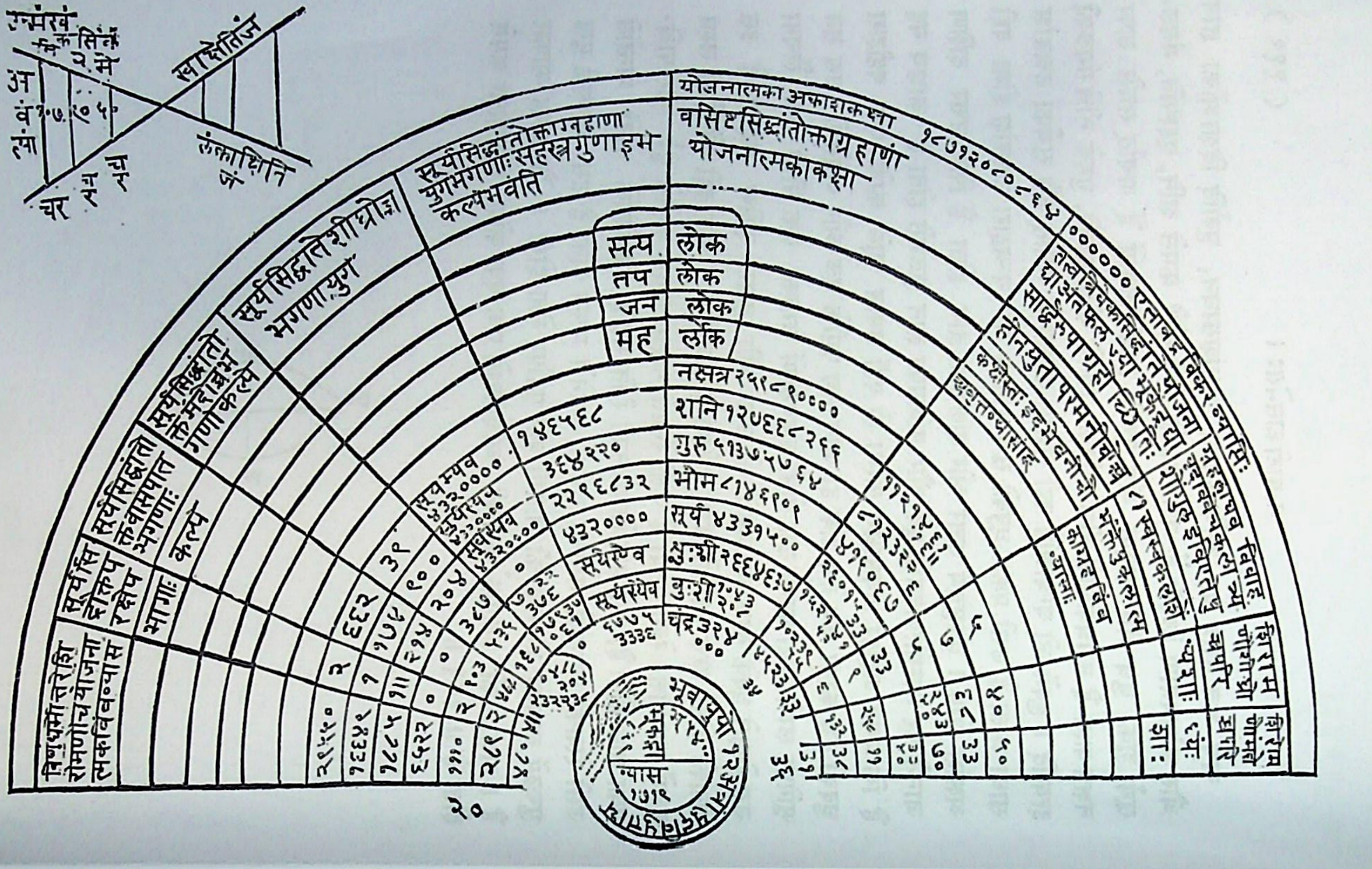
योजनात्मका अकाशकक्षा
वसिष्टसिद्धांतोक्ताग्रहाणां योजनात्मकाकक्षा
सूर्यसिद्धांतोक्तग्रहाणा युगभगणाः सहस्त्रगुणाइभे कल्पभवति
सूर्यसिद्धांते शीघ्रोच्च भगणायुग
सत्य लोक
तप लोक
जन लोक
मह लोक
नक्षत्र
शनि
गुरु
भौम
सूर्य
चंद्र
कल्प
भागाः
लंकाक्षिति
२०

अथ गोलपृष्ठफलसमवृत्तफलधनुःकेन्द्रफलानयनम्।

परिधिव्यासघातः स्यात्फलं कन्दुकजालवत्।
समं तदङ्घ्रिस्त्वाकेन्द्रं व्यासाङ्घ्रिघ्नधनुःफलम्॥ १६२॥

अर्थ–अब गोलपृष्ठफल, समवृत्त क्षेत्रफल, धनुष धनुपाकार क्षेत्रमें फल लानेका प्रकार लिखते हैं–परिधि और व्यासका जो घात (गुणनफल) कन्दुक (गेन्द) के ऊपर जालके माफिक चतुष्कोणाकार सब फल होता है ध्यान रखना चाहिये कि, जिस जातिकी परिधि और व्यास होय उसी जातिका फलभी होता है अर्थात् परिधि व्यास योजनात्मक होय तो फलभी योजनात्मक, क्रोशात्मक होय तो फलभी क्रोशात्मक, हस्तात्मक होय तो फलभी हस्तात्मक इत्यादि। गोलपृष्ठफलका चौथा हिस्सा वृत्तक्षेत्रका फल होता है परन्तु यहाँ वृत्तक्षेत्रफल लानेमें गौरव है कारण कि प्रथम पृष्ठफल लाकर पीछे चतुर्थांश करना होगा इसलिये केवल वृत्तक्षेत्र फल लानेके लिये व्यासका चतुर्थांश करके वृत्तक्षेत्र परिधिसे गुणनेसे पूर्ववत् वृत्तक्षेत्रफल होगा व्यासके चतुर्थांशको धनुपक्षेत्रकी परिधिसे गुणनेसे धनुपक्षेत्रफल होगा॥ १६२॥

अथ धनुस्त्र्यस्रसमकर्णचतुर्भुजफलानि।

ज्योनचापपदघ्नव्यासोज्यार्द्धघ्नेषुयुक्फलम्।
त्र्यस्रे लम्बघ्नभूखण्डं कोटिदोर्घ्ना चतुर्भुजे॥ १६३॥

अर्थ–अब धनुषक्षेत्रफल, त्रिकोण (त्रिभुज) क्षेत्रफल और समान हैं दोनों कर्ण ऐसा जो चतुर्भुजक्षेत्र इन तीनोंके फलानयन लिखते हैं–चापमें ज्याको घटाकर जो हो उसके मूलसे व्यासको गुणकरके ज्यार्द्धसे गुणा हुआ शर जोड देनेसे धनुषाकार क्षेत्रका फल होगा। लम्बसे भुजार्द्धको गुणनेसे त्रिभुजक्षेत्रका फल होता है। कोटिको भुजसे गुणा करनेपर समकर्ण चतुर्भुजका फल होता है॥ १६३॥

अथ छात्राणां स्फूर्त्यर्थं किञ्चिद्गणितम्।

योजनात्मकोऽस्मद्भूपरिधिः ५४०० "स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन" इत्यतोऽयंचतुर्गुणो जातः क्रोशात्मको भूपरिधिश्चक्रकलातुल्यः २१६०० अस्य व्यासः ६८७६ "अर्द्धज्यैव ज्याभिधानात्र वेद्या" इति, अस्यार्द्धं त्रिज्या ३४३८। इयं क्रोशकलयोः समत्वात्कलारूपेति। अस्या अर्द्धमेकराशिज्या व्यासचतुर्थांशसमा १७१९।

अर्थ—अब छात्रोंको क्षेत्रज्ञानके लिये थोडा गणित लिखते हैं—योजनात्मक मेरी भूपरिधि पाँच हजार चार सौ ५४०० है " चार कोशका एक योजन होता है " इसी लिये चारसे गुणनेपर क्रोशात्मक परिधि चक्रकला द्वादशराशिकी कलाके तुल्य भया २१६०० इसका व्यास ६८७६ है, परन्तु " ज्यासे अर्द्धज्या लेनी चाहिये" इसलिये इसकी आधी ३४३८ त्रिज्या भई परन्तु क्रोश और कला आपसमें तुल्यही होते हैं इस लिये ३४३८ कलाही है यही त्रिज्या (तीन राशिकी ज्या) है "त्रिज्या द्वे राशिज्या " इस प्रमाणसे त्रिज्या ३४३८ की आधी १७१९ एक राशिकी ज्या व्यासके चौथाईका बराबर होता है ॥

धनुःफलसाधनार्थमादौ वृत्तमध्ये समचतुरस्रं कल्पितम्; तन्मध्ये कर्णरूपा रेखा व्यासतुल्या सा तदुभयोस्त्र्यस्रयोर्भूमिः; लम्बोऽपि व्यासार्द्धतुल्य एव "त्र्यस्रे लंबघ्नभूखण्डम् " इति भूखण्डं त्रिराज्यरूपम्, लम्बोऽपि त्रिज्यातुल्यः, अनयोर्घातात्त्रिज्यावर्गरूपमेकस्य त्र्यस्रस्य फलम् ११८१९८४४ एतद्द्विगुणं जातं समचतुरस्रफलम् २३६३९६८८ अस्य मूलं जातश्चतुरस्रस्य समभुजः ऊर्ध्वधनुषि सर्वज्यारूपः ४८६२।३।५८ अस्यार्द्धं सार्द्धराशिज्यातुल्यम् २४३१।१।५९ व्यासार्धाद्भुजार्द्धं हीयते तावच्छरोवशिष्यते एवं जातः शरः १००६।५८।१ लीलावत्यामेषएव—"ज्याव्यासयोगान्तरघातमूलं व्यासस्तदूनो दलितः शरः स्यात् । व्यासाच्छरोनाच्छरसंगुणाच्च मूलं द्विनिघ्नं भवतीह जीवा॥जीवार्द्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणं प्रवदन्ति वृत्ते ॥ " इत्यनेनापि शरः स एव सार्द्धराशेरुत्क्रमज्यारूपः । "ज्याचापमध्ये खलु बाणरूपा स्यादुत्क्रमज्या " इति ॥

अर्थ—अब धनुपक्षेत्रफलसाधनके लिये प्रथम वृत्तान्तर्गत समानचतुर्भुजकी कल्पना करनी उस चतुर्भुजके मध्यमें कर्णके समान वृत्तव्यासके बराबर जो रेखा होगी सो दोनों त्रिभुजका भुज होगा और इन दोनों त्रिभुजमें लम्ब भी व्यासार्द्धतुल्यही है तब " त्रिभुजका फल लानेका प्रकार यह है कि लम्बसे भूम्यर्द्धको गुणा करना वही त्रिभुजका फल होगा " इससे यहाँ भूम्यर्ध (व्यासार्ध) त्रिज्या है, और पूर्वलम्बभी त्रिज्यातुल्यही सिद्ध भया है इसलिये यहाँ भूमध्य और लम्बका घात त्रिज्यावर्गके बराबर होगा और यही त्रिज्यावर्ग ११८१९८४४

एक त्रिभुजका फल है, इसको दूना करनेसे सम्पूर्ण सम चतुर्भुजका फल भया २३६३९६८८ अब त्रिज्या त्रिज्या दो भुज, और पूर्णज्या कर्ण इस त्रिभुजमें दोनों त्रिज्यासे उत्पन्न कोण समकोण है तदन्तर्गत चाप वृत्तका चतुर्थांश होनेके कारण, तब जात्य सिद्ध भया । जात्यत्रिभुजमें " तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः " इससे दोनों त्रिज्यावर्गयोगका मूल, कर्ण होगा, सो प्रथम चतुर्भुजका जो फल आया है सोभी त्रिज्यावर्गयोगही २३६३९६८८ सिद्ध है इसीका मूल समचतुर्भुजका भुज भया ४८६२ । ३ । ५८, यही अपने ऊपरकी धनुषकी पूर्ण ज्या है । इसका आधा २४३१ । १ । ५९ यह डेढराशि (४५ अंश) की ज्या भई, अब यहाँ रेखागणितकी युक्तिसे पूर्ण ज्यार्द्ध और पूर्ण ज्यार्द्धविन्दुसे केन्द्रतकका व्यासार्द्ध खण्ड ये दोनों बराबर है इसीलिये व्यासार्द्धमें भुजार्द्ध अर्थात् पूर्णज्यार्द्धविन्दुसे केन्द्रपर्यन्त व्यासखण्ड घटा देनेसे शर रह जायगा । तब त्रिज्या ३४३८ में ज्यार्द्ध २४३१ । १ । ५९ घटानेसे शेष रहा १००६ । ५८ । १ लीलावतीमें यही शर " ज्याव्यासयोगान्तरघातमूलम् " इत्यादि सूत्रसेभी यही शर पैंतालीस अंश चाप ज्याकी उत्क्रमज्या होती है जिस लिये ऐसा लिखा है कि " ज्याचापके बीचमें बाणाकार उत्क्रमज्या होती है " इति ॥

परिधेश्चतुर्थांशो धनुः, अथ योजनात्मकः परिधिः ५४०० क्रोशात्मकश्च २१६०० क्रोशात्मको भूव्यासः ६८७६ परिधिव्यासघातः भूपृष्ठे कन्दुकजालवत्फलम् १४८५२१६०० अस्याङ्घ्रिः समवृत्तफलम् ३७१३०४०० अस्मिंश्चतुरस्रफले शोधिते जातं चतुर्धनुःफलम् १२४९०७१२ अस्य चतुर्थांशो जातमेकधनुः फलं सूक्ष्मम् ३३७२६७८ सूत्रेणापि ज्योनचापं ९३७ । ५६ । २ गुण्यगुणयोः कामचारात् व्यासांघ्रि । १७१९ घ्नं ९२४७०८ । २१ । १८ ज्यार्द्धघ्नेषुना युक्तं जातं धनुःफलं तदेव सूक्ष्मम् ३३७२६७८ । ४५ । १८ ॥

अर्थ–परिधिका चतुर्थांशका नाम धनुष है, अब भूपृष्ठकी योजनात्मक परिधि ५४००, क्रोशात्मक २१६०० है, भूव्यास क्रोशात्मक ६८७६ इन दोनों (परिधि व्यास) का गुणन फल भूपृष्ठके ऊपर कन्दुक (गेन्द) के ऊपर जालके तरह फल भया १४८५२१६०० इसका चौथा हिस्सा समान वृत्तक्षेत्रका फल ३७१३०४००

इसमें पूर्व लिखित समचतुर्भुज फल २३६३९६८८ घटा देनेसे १३४९०७१२ यह चारों धनुषाकार जो चारों क्षेत्र चतुर्भुजके ऊपर हैं उन चारोंका मान सामिल हो- गया इसमें चारका भाग देनेसे एक धनुषाकार क्षेत्रका सूक्ष्मफल भया ३३७२६७८, सूत्रसेभी चापमें ज्या घटा देनेसे शेष रहा ५३७ । ५६ । २ गुण्यगुणकके काम चारसे व्यासके चतुर्थांश १७१९ से गुणा तो ९२४७०८ । २१ । १८ भया, इसमें ज्यार्द्ध २४३१ । १ । ५९ और शर १००६ । ५८ । १ का गुणन फल २४४७९६९ । ५४ । ० जोडा तो वही (पूर्वके तुल्य) धनुक्षेत्र फल भया ३३७२६७८।४२।१८।

अथ भूपृष्ठफलं वेदेषुभू १५४ भक्तं लब्धस्य मूलं सप्तगुणं स स्थूलो व्यासो भवति, सः स्वखखाब्ध्यग्नि ३४०० भागयुतः सूक्ष्मो भवति। समफलं चतुर्गुणं भूपृष्ठफलं भवति तस्माद्व्या- सानयनं पूर्ववत् ॥

अर्थ—अब भूपृष्ठफलको एक सौ चौपनसे भाग लेना लब्ध जो होय उसका मूल लेकर सातसे गुणनेसे स्थूल व्यास होगा इस व्यासको दो जगह लिखकर एक जगह ३४०० इतनेसे भाग लेकर लब्धिको दूसरे जगह मिलानेसे सूक्ष्म व्यास होगा और समवृत्तका जो फल होय उसको चतुर्गुण करनेसे भूपृष्ठ फल होता है उसपरसे व्यासका आनयन पूर्ववत् होगा ॥

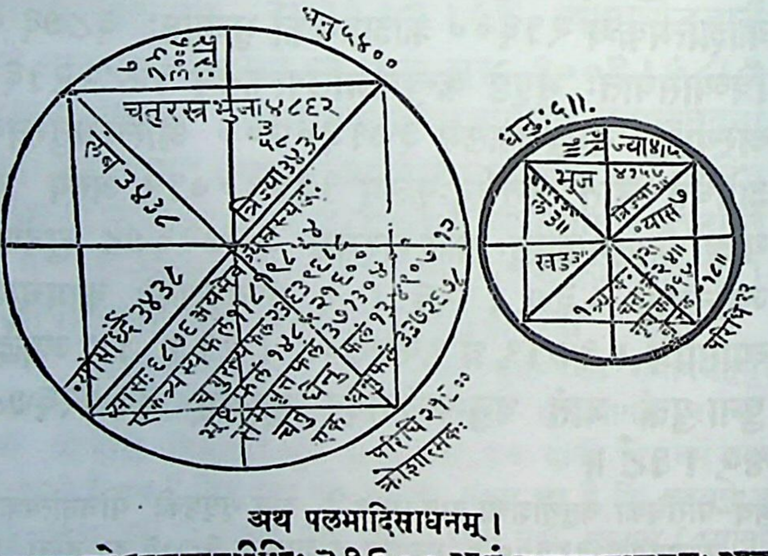

अथ पलभादिसाधनम् ।

क्रोशात्मकोऽस्मद्भूपरिधिः २१६०० अयं चक्रकलातुल्यः अत उपपन्नम्" एकैकयाक्षकलया क्रोशः स्याद्दक्षिणोत्तरः " इति ।

पूर्वापरोऽपि अहोरात्रासु २१६००तुल्यत्वान्निरक्षदेशात्प्राक्प-रतः क्रोशतुल्यासुभिः पूर्वं पश्चात्सूर्योदयः । लङ्कादेवकन्याका-ञ्चिश्वेतपर्वतपर्जलीवत्सगुल्मावंतिगर्गराटकुरुक्षेत्ररोहीतकमे-रुदेशादौ स्पष्टपरिधेर्लघुत्वात्त्रैराशिकाद्विलोमविधिना वर्द्ध-यित्वा देशान्तरं कार्यम् ॥

अर्थ–अब पलभा आदिके साधन लिखते हैं–क्रोशात्मक हमारी भूपरिध २१६०० है यह चक्र (बारहराशि) की कलाके बराबर है इसलिये " एक एक अक्षकला करके एक एक कोश होता है दक्षिणोत्तरके क्रमसे " सो उपपन्न भया इति । पूर्व-परभी अहोरात्रासु २१६०० तुल्य होनेके कारण निरक्ष देशसे पूर्व और पश्चिममें सूर्योदय होता है अर्थात् जो नगर जिस नगरसे एक कोश पूर्व है उस नगरमें एक असु पहिलेही सूर्योदय होता है और जो जिससे पश्चिम है उसमें एक असु पीछे उदय होता है । पलके छठे हिस्सेका नाम असु है । लङ्का, देवकाञ्ची, श्वेतपर्वत, पर्जली, वत्सगुल्म, अवन्ती, गर्गराट, कुरुक्षेत्र, रोहीतक और मेरु इन नगरोंमें उत्त-रोत्तर स्पष्ट भूपरिधिके लघु (अल्प) होनेके कारण विलोम त्रैराशिकद्वारा बढाकर देशान्तर साधन करना ॥

स्पष्टपरिध्यानयनं वार्त्तिके समीचीनमुक्तं शिरोमणौ तु-"लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः" अत्र त्रिज्याद-यः सिद्धान्तोक्तरीत्या रेखागणितमानेन वा कल्प्याः । तत्त्व-विवेकसिद्धान्ते रोमकपत्तनात्पश्चिमे द्वाविंशतिभिरंशैः २२ खालदातदेशोस्ति तस्मात्तूलांशाः । अवन्तिकायां तूलांशाः ११० काश्यां तूलांशाः ११७ लङ्कायां तूलांशाः ११२ ॥

अर्थ–स्पष्टभूपरिधका आनयन सिद्धान्तशिरोमणिमें समीचीन कहा गया है कि, " पठितभूपरिधिको लम्बज्यासे गुणकर त्रिज्यासे भाग लेनेपर अपनी स्पष्ट भूप-रिधि होती है " यहाँ त्रिज्या आदि सिद्धान्तकी रीतिसे अथवा रेखागणितकी रीतिसे कल्पना करना चाहिये ।, तत्त्वविवेकसिद्धान्तमें रोमकपत्तनसे २२ बाईस अंश पश्चिम खालदात नामक देश है उसी देशसे तूलांश होता है सो गणित-द्वारा अवन्तिकामें तूलांश ११० हैं, काशीमें तूलांश ११७ हैं और लंकामें ११२ तूलांश हैं ॥

अथ सायनमेषमुखेऽर्के कोटिरूपद्वादशाङ्गुलशंकोः या भुजरूपा माध्याह्निकी छाया सा पलभा विषुवत्प्रभेति कर्णोऽक्षकर्णः इत्येकाक्षक्षेत्रम् । साऽक्षभा तुरीययन्त्रेणापि सिद्ध्यति यथा तुरीययन्त्रेण ध्रुवतारां विध्वा कर्णरूपे लम्बपाते येंऽशास्तेऽक्षांशाः । तेषां ज्या भुजज्या कल्प्या तद्दानं रेखागणितेन कोटिरेखायां मत्स्यात्समान्तरे कर्णाग्रलग्नं वा तुरीयदिगन्तरे खातः कार्यः एवं जात्यत्र्यस्रं कृत्वा कोटिशलाकाद्वादशांशमङ्गुलमानं तेन प्रमाणेन भुजाङ्गुलानि सूक्ष्मा पलभा ॥

अर्थ–अब पलभासाधन लिखते हैं–सायनसूर्य मेषादिमें जिस दिन जाय उस दिन मध्याह्नके समयमें बारह अङ्गुलका शंकु सीधा कोटिरूप स्थापन करना उस शंकुकी जो छाया हो अङ्गुलादि मापसे वही पलभा कहाता है और विषुवत्प्रभाभी उसीको कहते हैं उसी छायाग्र और शंकग्रमें जो सीधा सूत्रादि लगा दिया जायगा उसीको अक्षकर्ण कहते हैं, यह पहिला अक्षक्षेत्र है जैसा सिद्धान्तशिरोमणिमेंभी लिखा है कि " भुजोऽक्षभा कोटिदिनाङ्गुलोना कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत् ॥ " इस क्षेत्रमें शंकु कोटि, पलभा भुज अक्षकर्ण कर्ण यह जात्यत्र्यस्र सब अक्षक्षेत्रका मूल है । छायासाधनके लिये शंकु किस चीजका कैसा बनाना सोभी शिरोमणिमें लिखा है "समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शंकुः । तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥ " आशय यह है कि शंकुका मूल और अग्र समान परिधिका और भ्रमिद्वारा चिक्कण होना चाहिये जिससे छायाग्र स्पष्ट देखा जाय । पूर्वोक्त पलभा तुरीय यन्त्रसेभी सिद्ध होती है जैसा कि, तुरीय यन्त्रसे ध्रुवको वेधकर कर्णरूप लम्बपातमें जो अंश होगा वही अक्षांश होगा, उस अक्षांशकी ज्या (अक्षज्या) को भुज कल्पना करनी । उस भुजका दान कोटिरेखामें मत्स्यसमानान्तरमें कर्णाग्रमें लगा हुआ खात करना, इस प्रकारसे जात्यत्रिभुजकरके कोटि शलाकाके द्वादशांश अंगुलमान करके, उसी प्रमाणसे भुजका जो अंगुलादि होगा वही सूक्ष्मपलभी होगी ॥

अथवा खगोलान्तर्भगोले स्वक्षितिजाद्यावदुन्मण्डले ध्रुवोन्नतिस्तावदक्षांशाः । किन्तु निरक्षदेशाद्द्रष्टा यथायथोत्तरतो गच्छति तथा तथोदग्ध्रुवमुन्नतं पश्यति । तथा यैर्भागैर्ध्रुवमुन्नतं तैरेवाक्षसंज्ञैर्भागैः खस्वस्तिकाद्दक्षिणतो विषुवन्मण्डलं नतं पश्य-

ति, अत उपपन्नमक्षक्षेत्रम्, अक्षज्याभुजो, लम्बज्याकोटिः, त्रिज्या सर्वत्र कर्णः अस्मात्त्रैराशिकं लम्बज्यया अक्षज्या लभ्यते तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कुना किं फलमिति जाता सूक्ष्मा पलभा सैव ॥

अर्थ-खगोलान्तर्गत भगोलमें क्षितिजसे ऊपर उन्मण्डलमें ध्रुव जितने अंशों करके उन्नत हो उसीका नाम अक्षांश है । दूसरा प्रकार यह है कि, द्रष्टा (ध्रुवको देखने वाला) मनुष्य जैसा २ उत्तर जाता है वैसा २ही ध्रुवको उन्नत (ऊपर उठता हुआ) देखता है, इसी तरह जितने अंशोंकरके ध्रुवको उन्नत देखता है उतनेही अक्षांशोंकरके खस्वस्तिक (आकाशमध्य) से विषुवन्मण्डल (नाडीवृत्त) नत मस्तकसे दक्षिणतरफ झुका हुआ दीखता है इसलिये अक्षक्षेत्र उत्पन्न होता है जैसा कि गोलगर्भसे एक सूत्र खखमध्यमें और दूसरा निरक्ष खमध्यमें त्रिज्या बराबर सूत्र ले जाकर निरक्ष खमध्यसे स्वोर्ध्वाधर सूत्रपर लम्ब कर देनेसे अक्षज्या होगी, अक्षज्याके मूलसे गोल-गर्भपर्यन्त ऊर्ध्वाधर सूत्रका खण्ड लम्बज्या है, और त्रिज्या यह बृहत्क्षेत्र है । लघु क्षेत्रमें पलभा भुज, द्वादशाङ्गुल शंकुकोटि और पलकर्ण कर्ण यह लघु क्षेत्र है रेखा-गणितकी युक्तिसे दोनों सजातीय हैं, इन दोनों क्षेत्रसे त्रैराशिक किया कि लम्बज्या कोटिमें यदि अक्षज्या भुज पाते हैं तो द्वादशाङ्गुल तुल्य शङ्कुकोटिमें क्या द्वादश और अक्षज्याके गुणनफलमें लम्बज्याका भाग देनेसे सूक्ष्म पूर्व तुल्यही पलभा होगी ॥

स्थूलसाधनं तु-"अवन्तियाम्योत्तरयोजनानि दिक्ताडिता १० न्यर्क १२ हृतानि लब्धम् । हीनान्वितं खाष्टयमेषु २८०कार्यं रसाक्ष ५६ लब्धं विषुवत्प्रभा स्यात् ॥"इति । अवन्त्यां पलभा ५।०देशान्तरम् ०। काश्यां पलभा ५।४५देशान्तरं पूर्वम् $\frac{७०}{६४}$ ।

अर्थ-अब स्थूलपलभा साधन लिखते हैं-जिस देशकी पलभा जाननी हो वह देश अवन्तीसे जितने योजन दक्षिण या उत्तर हो उस योजनको दशसे गुणकर बारहसे भाग देनेपर जो लब्ध होय उसको दो सौ अस्सीमें घटाना या जोडना अर्थात् यदि अवन्तीसे दक्षिण होय तो घटाना और उत्तर होय तो योग करना पीछे छप्पन ५६ से भाग लेनेसे लब्धि पलभा होगी" अवन्तीमें पलभा ५।० है देशान्तर शून्य है । काशीकी पलभा ५ । ४५ है और देशान्तर $\frac{७०}{६४}$ है ॥

अथ कर्णभुजकोटिवर्गानयनम्।

भुजकोटयोर्वर्गयोगान्मूलं कर्णः प्रजायते।
एवं वर्गान्तरात्पूर्वे वर्गस्तुल्यांकयोर्वधः ॥१६४॥

अर्थ–अब कर्ण, भुज, कोटि लानेका प्रकार और वर्ग करनेका प्रकार लिखते हैं–त्रिभुजमें भुजका वर्ग और कोटिका वर्ग करके दोनोंको जोडकरके मूल ग्रहण करना वही कर्ण होगा। इसी प्रकार दोका वर्गान्तर करनेसे पूर्वके जो दो (भुज और कोटि) हैं वे होंगे। अर्थात् कर्णवर्ग और कोटिवर्गका अन्तर मूल भुज होता है तथा कर्णवर्ग और भुजवर्गका अन्तर मूल कोटि होती है। तुल्य (बराबर) दो अङ्कोंका गुणन फल वर्ग कहाता है अर्थात् जिस अङ्कका वर्ग करना हो उसको उतनेहीसे गुण देनेसे उस अंकका वर्ग हो जाता है। जैसे दोका वर्ग चार, तीनका वर्ग ९, चारका १६, पाँचका २५, छःका ३६, सातका ४९, आठका ६४, ९ का ८१, १० का १००, ११ का १२१ इत्यादि ॥ १६४ ॥

अथ पूर्णापूर्णाङ्कयोर्मूलानयनसूत्रम्।

समावृत्त्याङ्कमानग्रात्यक्त्वान्त्यौजात्कृतिंफलम्।
द्विघ्न्याप्तात्कृतिं चाग्रात्तदर्द्धावृत्तिहृत्पदम् ॥ १६५ ॥

अर्थ–अब वर्गमूल निकालनेका प्रकार लिखते हैं–प्रथम जिन अङ्कोंका मूल निकालना हो उन अङ्कोंके ऊपर विषम समका चिह्न डालकर ठीक कर ले, जिससे मूल निकालनेमें सन्देह न हो। चिह्न डालनेके दो रीति हैं पहिला तो विषम अङ्कके ऊपर खडा रेखा डालते हैं यथा ($\frac{।}{१}$) और सम अङ्कके ऊपर आडी (गिरी) रेखाडालते हैं यथा ($\bar{१}$) यहां विषम समका ग्रहण स्थानपरक है अर्थात् एक स्थानी अङ्क विषम कहाता है चाहे वह अङ्क समभी हो, फिर दश स्थानी अङ्क सम कहाता है चाहे वह अङ्क विषमभी हो इसी प्रकार फिर शतस्थानी विषम, सहस्र स्थानी सम इत्यादि दाहिने तरफसे चिह्न देना शुरू करे जिसलिये "अङ्कस्य वामा गतिः" ऐसा लिखा है। अब जिस अङ्कका वर्ग निकालना है उसको किसी वर्गात्मक अङ्क (जैसे ४–९–१६–२५–३६ इत्यादिमेंसे किसीसे) गुण दे। तब पूर्वोक्त प्रकारसे सबसे आखरीमें बायें तरफ जो विषमाङ्क है उसमें जिस अङ्कका वर्ग घटै (अर्थात् ऐसा अङ्कका वर्ग घटावै कि उससे अग्रिमाङ्कसंख्याका वर्ग नहीं घट सकै) उसको घटावे, और जिस अङ्कका वर्ग घटै उसको फल माने। इस फलको दूना करके उससे पहिला सममें भाग दे जो लब्धि हो उसका वर्ग इस समसेभी जो पहिला विषम है उसमें घटावे लब्धिको फलमें रखे। बस इसी प्रकार समस्त सम

विषममें क्रिया करनी। अर्थात् फिर समस्त फलको दूना कर सममें भाग दे लब्धिका वर्ग विषममें घटावे इस प्रकारसे क्रिया करके जो फल आवे उसका आधा करके जिस वर्णसे गुणा था उसके मूलसे भाग देनेपर जो लब्ध हो वही मूल होगा। इस श्लोकसे वर्गात्मक और अवर्गात्मक दोनोंके मूलानयन आचार्य किये हैं परन्तु वर्गात्मक अङ्कका मूल निकालनेमें वर्गात्मक अङ्कसे गुणनेका कुछ प्रयोजन नहीं है तथापि अधिक अङ्कमें वर्गात्मक अवर्गात्मकका निर्णय करनेमेंभी कुछ प्रयास अवश्य करना होगा। इस लिये छोटे वर्गात्मकसे गुणनाही ठीक होगा और हमारी यह क्रिया अवर्गात्मकमेंभी प्राचीनोंके तरह काम देगी ॥ १६५ ॥

अथ भिन्नपरिकर्माष्टककरणसूत्रे।

अन्योन्यहारघ्नहरांशकावंशौ युगन्तरे।
गुणे तयोस्तु गुणने हरव्यस्ता हृतौ हृतौ ॥ १६६ ॥
हरांशयोः कृती वर्गे पदे मूलेऽहरे कृहत्।
समत्रिघातौ च घनस्तन्मूलं घनशोधनात् ॥ १६७ ॥

अर्थ–अब भिन्नपरिकर्माष्टक कहते हैं दो श्लोकोंसे–भिन्न उसको कहते हैं कि जो सच्छेदक (हर भाज्यके तौरपर) हो पहले अहरराशिके गुणन भजनादि ग्रन्थआदिमें कह आये हैं अब यहाँ सहर अङ्कोंका परिकर्माष्टक कहते हैं। परिकर्माष्टक उसको कहते हैं कि जिसमें आठ कर्म हों, सो आठों कर्म क्रमसे योग १, अन्तर २, गुणन ३, भजन ४, वर्ग ५, वर्गमूल ६, घन ७, घनमूल ८ ये हैं अर्थात् सहर अङ्कोंके ये आठों कर्म यहाँ कहे जाते हैं–जिस दो भिन्न (सहर) राशिका योग या अन्तर करना हो वहाँ दोनोंको अलग २ रखके पहिलेके हरसे दूसरेके हर अंशको गुणा करना और दूसरेके हरसे पहिलेके हर अंशको गुणा करना ऐसे करनेसे दोनों समान हरवाले हो जाते हैं पीछे दोनों अंशका योग या अन्तर करना हर समच्छेद करके जो भया है वही रहेगा गुणा करनेमें अंश (ऊर्ध्वके अंक) को अंशसे और हरको हरसे गुणा करनेसे गुणनफल होता है अर्थात् " अंशाहतिच्छेदवधेन भक्ता लब्धं विभिन्ने गुणने फलं स्यात् " हरसे भाग लेनेसे गुणनफल होता है। सच्छेदक राशिके भाग लेनेमें हरमें जो अंश हो उसको हर कल्पना करना और छेदको अंश कल्पना करके गुणककी तरह क्रिया करनेसे लब्धि होती है। अब यहाँ योग, अन्तर, गुणन, भजन इन चारोंमें दो दो अङ्ककी आवश्यकता है और वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल इन चारोंमें एकही अंककी जरूरत है इसलिये सच्छेदकमें प्रथमके जो चार क्रियायें कहे हैं उनमें

यदि एक राशि सच्छेदक भिन्न हो और दूसरी राशि अच्छेदक अभिन्न हो तहाँ जो अभिन्न (हररहित) हो उसके नीचे एक हर रखके पूर्वके अनुसार क्रिया करनी सच्छेदक राशिका वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करना, मूल लेना हो तो दोनोंका मूल ग्रहण करना । समान तीन अंकका घात घन कहाता है, और घनमूल लेनेमें जिसका घन उसमें घटजाय वही घनमूल होता है ॥१६६॥ १६७ ॥

अथैकानेकवर्णसमीकरणे सूत्रे ।

उक्तादिष्टफले स्वर्णे मिश्रेघ्ने विरूपयुक् ।
विश्लेषस्तुल्यरूपे च तादृक्फलहृतः फलम् ॥ १६८ ॥
उक्ताद्वर्णौ पृथग्रूपमिति स्वर्णे समौ यथा ।
वर्णान्तराद्व्यस्तरूपांतरं भक्तं तु तन्मितिः ॥ १६९ ॥

अर्थ–अब एक वर्ण समीकरण और अनेकवर्ण समीकरणकी रीति लिखते हैं–जहाँ उदाहरणमें एक अव्यक्त मान कल्पना करनी पडे उसको एकवर्णसमीकरण कहते हैं और जहाँ एकवर्णसे निर्वाह नहीं हो दो तीन आदि अव्यक्त कल्पना करनी पडे उसको अनेक वर्णसमीकरण कहते हैं । इसका नाम समीकरण इसीलिये रक्खा है कि इस अव्यक्त गणितमें दो पक्ष समान करने पडते हैं जबतक दोनों पक्ष समान नहीं होंगे तबतक मान नहीं निकलेगा । इसलिये जिसका मान लाना हो उसका प्रमाण यावत्तावदादि माने और (उदाहरण) प्रश्न द्वारा इष्ट फल लानेमें जोडना घटाना, भाग लेना–गुणना, रूप (प्रत्यक्ष अंक) घटाना जोडना, जिस प्रकारसे कहा हो वह सब करके तुल्य दो पक्ष करे । फिर जिस पक्षमें अव्यक्त संख्या न्यून हो उसे वेसी अव्यक्त संख्यापक्षमें घटावे और इसका उलटा रूपकाभी अन्तर करे तब एक पक्षमें अव्यक्त रहेगा और दूसरे पक्षमें रूप (प्रत्यक्ष अंक) रहेगा । ऐसा होजानेपर अव्यक्तकी संख्यासे रूपमें भाग दे तो अव्यक्तका मान आजायगा ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

उदाहरणे ।

लक्ष्मीनाथप्रसादो मे कदा पूर्णो भवेद्गते ।
पूर्णायु १२०रैष्ये द्विगुणे योगजं योगदं तव ॥ १७० ॥

अर्थ–ग्रन्थकार भगवान् (लक्ष्मीनाथ) से प्रार्थना करते हैं कि, मेरी कुण्डलीमें योगज आयुर्दाय पूर्णायु है किन्तु मैं उस पूर्णायुमेंसे कितनी आयु बीत गई है और कितनी बाकी है सो नहीं जानता किन्तु यह जानता हूँ कि; गतसे ऐष्य द्विगुणित

होनेसे पूर्णायु होगी तो हे लक्ष्मीनाथ ! आपके साथ योग (मोक्ष) को इनवाला आयु कब पूरी होगी ?

उदाहरण–यहाँ गत आयुसे ऐष्य द्विगुण है और दोनोंका योग एक सौ बीस वर्ष है इसलिये यहाँ गत आयु प्रमाण यावत्तावत् माना (या१=ग॰ आ॰) अब गत आयुका दूना ऐष्य आयु भया (या २=ऐ॰ आ॰) गत और ऐष्यका योग करनेसे एक सौ बीसका बराबर होगा इसलिये (या ३= रु१२०) भया अब दोनों पक्ष बराबर हो गये॰ अब दोनों पक्षको यावत्तावताङ्क तीनसे या केवल रूपहीको यावत्तावतांक तीनसे भाग दिया तो यावत्तावत बराबर भया चालीसका (या=४०) यह गत आयु है इसी ४० को दूना करनेसे ऐष्य (बाकी) आयु भया ८० यही उत्तर भया । यह एक वर्णका उदाहरण है ॥ १७० ॥

प्रतिपत्रं यदैकैको भृङ्गाः पञ्चावशेषिताः ।
द्वौ द्वौ चेत्पत्रशतकं तत्संख्यां वद मे द्रुतम् ॥ १७१ ॥

अर्थ–प्रश्न यह है कि एक वृक्ष रहा उस वृक्षपर भृङ्ग (भ्रमर) का यूथ (समूह) पहुँचा और एक एक पत्तेपर एक एक बैठने लगे पीछे पत्ते चुक गये, पाँच भृङ्गको बैठनेकी जगह नहीं मिली पीछे दो दो भृंग एक एक पत्रपर बैठे तो वृक्षके सौ १०० पत्ते खाली रह गये तो शीघ्र बोलो कि, उस वृक्षमें कितने पत्ते रहे और कितने भ्रमर रहे ?

उदाहरण–इसका उत्तर एक वर्ण और अनेक वर्ण दोनोंसे होसकता है इसलिये पहिले एकवर्णका उदाहरण देकर पीछे अनेक वर्णकाभी उदाहरण देंगे यहाँ वृक्षके पत्रका प्रमाण अव्यक्त यावत्तावत् कल्पना किया (या१=पत्र) अब पत्रके जो यावत्तावत् प्रमाण कल्पना किया उसमें पाँच मिला देनेसे भृंगका प्रमाण होगा जिस लिये पत्रसे बेसी पाँचही भृंग बचे हैं । (या १ = रु ५=भृंग) यह पहिला आलाप भया, दूसरा यह है कि, जब दो दो भृंग एक एक पत्र पर बैठा तो सौ पत्ते बचे इसलिये यदि भृंगमान या १ रु ५ आधा (या $\frac{1}{2}$ रु $\frac{5}{2}$) करके सौ १०० और मिलादें तो पत्रप्रमाण होगा परन्तु भृंगका आधा करनेसे भिन्न हो गया है और सौ जो मिलावेंगे सो अभिन्न है इस लिये सौके नीचे रूप (एक) हर कल्पना करके भिन्नकी क्रियासे मिलाया (योग किया) तो पत्रमान भया (या $\frac{1}{2}$ रु $\frac{205}{2}$) यह पूर्व जो पत्र प्रमाण (या १) है इसका बराबर है इस लिये बराबरका चिह्न (=) देकर दिखाते हैं (या १ = या $\frac{1}{2}$ रु $\frac{205}{2}$) अब यह दोनों बराबर है तो तुल्यसे गुणनेसे, तुल्य जोडनेसे, तुल्य घटानेसे तुल्यसे भागभी लेनेसे आपसमें

तुल्य (बराबर) ही रहेगा । इस लिये यदि दोनोंको दोसे गुण दे तौभी तुल्य (समान) ही रहेगा अतः दोसे गुणा तो प्रथम पक्षमें द्विगुण भया और द्वितीय पक्षमें दो हरभी है इस लिये 'हरगुणकयोस्तुल्यत्वान्नाशः' इससे हरनाश हो गया (या २–या१ = रु२०५) अब दोनों पक्षमें एक गुणित यावत् (या१) घटा दिया तो (या १ = रु२०५) अब यहाँ एक गुण यावत्का बराबर रूप दो सौ पांच २०५ भया परन्तु यावत् पत्र मानकी कल्पना है इस लिये पत्र मान दो सौ पांच २०५ भया । और उदाहरणमें पत्रमानसे भृंगमान पांचही अधिक है जिस लिये कि एक एक बैठनेसे पाँच भृंग बच गया रहा अब यदि पत्रमानमें पाँच मिला दिया जाय तो भृंग मान २१० होय । बस यही क्रमसे पत्रमान २०५ भृंगमान २१० भया अब उदाहरण घटाना सरल है । इसी प्रकारसे यदि भृंगमानही अव्यक्त (यावत्) कल्पना किया जाय तौ भी दो पक्ष समान करके भृंगमान आवेगा उसमें पाँच घटादेनेसे पत्रमान होगा । ऐसेही सर्वत्र अपनी बुद्धिसे समीकरण ठीक करके राशि लानी चाहिये । अनेक वर्णसे उदाहरण—यहाँ भृंगका मान या १ माना और पत्रका मान कालक १ (या १=भृं. का. १=प.) यहाँ प्रथम उदाहरणमें भृंगमानसे पत्रमान पाँच कम है इसलिये भृंगमान (या १) में पाँच घटानेसे पत्रमान कालकका बराबर भया (या १–रू.५=का १) दूसरा उदाहरणमें भृंगमानका आधाकरके सौ मिलानेसे पत्रका मान होगा । इसलिये समच्छेदसे (या १+रु २००=काल) दोनों पक्षबराबर होनेसे दोसे गुणा
२
तो (या २ रु १०=या १+रु २००) समशोधन किया तो या १=२१० यह भृंगका मान भया इसमें ५ घटानेसे २०५ पत्रमान भया ॥ १७१ ॥

अथ सामुद्रिकज्ञानम् ।

दक्षे करतले पुंसो वामे पाणितले स्त्रियाः ।
पदे वा राजचिह्नास्त्रस्वस्तिक राजलब्धिदम् ॥ १७२ ॥

अर्थ—अब सामुद्रिकज्ञान लिखते हैं—पुरुषको दहिने हाथकी रेखा देखनी चाहिये और स्त्रीको बायें हाथकी रेखा देखनी चाहिये या पाँवकी रेखा देखनी चाहिये देखनेसे राजचिह्न (चमर छत्र बल्लम आदि) अस्त्र, स्वस्तिकं यदि देखाजाय तो इन चिह्नोंको राज्यलब्धि देनेवाला समझना चाहिये ॥ १७२ ॥

अपत्यायुर्भ्रातृविद्या धनभार्योर्ध्वरेखकाः ।
चक्रस्थानस्थिता ज्ञेया दीर्घाः स्निग्धाः शुभप्रदाः ॥१७३॥

अर्थ–अब कौन रेखासे कौन फल कहना सो लिखते हैं–नीचे जो हस्तचक्र दिया है उस चक्रमें 'अपत्य' ऐसा जहाँ लिखा है उसी स्थानकी रेखासे अपत्य (सन्तान) कहना चाहिये अर्थात् मणिबन्धसे ऊपर कनिष्ठिका अङ्गुली के तरफ) आयुरेखाके नीचे सन्तान रेखा रहती है उन रेखाओंमें जितनी बडी अखण्ड रेखा हों उतने पुत्र और जितनी छोटी अखण्डरेखा हों उतनी कन्या कहनी चाहिये तथा खण्ड रेखासे अल्पायु, गर्भस्राव . आदि होते हैं। उसी हस्त चक्रमें जहाँ 'आयु' ऐसा लिखा है उस (कनिष्ठिका अङ्गुलीके नीचेसे और तर्जनी पर्यन्त जो रेखा रहती है तिससे) आयुका विचार होता है अर्थात् आयुरेखा यदि चिक्कण स्वच्छ हो तो रोग रहित, पूर्ण आयु होती है और यदि छिन्न भिन्न होय तो रोगादिक होते हैं कहीं २ ऐसाभी लिखा है कि, तर्जनी पर्यन्त यदि आयुरेखा होय तो पूर्णायु, सौवर्ष मध्यमापर्यन्त होय तो ७५ वर्ष आयु, और अनामिकाके सामने तक होय तो ५० वर्ष आयु, कनिष्ठिकाके सामने तक होतो २५ वर्ष आयु होती है, इसमें ध्यान रखना चाहिये कि जितनी आयुतक रेखा हो उसके बीचमें भी यदि खण्ड आदि भया हो तो उसमें अपमृत्यु या प्रबल रोगादिक होते हैं । चक्रमें जहाँपर भ्रातृ ऐसा लिखा है अर्थात् मणिबन्धसे ऊपर अङ्गुष्ठके तरफ अङ्गुष्ठसे नीचे भ्रातृस्थानहैं उस स्थानमें जितनी रेखायें होयँ उतनेही सहोदर कहना चाहिये उसमें भी बडी रेखासे भाई, छोटीसे बहिनकी संख्या कहनी चाहिये। हस्त चक्रमें जहाँ 'विद्या' ऐसा लिखा है अर्थात् अनामिकाके मूलमें मध्यमाके तरफ विद्याकी रेखा रहती है उसी रेखासे विद्या कहनी। आयुरेखासे नीचे अंगुष्ठ और तर्जनीके बीचमें जाती उस रेखासे धन कहना। अर्थात् जितनी आयुके सामनेसे वह रेखा चलती है उतनी ही आयु बीतेसे अर्थ प्राप्ति होती है। हस्त चक्रमें जहाँ 'स्त्री' ऐसा लिखा है अर्थात् कनिष्ठिकाके मूलसे नीचे आयुरेखासे ऊपर स्त्रीरेखा रहती है, उस स्थानमें जितनी रेखायें हों उतनी स्त्रीयें होती हैं। हस्तचक्रमें 'ऊ' ऐसा नहीं लिखा है अर्थात् मनिबन्धसे ऊपर शुरू होकर सीधी अनामिका मध्यमाके बीचमें जो जाती है उसको ऊर्ध्व रेखा कहते हैं यह रेखा पूरी होनेसे राज्य देती है और जिसके हस्तमें जितनी रहती है उतनी ही धनादिक बढाती है यह रेखा जिसके हाथमें थोडी भी होती है वह मनुष्य भोजन वस्त्रसे दुःखी नहीं होता है। ये सब रेखायें दीर्घ हों और स्वच्छ हों तो शुभ फल देती हैं और अल्प (लघु), छिन्न होनेसे शुभ नहीं करती हैं ॥ १७३ ॥

रेखांकित पंजा.

अथ पल्लीपात–शरटारोहणफलम् ।

पुंदक्षाङ्गे स्त्रिया वामे हृदि नाभौ वराङ्गके ।
विहतौ पल्लिपातः सन् शरटारोहणं तथा ॥ १७४ ॥

अर्थ–अब पल्ली (छिपकली) पतन (गिरना) और शरटका आरोहण (चढने) का फल लिखते हैं–पुरुषके दक्षिण अङ्गमें पल्लीपतन या शरटारोहण होय तो अशुभ होता है और स्त्रीको बायें अङ्गमें अशुभ होता है । तथा हृदय, नाभि, वराङ्ग (गुह्यस्थान) में पल्ली (छिपकाली) गिरे और शरट चढे तो स्त्री पुरुष दोनोंका अनिष्ट होता है यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि पल्लीके चढनेमें और शरटके गिरनेमें कुछभी शुभाशुभ फल नहीं होते हैं ॥ १७४ ॥

अथांगस्फुरणस्वप्नफलम् ।

पल्लीव चाङ्गस्फुरणं सत्स्वप्ने रोदनं मृतम् ।
विडसृग्लेपशुक्शीर्षाच्छिदासृङ्मांसभक्षणम् ॥ १७५ ॥

अर्थ–अब अङ्गस्फुरण और स्वप्नका फल लिखते हैं–पल्लीपतनमें जो फलादेश कहे हैं वैसाही फल अङ्ग (शरीर) स्फुरणमें भी जानना चाहिये भस्वप्न लिखते हैं–स्वप्नमें रोना, अपनी मृत्यु, विष्ठा और रुधिरका लेपना, शोककरना, अपने शिरका कटना, लोहू और मांसका भक्षणं (भोजन) करना शुभ है ॥ १७५ ॥

वृक्षागेभाश्वरथान्नारोहोऽग्न्यहिभयं फलम् ।
सत्स्त्र्याज्यध्वजमन्त्राप्तिर्नृपगो हेमदर्शनम् ॥ १७६ ॥

अर्थ–स्वप्नमें वृक्ष, पर्वत, हाथी, घोडा, रथ (गाडी) और अन्नकी ढेरीपर चढना, अग्निका भय और सर्पका दंशका भय होना, सुन्दरी स्त्री, घी, ध्वजा, मन्त्रकी प्राप्ति अर्थात् स्वप्नमें दीक्षाग्रहण राजा, गाय और सोना इनका देखना शुभ है ॥ १७६ ॥

देवपितृद्विजवचस्तथ्यं तरणपूजनम् ।
श्वेतं विलक्काऽस्थि दिनैर्निट्शेषार्कगुणैः फलम् ॥ १७७ ॥

अर्थ–देवता, पितर, और ब्राह्मणकी वाणी सत्य होती है, तरण (नदी आदिको तैरना) पूजन (पूजा करना) और छाछ, तथा हड्डीको छोडकर सब श्वेत (सपेद) वस्तु शुभ होते हैं कहीं २ " कार्पासभस्मौदनतक्रवर्ज्यम् " इस वाक्यसे श्वेत॰ वस्तुमें कपास (रुई) भस्म (राख) और भातको अशुभ बताया है । वहाँही सभी कृष्ण (काला) वस्तुको स्वप्नमें अशुभ बताया है परन्तु गाय, ब्राह्मण धान्य और हाथी ये काले देखे जाय तो शुभ फल होता है । अब यह शुभाशुभ फल कितने दिनमें होना चाहिये ? इस विषयमें लिखते हैं कि रात्रिमें जिस समय स्वप्न देखनेमें आवे उस समयसे जितनी घटी रात्रि बाकी रहे उस घटीको बारहसे गुणकर जितनी संख्या हो उतनेही दिनमें वह स्वप्नमें देखेका फल होता है ॥ १७७ ॥

अथ शुभाशुभशकुनानि ।

फलान्नदुग्धगोविप्रा दधिसिद्धार्थकन्यकाः ।
पद्माम्बरसुवाग्वेश्या नकुलाजौ शिखी पिकः ॥ १७८ ॥
मीनो बद्धपशुर्वीणामिषकुम्भेक्षुदर्पणम् ।
रत्नोष्णीषौ सितोक्षा मृत्सुरादीप्ताग्निमङ्गलम् ॥ १७९ ॥

पुत्रिण्यञ्जनराजाङ्कं विरोदनशवो मधु ।
रोचनाज्यभरद्वाजवेदघोषाः शुभप्रदाः ॥ १८० ॥

अर्थ–अब शुभ शकुन लिखते हैं–यात्राके समय या गृह प्रवेश आदिके समय फल, अन्न, दूध, गाय, ब्राह्मण, दही, सरसों, कन्या, कमल, वस्त्र, अच्छी वाणी, वेश्या (रण्डी) नौला, छाग, मयूर, कोकिल, मछली, बँन्धा हुआ एक पशु, बाजा, आमिष (मांस आदि), जलमें भरा घडा, ऊख, दर्पण (शीशा) रतन, पगडी, श्वेत बेल, मट्टी, मद्य, प्रज्वलित आग, मङ्गल गानें आदि, पुत्रको ली हुई स्त्री; आंजन, राजचिह्न (चमर, छत्र आदि) रोदनरहित मृतक अर्थात् शव देखना अच्छा है परन्तु कोई रोता न हो तो । मधु, गोरोचन, घी, भरद्वाज (पंक्षी विशेष) और वेदका शब्द ये सब शुभफलदायक हैं ॥ १७८–१८० ॥

अथ शकुनव्यवस्था ।

रिक्तो घटः स्वानुगश्च धन्यो वामे खरस्वनः ।
गमवेशौ दक्षवामाः काकोतुश्वानपिंगलाः ॥ १८१ ॥

अर्थ–अब शकुनकी व्यवस्था लिखते हैं– यद्यपि खाली घडा देखना अशकुन है परन्तु अपनेसे पीछे हो तो धन्य (शुभ) है । गदहेका शब्द सुनना अशकुन है परन्तु अपनेसे बायें तरफ शब्द करे तो शुभ है । यात्रासमयमें काक, बिलाड, कुत्ता और पिङ्गला नामका पक्षी दहिने तरफ शुभ होते हैं और प्रवेश (गृहप्रवेश) में बायें तरफ शुभ होते हैं ॥ १८१ ॥

अथ कार्यपरत्वे विशेषः शान्तिश्च ।

वेशे युद्धे भयोत्तारे शोधने त्वशुभाः शुभाः ।
दुःस्वप्ना दिवि नाशाय लक्ष्मीनारायणं जपेत् ॥ १८२ ॥

इति श्रीकृष्णविलासात्मजदीनानाथविरचितेरिजथे १८२ मिश्राध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

अर्थ–अब कार्यपरत्वसे विशेष लिखते हैं–गृहप्रवेशमें, युद्धमें, भयमें अर्थात् देशोपद्रव आदिसे भगनेमें, नदियोंके पार उतरनेमें, जो वस्तु नष्ट हो गया हो उसके शोध (खोज) करनेमें अशुभ शकुनही शुभ होता है और शुभ शकुन अशुभ होता है । अब दुःस्वप्न आदिके नाशके लिये लक्ष्मीनारायणके नामका जप करना चाहिये । यही शान्ति है ॥ १८२ ॥

इति श्रीमिथिलादेशान्तर्गतगनिगामग्रामवास्तव्यश्रीवबुयेशमात्मजज्योतिर्विद्भूषण श्रीवच्चूशर्मकृतायां सर्वसंग्रहभाषाटीकायां मिश्राध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

अथ देहस्वराध्यायः २.

तत्र नाडीनामस्थानस्वामिस्थितिकालज्ञानम् ।

चन्द्रस्येडा वामगा स्याद्दक्षे सूर्यस्य पिंगला ।
पञ्चपञ्चघटीरूपे मध्ये शैवी सुषुम्निका ॥ १ ॥

अर्थ–अत्र देहस्वराध्याय लिखते हैं–तहां नाडियोंके नाम तथा उन नाडियोंके स्वामी और रहनेके समय लिखेत हैं–इस शरीरमें तीन नाडिये हैं. १ इडा, २ पिंगला, ३ सुषुम्ना । इनमें वामनासासे प्राणवायु चलनेपर इडा नाडी कही जाती है, दक्षिणनासासे प्राणवायु चलनेपर पिंगला समझी जाती है, ये दोनों पाँच पाँच घटी रहती हैं इन दोनोंके बीचमें बहुतही सूक्ष्म समय सुषुम्ना रहती है जिस सुषुम्नाको योगी लोकही जान सकते हैं साधारण मनुष्योंसे जानी नहीं जाती । इनमें इडाके स्वामी चन्द्रमा है, पिंगलका सूर्य सुषुम्नाका शिव स्वामी हैं ॥ १ ॥

स्वरचक्रम् ।

नाडीनाम	इडा	पिंगला	सुषुम्ना
काल	५ घटी	५ घटी	सूक्ष्म
स्वामी	चन्द्रमा	सूर्य	शिव

अथ नाड्यां तत्त्वस्थितिज्ञानम् ।

क्रमोत्क्रमाच्चतुर्वारं वाति नागैर्नैर्चैर्निधैः ।
नारपैर्नमुकैः श्वासैः खं वातोऽग्निर्जलं क्षितिः ॥ २ ॥

अर्थ–अब नाडियोंमें तत्त्वस्थितिका ज्ञान लिखते हैं–पूर्वश्लोकमें जो इडा और पिंगलाकी स्थिति पाँच २ घटी कहे हैं इन दोनोंमें पाँचों तत्त्व चार वार क्रम और उत्क्रमसे अर्थात् दोवार क्रम और दोवार उत्क्रमसे होते हैं जैसे कि प्रथम. नाग (तीस ३०) श्वास (प्राण) आकाशतत्त्व रहता है, फिर साठ ६० श्वास वायुतत्त्व रहता है फिर नव्वे श्वास पर्यन्त अग्नितत्त्व रहता है, अग्नितत्त्वके अनन्तर एक सौ बीस १२० श्वास जलतत्त्व रहता है, जलतत्त्वके पीछें डेढ सौ १५० श्वास भूमितत्त्व रहती है ये सब मिलकर चार सौ पचास ४५० श्वास होते हैं । परन्तु छः श्वासका एक पल होता है इसलिये ७५ पचहत्तर पल भये अर्थात् एक घटी पन्द्रह पलमें ये पाँचों तत्त्व बीतते हैं । फिर उत्क्रम (उलटी रीति) से १५० भूमि, १२० जल

९० अग्नि, ६० वायु, ३० आकाश ये दोनों वारके मिलकर अढाई घटी होती है । इसी प्रकार चार वारमें पाँच घटी पूरी होती है ॥ २ ॥

अथ दिनचर्यायां शुभाशुभज्ञानम् ।

शुक्लात्रित्र्यहनीन्द्वर्कौ तच्छयस्यास्य ह्युतिः ।
प्रत्यूषश्चेत्तदा श्रेयश्चान्यथा चेत्कलिव्यथे ॥ ३ ॥

अर्थ–अब प्रत्येक दिनमें शुभाशुभ जाननेका प्रकार लिखते हैं–शुक्लपक्षके प्रतिपदासे लेकर अमावास्या पर्यन्त तीन तीन दिनके क्रमसे प्रातःकालमें चन्द्रनाडी (इडा) और सूर्यनाडी (पिंगला) का उदय होता है, अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया तिथिमें सूर्योदयके समय चन्द्रनाडी (वामश्वासा) चलती है। फिर चतुर्थी,पञ्चमी और षष्ठीमें सूर्योदयके समय सूर्यनाडी (दाहिनी-श्वासा) चलती है । इसी तरह ७–८–९ को वामश्वासा १०–११–१२को दाहिनी १३–१४–१५को वामा । फिर कृष्णपक्षकी १–२–३को दाहिनी, ४–५–६को वामा ७–८–९को दाहिनी, १०–११–१२को वामा १३–१४–३०को दाहिनीश्वासा चलती है और इन्हीं दोनों नाडियोंके बीचमें सुषुम्ना होती है । जिन जिन तिथियोंके सूर्योदयमें जो जो नाडी कही है उन उन तिथियोंमें प्रातःकाल उस नाडीको देखना चाहिये यदि वही नाडी चलती होय तो उस दिन शुभ जानना और यदि अन्य नाडी चलती हो तो तकरार व्यथा आदि उस दिनमें होते हैं ॥ ३ ॥

अथ नाड्यां कर्त्तव्यमाह ।

स्थिरकर्माणि सौम्यानि चेन्दोर्नाड्यां तु कारयेत् ।
रवौ चराणि क्रूराणि मध्यायां मोक्षसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ–अब किस नाडीमें क्या काम करना ? उसको कहते हैं–स्थिर कार्य (मकान बगीचा तालाव, देवप्रतिष्ठा, वास्तुप्रतिष्ठा आदि) और शुभ कार्य (उपनयन, विवाहादि) चन्द्रनाडी (वामश्वासा चलते समय करना उत्तम है और चर कार्य (यात्रा, हाथी, घोडे आदिको प्रथम सवारी, क्रय विक्रय आदि) तथा क्रूर कार्य (दाव, विवाद, युद्ध आदि) सूर्यनाडी (दक्षिण श्वासा) चलते समय करना उत्तम है और सुषुम्नानाडीमें मोक्षसाधनके कार्य (प्राणायामादि) सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

अथ वर्षाऽयनशुभाशुभज्ञानम् ।

चैत्रशुक्लाद्युवद्ने मेषार्के तत्त्वभेदतः ।
पश्येद्वर्षफलं योगी दक्षिणे चोत्तरायणे ॥ ५ ॥

अर्थ—अब वर्ष और अयनमें शुभाशुभज्ञान लिखते हैं—वर्षादि दो समझे जाते हैं एक तो चैत्रशुक्लप्रतिपदा, और दूसरा जिस रोज मेषमें सूर्यका प्रवेश होय । इस लिये इन दोनों दिनोंमें और याम्यायन (कर्कके संक्रान्तिके दिन) तथा सौम्यायन (मकरसंक्रान्तिके दिन) में पञ्च तत्त्वोंको जाननेवाला योगी उस वर्षमें या उस अयनमें कैसा शुभाशुभ होगा सो देखें ॥ ५ ॥

अथ प्रश्ने शुभकालज्ञानम् ।

शुभवारे वामनाडीं सिद्धिदा नितरां सिते ।
पापवारे दक्षिणा च कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब प्रश्नके लिये शुभकाल ज्ञान लिखते हैं—शुभग्रहों (पूर्णचन्द्र पापरहित बुध गुरु, शुक्रके) वारमें किसीने प्रश्न करै तो उस समय यदि वामनाडी चलती हो तो उस कामकी सिद्धि जाननी । परन्तु शुक्लपक्षमें शुभ ग्रहके दिनमें वामनाडी चलते समय प्रश्न करै तो विशेष रीतिसे कार्यसिद्धि होती है । तथा पापग्रहके दिनमें दक्षिण नाडी चलते समय प्रश्न करै तो उस कार्यकी सिद्धि कहनी, और यदि कृष्णपक्षके पाप ग्रहके दिनमें दाक्षिण श्वासा चलते समय प्रश्न करै तो विशेष सिद्धि होती है । इससे उलटा होय अर्थात् शुक्ल पक्षमें शुभ ग्रहके दिनमें दाहिनी नाडी चलते समय प्रश्न पूछै तो उस कामकी सिद्धि नहीं होतीहै । ऐसेही कृष्णपक्षमें पापवारमें वाम नाडी चलते समय प्रश्न करै तो कार्यकी सिद्धि नहीं कहनी ॥ ६ ॥

अथ स्वरव्याप्तिज्ञानम् ।

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः ।
खे क्षिप्तपुष्पपतनात्स्वस्य पूर्णतरौ स्मृतौ ॥ ७ ॥

अर्थ—अब जहाँ स्वर ज्ञानमें सन्देह हो वहाँ एक पुष्पको हाथमें लेकर ऊपरको फेंके वह फूल अपने आगेमें, या वाम भागमें, या अपने आसनसे ऊँचे स्थानपर गिरै तो चन्द्र स्वर जानना । तथा दाहिने भागमें, पीठके तरफ और आसनसे नीच जगह पर गिरे तो सूर्यस्वर जानना । इस प्रकारसे जिस स्वरका ज्ञान हो उसको पूर्ण-नाडी जानना । तथा दूसरेको शून्य (रिक्त) जानना ॥ ७ ॥

अथ यात्रासाधनम् ।

चन्द्रे समपदं कुर्याद्रवौ तु विषमं सदा ।
पूर्णं पदं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ ८ ॥

अर्थ—अब यात्रासाधन लिखते हैं—चन्द्रनाडी (वामश्वासा) चलते समय यात्रा करनी हो तो सम (२–४–६–८–१०–१२ आदि) पांव आगे रखकर यात्रा करै और सूर्यनाडी चलती हो तो विषम (१–३–५–७–९–११ आदि) पांव चलकर यात्रा करै परन्तु इसमें विशेष यह है कि जो नाडी चलती होय उसी तरफका पाँव प्रथम उठाके चले तो यात्रा सिद्धि देनेवाली होती है ॥ ८ ॥

अथ स्वरे वर्ज्यदिग्युद्धे जयसाधनं च ।

वामचारप्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्वमुत्तरम् ।
दक्षप्रवाहे तु परं जयेल्लक्षमिनाग्निना ॥ ९ ॥

अर्थ—वामनाडी चलते समय पूर्व दिशाकी यात्रा न करे और दक्षिणनाडी चलते समय उत्तर दिशाकी यत्रा न करे तथा दाक्षिण नाडी चलते समय अग्नितत्त्वमें यात्रा करे तो लक्ष शत्रुको जीते ॥ ९ ॥

अथ प्रवेशे निर्गमे शुभनाडी ज्ञानं प्रश्नज्ञानं च ।

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ॥
प्रश्नः श्वासान्तर्गमे चेज्जयः स्यान्निर्गमेऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—वामनाडी निर्गम (निकलने) में शुभ होती है, तथा दाक्षिण नाडी प्रवेश (अन्दर जानेमें) शुभ होती है । श्वासका भीतर जाते समय प्रश्न करे तो जय होय और श्वासका लिकलते समय प्रश्न करे तो पराजय होवे, यहाँ कोई यदि निर्गमसे यात्रा और प्रवेशसे गृहप्रवेशादि लेवे तो पूर्व ग्रन्थ असंगत होगा । अतः इसका यही मुख्य अर्थ है कि वामश्वासाके निकलते समय कार्यारम्भ करे तो शुभ होय और दाक्षिण श्वासाके भीतर जाते समय जो कार्यारम्भ करै तो शुभ होय । और श्वासके भीतर जाते समय प्रश्न करे तो जय तथा निकलते समय प्रश्न करे तो पराजय होवे ॥ १० ॥

अथान्यत्प्रश्नसिद्धिलक्षणम् ।

चन्द्रे समाक्षरे प्रश्ने सूर्ये तु विषमाक्षरे ।
पूर्णनाडीस्थितः प्रष्टा तत्सिद्धिं प्राप्यते ध्रुवम् ॥ ११ ॥

अर्थ—चन्द्रनाडी चलते समयं प्रश्नकर्त्ता यदि प्रश्न करनेमें सम अक्षर उच्चारण करे और सूर्यनाडी चलते समय विषम अक्षर प्रश्नमें उच्चारण करै तथा जो नांडी उस समय ज्योतिषीकी चलती हो उसी भागमें वैठकर प्रश्न करे तो अवश्य कार्यकी सिद्धि प्राप्त होवे ॥ ११ ॥

अथ सिद्धिलक्षणम् ।

विपरीताक्षरे प्रश्ने रिक्तायां प्रच्छको यदि ।
विपर्ययश्च विज्ञेयो विषवद्भ्युदयं प्रति ॥ १२ ॥

अर्थ-यदि अक्षर प्रश्नमें विपरीत होय अर्थात् चन्द्रनाडी चलते समय विषमाक्षर प्रश्न करे और सूर्यनाडी चलते समय समाक्षर प्रश्न करे तथा रिक्तभाग (जो श्वासा नहीं चलती होय उसी भाग) में बैठकर प्रश्न करे तो कार्यकी सिद्धि नहीं होगा ऐसा जानना चाहिये ऐसी स्थिति अभ्युदयके लिये विषवत् है ॥ १२ ॥

अथ तत्त्वे करणमाह ।

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तैजसे समकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले ॥ १३ ॥

अर्थ-इसी अध्यायके दूसरे श्लोकमें पाँचों तत्त्वोंके रहनेका समय कहा है । अब किस तत्त्वके समय क्या काम करना सो लिखते हैं-पृथिवी तत्त्वमें स्थिर कार्य (गृह वास्तु, वृक्षादिरोपण आदि, जल तत्त्वमें चर कर्म (यात्रादि) अग्नितत्त्वमें समकार्य वायुतत्त्वमें मारण और उच्चाटनका कार्य शुभ होता है ॥ १३ ॥

अथ तत्त्ववशाल्लाभालाभज्ञानम् ।

चिरलाभः क्षितौ ज्ञेयस्तत्क्षणात्तोयतत्त्वतः ।
हानिः स्याद्वह्निवाताभ्यां नभसा निष्फलं भवेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-अब तत्त्वके भेदसे लाभ हानि लिखते हैं, पृथ्वीतत्त्वमें कोई चीज खो जाय या कोई किसी कार्यके लिये प्रश्न करे तो उसका लाभ विलम्बसे होवे, जलतत्त्वमें उसी क्षणमें लाभ होवे, अग्नि और वायुतत्त्वमें हानि होवे, और आकाशतत्त्वमें निष्फल होवे ॥ १४ ॥

अथ तत्त्ववशान्मनश्चिन्ताज्ञानम् ।

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जैवी स्यात्तोयवायुना ।
तैजसा धातुचिन्ता स्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-अब मूकप्रश्नमें मनकी बात जाननेका ज्ञान लिखते हैं-पृथ्वीतत्त्वमें प्रश्न करे तो मूल चिन्ता समझनी, जलतत्त्व और वायुतत्त्वमें प्रश्न करे तो जीवसम्बन्धी चिन्ता समझनी, अग्नितत्त्वमें धातुचिन्ता और आकाशतत्त्वसे शून्य अर्थात प्रश्नकर्ताकी व्यग्रता समझनी चाहिये ॥ १५ ॥

अथ पृथ्वीतत्त्वस्वरूपम् ।

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यगं शुभम् ।
भोगदं पृथिवीतत्त्वं प्रवाहे षोडशाङ्गुलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पृथिवीतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं—पृथ्वीतत्त्वका वर्ण पीला, आकार चतुष्कोण, मधुर रसप्रिय मध्यमें रहनेवाला, शुभ, भोगको देनेवाला है और सोलह अङ्गुल इसका प्रवाह है अर्थात् जिस समय पृथ्वीतत्त्व रहता है उस समय श्वाससे निःसृत वायु सोलह अङ्गुलतक जाता है इसी प्रकार आगेभी समझना ॥ १६ ॥

अथ जलतत्त्वस्वरूपम् ।

श्वेतं च वर्तुलाकारं सुकषायमधोवहम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जलतत्त्व श्वेत वर्ण, गोलाकार, कषायरसप्रिय, नीचे बहनेवाला है और लाभको करता है तथा प्रवाह इसका बारह अङ्गुल होता है ॥ १७ ॥

अथाग्नितत्त्वस्वरूपम् ।

रक्तं त्रिकोणं तिक्तं स्यादूर्ध्वमार्गप्रवाहकम् ।
दुःखदं तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चाष्टकांगुलम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अग्नितत्त्व रक्तवर्ण, त्रिकोण आकार तिक्तरसका प्रिय ऊर्ध्वमार्गमें चलनेवाला है, और दुःखको देता है तथा प्रवाह इसका आठ अङ्गुल है ॥ १८ ॥

अथ वायुतत्त्वस्वरूपम् ।

नीलमर्धेन्दुसंकाशं कटुतिर्यक्प्रवाहकम् ।
हानिकृच्चानिलं तत्त्व प्रवाहे चतुरंगुलम् ॥ १९ ॥

अर्थ—वायुतत्त्व नील वर्ण, अर्धचन्द्रके सदृश आकार, कटुरसप्रिय, तिर्यक् (टेढे) मार्गमें चलनेवाला है, हानिको करता है और प्रवाह इसका चार अङ्गुल होता है ॥ १९ ॥

अथाऽऽकाशतत्त्वस्वरूपम् ।

भूरीवर्णं स्वादवाहमव्यक्तं संक्रमाश्रितम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशतत्त्व भूरा वर्ण, स्वाद और वहना अव्यक्त है, सन्धिमें स्थित रहता है, मोक्षको देता है, यह तत्त्व सभी कार्योंमें निष्फल है ॥ २० ॥

अथ प्रकारान्तरेण तत्त्वज्ञानम् ।

रोध्यं कर्णाक्षिनासास्यमङ्गुष्ठाद्यैश्च दृश्यते ।
तत्त्ववर्णं दर्पणेऽङ्कं नासाश्वासात्स्फुटायते ॥ २१ ॥

अर्थ–अब प्रकारान्तरसे तत्त्वज्ञान लिखते हैं–हाथके अङ्गुलियोंसे कान, नेत्र, आँख और मुखको बन्द कर देनेपर जो तत्त्व उस समय वर्तमान रहता है उसी तत्त्वका ऊपर लिखित वर्ण दर्पणमें चिह्नके तरह देखा जाता है और नाकके श्वाससे स्पष्ट विदित होता है ॥ २१ ॥

अथ मदनयुद्धे जयोपायः स्त्रीवशीकरणञ्च ।

स्त्रींदुवार्यांतया भोगोऽर्काग्निनाद्रावयेत्स्त्रियम् ।
चान्द्रं वशयतीनेन सुप्ताया योपिबेच्च ताम् ॥ २२ ॥

अर्थ–स्त्रीकी चन्द्रनाडीके अन्तर्गत जलतत्त्व रहते समय यदि पुरुष अपनी सूर्यनाडीके अन्तर्गत अग्नितत्त्वको देखकर स्त्रीसंग करे तो स्त्री शीघ्र द्रवित होती है अर्थात् स्त्रीरमणमें पुरुष जय पाता है तथा सोती हुई स्त्रीके चन्द्रप्रवाहको जो पुरुष अपने सूर्यप्रवाहसे पीवे उस पुरुषके वशमें वह स्त्री हो जाती है ॥ २२ ॥

अथ कालज्ञानम् ।

प्रातश्छायां गलदृक्खेऽच्छं पश्यस्त्वतनुं समाः ।
नान्तं स्वशेफे तरति जलेऽब्दार्द्धं श्रुतौ ध्वना ॥ २३ ॥

अर्थ–अब यहाँ काल (मृत्यु) ज्ञान छायासाधनादिद्वारा लिखते हैं–किसी शुभ समयसे आरम्भ करके एक वर्षपर्यन्त प्रातःकालमें अपनी छायाके गलामें दृष्टि करके कुछ समयतक देखे पीछे आकाशको देखे तो छायासिद्धि होती है पीछे उससे मरणकालज्ञान "शिवस्वरोदयमें" सविस्तर लिखा है। जिस मनुष्यका शिश्न इन्द्रिय जलमें तैरे और महाशब्द जो मनुष्य विना प्रयत्न सुनै वह मनुष्य छः मासमें निधन (मरण) पावे ॥ २३ ॥

पुनः कालज्ञान दीर्घायुकरणं च ।

आयुर्हीना न पश्यन्ति भ्रुवं नासाग्रकं ध्रुवम् ।
निशीनस्याह्नीन्दुचाराद्दीर्घायुः प्राणरोधनैः ॥ २४ ॥

अर्थ–जिनकी मृत्यु नजदीक आ जाती है वे अपने भौंह तथा नासा (नाक) का अग्र भाग और ध्रुवताराको नहीं देखते हैं अर्थात् मनुष्यको चाहिये कि हरेक

रोज या सौम्यायन याम्यायन सरीखे पुण्य दिनमें स्थिर चित्तसे भ्रूनाकका अग्र-भाग और ध्रुवको देखे जवतक ये सब देखे जाय तवतक कोई चिन्ता नहीं, जिस रोजसे नहीं देखे जायँ उस दिनसे छः महीनेके भीतर अपनी मृत्यु समझे और तीर्थवास, दान, पुण्यादिमें मन दे । अब आयु बढानेका उपाय यह है कि, रातमें सूर्यनाडी चलावै और दिनमें चन्द्रनाडी चलावै तो दीर्घायु होय, अथवा प्राणायाम करनेसे दीर्घायु होती है । इसमें दिनमें सूर्यनाड़ी चलना और रातमें सूर्यनाडी चलानेसे आयु बढती है यह वात वहुतसे स्वरग्रन्थोंमें लिखी है परन्तु किस प्रकार अपनी इच्छासे मनुष्य ऐसा कर सकता है सो नहीं लिखा है अतः मैं उसको सकल साधारणके समझमें आ जानेके लिये इसके अभ्यासकी युक्ति लिख देताहूं सभी इसका अनुभव कर सकता है। प्रथमतो इसी पुस्तकमें इसी अध्यायके प्रथम श्लोकमें लिख आये हैं कि, सूर्य और चन्द्रनाडीकी स्थिति पाँच पाँच घटी रहती है परन्तु इसके भीतरमेंभी मनुष्य वदल सकता है उस वदलनेका उपाय यह है कि, सूर्य (दहिनाश्वासा) चलाना हो तो बायें तरफकी कुक्षि (पशली) को दवाकर और वामा श्वासाकोभी हाथसे रोककर चार पाँच मिनट सो जाय और दहिनाही श्वास लेता रहै इतनेहीमें श्वास वदल जायगा इसी प्रकार सूर्यनाडी चलते समय यदि चन्द्रनाडी चलानी हो तो दहिने तरफकी कुक्षिको दावकर दाहिनी श्वासाकोभी हाथसे रोक दे वामश्वासासे वायु ग्रहण करै और उतारे तो थोडेही देरमें नाडी पलट जाती है । श्वासा पटलनेके वास्तेही प्रायः गोरखपन्थीभी एक डण्डा लगा हुआ लकडेका पीढासी रखते हैं उससे वहुत जल्दी श्वासा वदलती है, अनुभव कर देखें ॥ २४ ॥

अथास्य प्रशंसा ।

इति स्वरोदितं ज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ।
शिवस्य वचनं सत्यं सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥ २५ ॥

इति श्रीकृष्णविलासात्मजदीनानाथविरचिते सर्वसंग्रहे मखे २५
देहस्वराध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

अर्थ—शिवसे कहा हुआ जो स्वरशास्त्र प्रतिपादित ज्ञान है, वह पवित्र और पापके नाश करनेवाला है, तथा शीघ्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है, यह शिवका वचन सत्य है ॥ २५ ॥

इति श्रीमिथिलादेशान्तर्गतकनिगामग्रामवास्तव्यश्रीवबुयेशर्मात्मजज्योतिर्विद्भूषणश्रीवच्चूशर्मकृतसर्वसंग्रहभाषाटीकायां स्वराध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

अथ कालस्वराध्यायः ३.

तत्राष्टनामजमध्ये बलीवर्णस्वरज्ञानम् ।

पञ्चाचः पञ्चपञ्चार्णाः क्रमेण ङञणोज्झिताः ।
गण्या नामादिमो वर्णो यस्मिन्सोर्णस्वरोऽग्रणीः ॥ १ ॥

अर्थ–अब काल स्वाराध्याय लिखते हैं, तहां आठ प्रकारके जो नामस्वर हैं उनमें सबसे प्रबल जो वर्णस्वर है उसको लिखते हैं–पांच अच् (अ–इ–उ–ए–ओ) को लिखकर उसके नीचे क्रमसे ङ, ञ, ण इन तीन वर्णोंको छोडकर ककारादिसे पाँच पाँच अक्षर गिनकर लिखै जिस मनुष्य या वस्तुका नामाद्यक्षर जिस स्वरमें पडे वही स्वर उस मनुष्य या वस्तुका सर्वश्रेष्ठ वर्णस्वर समझना चाहिये इन पाँचों स्वरोंका नाम क्रमसे बाल १, कुमार २, युवा ३, वृद्ध, ४ मृत्यु ५ ये हैं ॥ १ ॥

अथ नामादौ ङञणवर्णे स्वरे च विशेषः ।

न प्रोक्ता ङञणा वर्णाश्चेद्ग्राह्या गजडाः क्रमात् ।
स्वरो नामादिमश्चेत्त्वर्णस्वरत्वात्पराक्षरम् ॥ २ ॥

अर्थ–पूर्वश्लोकमें ङ, ञ, ण इन तीन अक्षरोंको छोडकर गणना कही है • इस लिये इन तीन अक्षरोंका स्वर नहीं कहा है परन्तु यदि किसी मनुष्य या वस्तुओंके नामाद्यक्षर इन्हीं तीनों अक्षरोंमेंसे कोई अक्षर हो तो क्रमसे ग ज डके जो स्वर हैं वे ही समझने अर्थात् गका जो उकार स्वर है वही ङका समझना, और जका जो ईकार स्वर है वही ञका समझना तथा डका जो अकार स्वर है वही णकारका स्वर जानना और नामके आदिमें यदि स्वर वर्णही यथा अनन्त आदिमें होय तो वर्णस्वर ग्रहण करनेके लिये उसके आगेको जो अक्षर है सो ही ग्रहण करना चाहियें यथा अन्तमें अकारके आगे नकारका स्वर इकार लिया जायगा ॥ २ ॥

अथ वर्णस्वरावस्थाज्ञानोदाहरणे ।

दीनानाथस्यात्र यथा ओकारोर्णस्वरो भवेत् ।
तस्य पूर्णा तिथिर्बालः कृष्णपक्षः कुमारकः ॥
युवेषोऽब्दजयो वृद्धः क्रोध्यन्तश्चेतुसंज्ञके ॥ ३ ॥

अर्थ–उदाहरणके लिये यहाँ आचार्य अपनेही नाम रखते हैं । जिस प्रकारसे "दीनानाथ" का वर्णस्वर ओकार है कारण कि प्रथम श्लोकके वर्णस्वर-चक्रमें दकार ओकार स्वरके नीचे है इसलिये "दीनानाथ" में आदिमें दकार होनेसे ओकार स्वर भया, इनकी पूर्णा तिथि वाल है जिस लिये ओकार स्वरमें ही पूर्णा तिथि है, और कृष्ण पक्षका अकार स्वर है यह अकार स्वर ओकार स्वरसे द्वितीय है इसलिये कुमारसंज्ञक भया । तथा आश्विनमास अधोलिखित चक्रमें इकार स्वरमें होनेसे, इकार स्वर ओकारसे तृतीय है इसलिये आश्विन मास युवा संज्ञक भया । और जयनामका संवत्सर उकार स्वरमें होनेसे वृद्ध भया ॥ ३ ॥

अथावस्थावलम् ।

शुभो बालस्योत्तरार्द्धः पूर्वार्धो गर्हितस्तथा ।
कुमारप्रौढौ वृध्येष्टौ तथा वृद्धमृतौ खिलौ ॥ ४ ॥

अर्थ–अवस्थावल लिखते हैं--बाल अवस्थाका उत्तरार्द्ध शुभ होता है और पूर्वार्द्ध अशुभ होता है। कुमार और प्रौढ अवस्था वर्धिष्णु होनेसे शुभ हैं, इसी प्रकारसे वृद्ध और मृतावस्था अशुभ हैं ॥ ४ ॥

अथ दिनचर्याफलम् ।

स्वरपत्रादिष्टकाले कालजाद्यौ च सान्तराः ।
चिन्त्याः शुभादिके श्रेष्ठा दीनानाथवचो यथा ॥ ५ ॥

इति श्रीकृष्णविलासात्मजदीनानाथविरचिते सर्वसंग्रहे श्लो: ५
कालस्वराध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अर्थ–इष्टकालमें अर्थात् जिस दिनका शुभाशुभ फल जानना हो उस दिनका स्वरोंके जो आठ चक्र हैं उसका विचार करके शुभ अधिक हो तो उस दिनको श्रेष्ठ जाने और आरिष्ट अधिक हो तो अशुभ यह दीनानाथका वचन सत्य है ॥ ५ ॥

इति श्रीमिथिलादेशान्तर्गतगनिगामग्रामवास्तव्यश्रीविबुधेशशर्मात्मजज्योतिर्विद्भूषण श्रीवच्चूशर्मकृतसर्वसंग्रहभाषाटीकायां कालस्वराध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अथ रमलाध्यायः ४.

तत्र पाशकासिद्ध्यर्थं मनुः।

ॐ नमो भगवति देवि कूष्माण्डिनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि एह्येहि त्वर त्वर वरदे हिलि हिलि मातङ्गिनि सत्यं ब्रूहि ब्रूहि स्वाहा ५६ ॥ १ ॥

अर्थ–अब रमलका प्रकरण लिखते हैं–तहाँ पहले पाशा सिद्धिके लिये छप्पन ५६ अक्षरका मन्त्र ऊपर लिखित समझना ॥ १ ॥

अथ जपसंख्यापाशकप्रक्षेपणविधिः।

प्राग्जपित्वा सपादलक्षं सिद्ध्यै देवं गुरुं स्मरन्।
सप्ताभिमन्त्रितं पाशे लह्यानं पट्टिकां क्षिपेत् ॥ २ ॥

अर्थ–उपरोक्त मन्त्रकी सिद्धिके लिये पहिले सवालाख १२५००० जप करे पीछे जब कोई प्रश्न पूछे तब उस समय देवता और गुरुका स्मरण करता हुआ सात वार उपरोक्त मन्त्रसे पाशाको अभिमन्त्रित करके लह्यान शकल जिससे बने वैसा हाथमें पाशा रखकर पाटीके ऊपर फेंके ॥ २ ॥

अथ प्रश्ननिषेधकालः।

नो शुक्रभौमार्किदिने तारिखे गे लिके कफे।
भारे मरे मे दुष्टेह्नचहर्निशोः परमध्ययोः ॥ ३ ॥

अर्थ–अब प्रश्नका निषेधकाल लिखते हैं–शुक्र, मङ्गल और शनिदिनमें, तीसरा ३, तेरहवाँ १३, इक्कीसवाँ २१, चौबीसवाँ २४, पचीसवाँ २५ और पाँचवां इन मुसलमानी तारीखोंमें अर्थात् जिस दिन चन्द्रोदय हो उस दिनसे पूर्वोक्त संख्यक दिनोंमें, दुष्ट दिन अर्थात ग्रहण उत्पातादि दूषित दिनोंमें तथा दिन और रात्रिके पर तथा मध्य भागमें प्रश्न नहीं करना चाहिये। यहाँ रमलनवरत्नमें इस निषेध कालकोही उत्तममें गिना है परन्तु रमलरहस्य आदि ग्रन्थोंमेंभी निन्द्यही माना है इसलिये सुज्ञ विचार लें ॥ ३ ॥

अथ शकुनक्रमे शकलनामस्वरूपाणि भाषायाम्।

१ लह्यान् 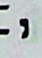, २ कब्जुलदाखिल , ३ कब्जुल खारिज् , ४ जमात् , ५ फरहा ,

६ उक्ला ÷ ; ७ अंकीश ≑ , ८ हुमरा ⩦ ; ९ बयाज ⩧ ; १० नस्रतुलखारिज् ⩦ , ११ नस्रतुल्दाखिल ≑ ; १२ अतबे खारिज् ⩦ ; १३ नकी ÷ , १४ अतबेदाखिल ⩧ , १५ इजतमा ⩧ , १६ तरीख ⁝ ॥

अर्थ–ऊपर लिखित सोलह शकलें पाशा फेंकनेसे बनते हैं इनके बनानेका प्रकार अगले श्लोकमें स्पष्ट विदित होंगे ॥

अथ प्रस्तारकरणम् ।

पूर्णस्य पूर्णं चाजात्योः खयो रेखा च रेखयोः ।
पाशकोत्थाश्च चत्वारस्तेभ्यस्तिर्यक्क्रमैः कृताः ॥
द्वयोर्द्वयो स्याच्चैकैका समाद्याभ्याञ्च षोडश ॥ ४ ॥

अर्थ–अब प्रस्तार करनेकी रीति लिखते हैं– तहां प्रथम पाशा करनेकी विधि ग्रन्थान्तरोंमें इस प्रकार लिखी है कि, सायन मेषसंक्रान्तिके दिन अष्टधातुका चतुरस्र (चौपहल) आठ टुकडे मनोहर बनावे उन प्रत्येक (आठों) टुकडोंके ऊपरके भागमें चार चार बिन्दु ⸬ इस तरह बनावे तथा प्रत्येकके दोनों पार्श्व (बगलों) में तीन तीन बिन्दु ∴ से चिह्नित करे और प्रत्येकके नीचेके भागमें दो दो बिन्दु : इस तरह चिह्नित करे पीछे लोहेकी दो शलाकायें बनाके दोनों शलाकोंमें चार चार टुकडे इस तरहसे पिरोवे कि जिससे निकलें नहीं और चालित करनेपर चारों तरफ उलटते रहें अर्थात् ढीले रहें इस तरह दो पाशा बनाकर रक्खे और पूर्वोक्त मन्त्रका सपाद लक्ष १२५००० पुरश्चरणके बाद उसी मन्त्रसे सात वार पाशोंको अभिमन्त्रितकर ध्यान 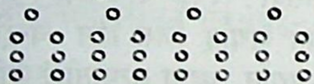 शकल पाशोंमें सिद्ध करके पाटीपर फेंके । फेंकनेके बाद जैसा पाशा पडे उसका विचार इस प्रकार है कि पाशामें जहाँ एक शून्य हो उससे शून्यही समझना और भिन्न पंक्तिके साथ दो शून्योंसे एक रेखा समझना । इस प्रकार दाहिने तरफके पाशासे आरम्भकर ऊपर नीचेके क्रमसे चार शकल होते हैं, फिर इसी प्रकार इन्हीं चार शकलोंसे तिर्यक् (तिरछे) क्रमसे चार शकल बनते हैं, इस प्रकार आठ शकल सिद्ध होते हैं । इस तरह पाशास्थ बिन्दुओंसे आठ शकल सिद्ध करके पीछे इन्हीं आठों शकलोंसे और चार शकल बनेंगे जैसे कि प्रथम शकल और द्वितीय शकलसे नवम, तृतीय चतुर्थसे

दशम पञ्चम षष्ठसे एकादश, और सप्तम अष्टमसे बारहवां शकल होता है फिर इन चारों शकलोंसे दो शकल अर्थात् नवम दशमसे तेरहवाँ, ग्यारहवें बारहवेंसे चौदहवाँ शकल सिद्ध होता है फिर इन दोनों शकलोंसे अर्थात् तेरहवें और चौदहवेंसे पन्द्रहवाँ शकल सिद्ध होता है तथा पन्द्रहवें और पहिले शकलसे सोलहवाँ शकल सिद्ध होता है। इन्हीं सोलह शकलोंसे रमलग्रन्थोंमें सभी काम किये जाते हैं। अब ऊपर आठ शकलोंके सिद्ध होनेका उपाय केवल पाशाके बिन्दुसे कह आये हैं अब दो दो शकलोंसे एक एक शकल निकालनेका उपाय यह है कि भिन्न जातीय दो शून्योंकी एक रेखा होती है, तथा दो रेखोंके भी एक रेखा होती है और शून्य रेखासे एक शून्य होता है ऐसा करनेसे पूर्व लिखितानुसार सोलहों शकल सिद्ध होते हैं। स्पष्टताके लिये उदाहरणभी देते हैं॥

उदाहरण-जैसा कि पाशा इस प्रकार पडा अब दहिने तरफसे ऊपर नीचेके क्रमसे पूर्व लिखितानुसार प्रथम कोष्ठसे तीन रेखा एक बिन्दु अंकीशकी शकल पहिली हुई, दूसरे कोष्ठसे उक्ला, दूसरी तीसरेसे लह्यान, चौथे

४	•३	२	१
०	•०	०	००
०	००	००	००
०	००	००	००
०	००	०	०

कोष्ठसे तरीफ ये चार शकलें हुई। अब पूर्व लिखित कोष्ठकहीमें तिरछे क्रम करके दाहिने तरफसे ऊपरके पंक्ति लेनेसे या जो चार शकलें सिद्ध हुई हैं तिनसे तिरछे दाहिने तरफसे एक रेखा तीन विंदु अतबे दाखिलका स्वरूप पञ्चम भया, दूसरे पंक्तिसे अङ्कीश छठा भया, फिर तीसरे पंक्तिसेभी अङ्कीशकी शकल सातवीं हुई और नीचेकी चौथी पंक्तिसे फरहाकी शकल आठवीं हुई। अब पहिली शकल अङ्कीश और दूसरी उक्ला को मिलानेसे लह्यान नवम हुई फिर तीसरी और चौथी को मिलानेसे अतबेदाखिल् दशम हुई, पाँचवीं और छठी को मिलानेसे इजतमाकी शकल ग्यारहवीं हुई, सातवीं और आठवीं को मिलानेसे अतबे खारिज़् बारहवीं शकल हुई, फिर नवमीं और दशवीं को मिलानेसे तरीख नामवाली तेरहवीं शकल हुई, ग्यारहवीं और बारहवीं को मिलानेसे कब्जुल् खारिज़् चौदहवीं शकल हुई अब तेरहवीं और चौदहवीं को मिलानेसे कब्जुल् दाखिल

पन्द्रहवीं शकल हुई । अब पन्द्रहवीं ⁝ और पहिली ≡ को मिलानेसे ≟ हुमरा नामकी सोलहवीं शकल हुई । इसी प्रकारसे प्रश्नके समय सोलहों शकल रमलज्ञोंको निकालना चाहिये । उदाहरणका प्रस्तार चक्रमेंभी स्पष्ट है ॥ ४ ॥

उदाहरण सिद्ध सोलह शकलोंके नाम और स्वरूप ।

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
नाम	अंकीश	उक्ला	लह्यान	तरीख	अतबेदाखिल	अंकीश	अंकीश	फरहा
स्वरूप	— — — ।	० — — ०	० — — —	० ० ० ०	— ० ० ०	— — — ०	— — — ।	० ० — ०
संख्या	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
नाम	लह्यान	अतबे-दाखिल	इजतमा	अतबे खारिज	तरीख	कब्जुल खारिज	कब्जुल दाखिल	हुमरा
स्वरूप	। — — —	— ० ० ०	— ० ० —	० ० — —	० ० ० ०	० — ० —	— ० — ०	— ० — —

अथ पाशासंभवे प्रस्तारकरणविधिः ।

पाशकासंभवे श्वासावृत्ते रेखाश्च कारयेत् ।
रेखाङ्कतुल्यमाद्यर्धं ततः सप्तमसप्तमः ॥
एवं चतुर्भ्यः खण्डेभ्यः प्रस्तारः पूर्ववत्स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ—रमलग्रन्थोंमें पाशासेही समस्त विचार किये जाते हैं-परन्तु यदि पाशा उपस्थित न हो तो किस प्रकार शकल निकालनी उसको कहते हैं कि, पाशा नहीं हो तो जिस समय कोई प्रश्न पूछे उस समय श्वासको रोककर एक वृत्त बनावे और जबतक श्वासा रुका रहै तबतक उस वृत्तके ऊपर रेखा करता जाय, श्वास निकलने पर रेखा करना छोड देय, पीछे वृत्तपरके रेखाको गिनै जितनी संख्या हो उसके तुल्य लह्यानसे गिनकर प्रथम शकल ग्रहण करे यदि वृत्तपर दी हुई रेखा सोलहसे अधिक हो तो सोलहसे भाग देकर जो शेष बचे उतनी संख्यावाली शकल पहिली समझै पीछे इस पहिली शकलसे सातवीं शकलको दूसरी शकल समझै फिर दूसरीसे सातवींको तीसरी समझै और इस तीसरी शकलसे सातवींको चौथी समझै इस प्रकार चार शकल बनाकर पीछे पूर्ववत् सोलहों शकल निकाल ले इस प्रकार विना पाशासेभी प्रस्तार बनते हैं ॥ ६ ॥

अथ इन्किलावकरणं कार्यपरत्वेन तन्निषेधश्च।

प्रस्तारादिन्किलावं स्यात्कमे खाचे गसे घजे।
युतौ स्युश्चतुरङ्गानि प्राग्वत्प्रस्तारकस्ततः।
नेन्किलाबोऽवधौ मूके मुष्ट्यां वर्षे च तस्करे॥ ७॥

अर्थ–अब इन्किलाव करना और कार्यपरत्वसे उसका निषेध लिखते हैं–पूर्वोक्त प्रकारसे साधित जो प्रस्तार (शकल) हैं उनसे इन्किलाव लानेकी विधि यह है कि प्रथम शकल और पञ्चम शकलका पूर्ववत् योग करनेसे प्रथम शकल होती है फिर दूसरी शकल और छठी शकलको मिलानेसे दूसरी शकल होती है, तथा तीसरी और सातवीं शकलको मिलानेसे तीसरी शकल होती है और चौथी तथा आठवीं शकलको मिलानेसे चौथी शकल होती है। अब इन्हीं चारों शकलोंसे पूर्ववत् सोलहों शकल निकालनी चाहिये। यह इन्किलाव क्रिया अवधिप्रश्न, मूकप्रश्न, मुष्टिप्रश्न, वर्षा होने न होनेके प्रश्न और चोरीके प्रश्नमें नहीं करनी चाहिये, इन्किलावमें यह बात विशेष है कि, पन्द्रहवीं शकल जमातही ☰ होती है॥ ७॥

अथ बलाबलार्थं शत्रुमित्रत्वम्।

आद्यगृहात्तथा खण्डेऽग्निवाय्वंबुभुवः क्रमात्।
याग्न्योः कुजलयोर्मैत्री स्वे मित्रे खण्डको बली॥ ८॥

अर्थ–अब बलाबल जाननेके लिये शत्रुमित्रत्व लिखते हैं–प्रथम शकलसे लेकर सोलहवें शकलपर्यन्त क्रमसे अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी ऐसा वारवार गणना करनी चाहिये। इस प्रकार सोलहों शकलकी अग्नि आदि संज्ञा करके वायु और अग्निको तथा जल और पृथ्वीकी आपसमें मित्रता तथा अग्नि जल और वायु पृथ्वीकी आपसमें शत्रुता अग्नि पृथ्वी और वायु जलकी आपसमें समता समझनी। अपने स्थानमें और मित्रके स्थानमें शकल बली होती है॥ ८॥

अथ भावे विचारणीयम्।

के देहरूपवर्णादीन् खे स्वं रत्नं कुटुम्बकम्।
गे भ्रातृभृत्यशौर्यादि घेऽबेष्टांब्वश्वशं गृहम्॥ ९॥
ङे पुत्रमनुधीविद्याश्चेऽरिचौरार्त्तिमातुलम्।
छेऽध्वस्त्रीवादवाणिज्यं जे तनौ दुर्गनष्टकम्॥ १०॥
झे यात्रेज्यतपोभाग्यं ञ्ये वृष्टी नपदपितॄन्।

टचे महाश्वभलाभादीन् फ्ये हानिव्ययबन्धनम् ॥ ११ ॥
वार्त्ताचिन्तनकं लाटे सत्यालीकं तथा वटे ।
सदसत्साक्षिकं माटे परिमाणं वदेत्तटे ॥ १२ ॥

अर्थ–१ प्रथम शकलसे शरीरका रूप और वर्ण (गौर, रक्त) आदि विचारना चाहिये । २ दूसरी शकलसे धन, रत्न और कुटुम्बका, ३ तीसरीसे भाई, नौकर और पराक्रम आदिका ४ चौथीसे माता, मित्र, जल, घोडा, सुख, घरका, ५ पाँचवींसे पुत्र, मन्त्र बुद्धि और विद्याका ६ छठीसे शत्रु, चोर, रोग और मामाका ७ सातवींसे मार्ग, स्त्री, वादविवाद, वाणिज्यका, ८ आठवींसे मृत्यु और दुर्गनष्टादि, ९ नववींसे यात्रा, यजन, तप और भाग्यका, १० दशवींसे वर्षा, कर्म और पिताका ११ ग्यारहवींसे महान् घोडा, हाथी और लाभ आदिका १२ बारहवींसे हानि, व्यय (खर्च) और बन्धनका १३ तेरहवींसे वार्त्ता चिन्तनका १४ चौदहवींसे सत्य और झूठाका १५ पन्द्रहवींसे सत्य साक्षी और असत्य साक्षीका, तथा १६ सोलहवीं शकलसे परिणाम (किसी कार्यकी समाप्ति) का विचार करना चाहिये ॥९–१२॥

अथ तसीरकरणम् ।

केनागत्य कृतः प्रश्नो मत्पुत्रस्याबलागमः ।
लाभाख्यं प्रश्नखण्डं स्यात्तत्पुत्रात्स्त्रीगृहं यतः ॥ १३ ॥

अर्थ–संबन्धानुसार प्रश्नसम्बन्धी वस्तुका स्थान जाननेको तसीर कहते हैं । जैसा कि किसी मनुष्यने आकर प्रश्न किया कि मेरे पुत्रको स्त्री लाभ कब होगा ? ऐसे प्रश्नमें प्रथम शकल तो पूछनेवालेकी होती है, उससे पाँचवीं उसके पुत्रकी फिर पाँचवींसे सातवीं पुत्रकी स्त्रीकी होती है उससे लाभस्थान विचारना चाहिये इसीको तसीर कहते हैं ऐसाही सर्वत्र समझना ॥ १३ ॥

अथ मरातिबमुपकरणम् ।

चतुरष्टकबिन्द्वोश्च वैरं वादं शरागयोः ।
प्रस्तारार्धं कार्यहत्स्याच्छकुनक्रमवैरगम् ॥ १४ ॥

अर्थ–चार बिन्दु ⁞ अर्थात् तरीख शकल और आठ बिंदु अर्थात् चार रेखा ☰ की जमातशकलको आपसमें वैर है । तथा पाँच शून्यकी शकल और सात शून्यकी शंकलको आपसमें शत्रुता होती है इसलिये इन शकलोंसे कार्यका नाश कहना चाहिये । पाँच शून्यकी शकले ⁝ फरहा१, ⁝ अतबे खारिज् २, ⁝ नकी ३ ⁝ अतबे दाखिल् ये चार है और सात शून्यकी शकलें ☰ लह्यान १, ☰ अंकीश २, ☰ हुमरा ३, ☰ बयाज ४ ये चार हैं क्योंकि दो बिन्दुओंकीही एक रेखा होती है॥ १४॥

अथ इमतिजाज तकरार दृष्टिज्ञानम् ।

शुभं शुभाभ्यां जातं च मिश्रनार्द्धं यहद्वे पुनः ।
वैरिवादाशुभे नेष्टं दृगार्कं सप्तगे शुभात् ॥ १५ ॥

अर्थ–दो शुभ शकलोंसे उत्पन्न जो शकल हो उससे शुभ जानना, तथा दो अशुभ शकलोंसे उत्पन्न शकलसे अशुभ जानना, फिर शुभ अशुभसे उत्पन्न शकलद्वारा मिश्र अर्थात् आदिमें शुभ पश्चात् अशुभ और अशुभ शुभसे आदिमें अशुभ पीछे शुभ इसी विचारको इमतिजात कहते हैं, तथा एकही शकल दो वार या तीन वार आजाय तो उसको तकरार कहते हैं यह वैरी, वाद और अशुभ कार्यमें नेष्ट है। अब रमलमें दृष्टिविचार ऐसा है कि वारहवें शकलतक अपनी२ शकलसे सप्तम शकल पर पूर्ण दृष्टि होती है वारहसे ऊपर चार शकलोंमें दृष्टिका विचार नहीं है ॥ १५ ॥

अथ खण्डानामागमनिर्गमचरस्थिराद्विस्वभावसंज्ञा ।

रेखाखमागमं मिश्रं रेखारेखं स्थिरागमम् ।
चरं गमं खखं पार्श्वं खरेखं निर्गमं युतम् ॥ १६ ॥

अर्थ–जिन शकलोंमें ऊपरमें रेखा और नीचेमें शून्य अवश्य करके आते हैं अर्थात् कब्जुलदाखिल, अंकीश, नस्रतुल दाखिल् अतवे दाखिल् यह चारों शकलें द्विस्वभाव और आगम संज्ञक है, ग्रन्थांतरमें इन्हीको दाखिल कहते हैं। और जिन शकलोंमें ऊपर और नीचेभी रेखा होते हैं अर्थात् जमात, हुमरा, वयाज, इतजमा ये चार शकलें स्थिर और आगमसंज्ञक हैं ग्रन्थान्तरमें इन्हींको सावित कहते हैं। जिन शकलोंमें ऊपर और नीचेभी शून्य होते हैं अर्थात् फरहा, उक्का, नकी, तरीख ये चारों शकलें चर और गम संज्ञक है ग्रन्थान्तरमें इन्हीको मुन्कलीब कहते हैं। जिन शकलोंमें ऊपर शून्य और नीचे रेखा होते हैं अर्थात् लह्यान, कब्जुलखारिज्, नल्सतुलखारिज्, अतबेखारिज् ये चार शकलें द्विस्वभाव और निर्गमसंज्ञक हैं इनको अन्य ग्रन्थोंमें खारिज कहते हैं इस प्रकार आठ द्विस्वभाव और चार स्थिर, चार चर शकलें हैं ॥ १६ ॥

अथ प्रस्तारात्प्रश्नविधिः ।

कार्येन्द्रतिथिखण्डानि ह्यागमेथागमानि चेत् ।
गमे गमानीष्टदानि भिन्नयोगात्स्थिरे त्वगाः ॥ १७ ॥

अर्थ–पूर्व श्लोकमें जो आगम निर्गम संज्ञा रक्खे हैं उसके द्वारा प्रश्न विधि लिखते हैं–कि कार्यशकल, चौदहवीं शकल और पन्द्रहवीं शकल ये तीनों यदि आगम

संज्ञक हों तो आगम सम्बन्धी कार्यमें शुभ अर्थात् प्रश्नसम्बंधी कार्यसिद्धि होती है और यदि पूर्वोक्त खण्ड निर्गम संज्ञक हो तो निर्गममें शुभ होता है । स्थिरमें भिन्न योगसे आगम होता है ॥ १७ ॥

अथेन्किलाबात्प्रश्नकरणम् ।

अथेन्किलाबात्प्रश्नेम्ये याम्यां जातं जमात्तकम् ।
तयोर्भेदैर्निर्गमाद्यैः स्वस्वकार्यं वदेत्सुधीः ॥ १८ ॥

अर्थ–पूर्व इन्किलाब बनानेका प्रकार लिख आये हैं उस इन्किलाबमें पंद्रहवें खण्डमें जमातसंज्ञक शकल जिन दो शकलोंसे भया है अर्थात् इन्किलाबके तेरहवें और चौदहवें शकलसे निर्गम; आगम और चरादि भेदों करके जो जो कार्य होय सो सब पण्डित कहें ॥ १८ ॥

अथ पृच्छकागमसंख्याज्ञानं पूर्णपाणिज्ञानञ्च ।

प्रस्तारे स्वगृहं बिज्दे तावन्तः पृच्छकागमाः ॥
प्रस्तारे पूर्णपाणिश्चेत्कलपक्यभ्योद्भवं पुनः ॥ १९ ॥

अर्थ–अब रमलज्ञोंकी कर्त्तव्यता लिखते हैं– रमलज्ञोंको चाहिये कि, प्रातः काल अपने नित्यकर्मसे निवृत्त हो पीछे स्वस्थ चित्तसे यह निश्चय करें कि आज मेरे पास कितने प्रश्न करनेवाले आवेंगे या नहीं आवेंगे और यदि आवेंगे तो द्रव्यादि लेकर आवेंगे या खाली हाथसे आवेंगे इसका प्रकार यह है कि पूर्ववत् पाशा फेंककर सोलहों प्रस्तार करके एक जगह क्रमसे लिख रक्खे फिर बिज्दक्रमसे प्रस्तार लिखे दोनों प्रस्तारोंमें जिन २ खण्डोंमें तुल्य (एक) शकल हों उन सबको गिने जितनी तुल्य संख्या हों उतनी ही पृच्छकागमकी संख्या कहनी । यदि कोईभी शकल तुल्य खण्डोंपर आपसमें नहीं मिले तो कोई भी प्रश्नकर्त्ता नहीं आवेगा ऐसा समझे बिज्दहप्रस्तार उसको कहते हैं कि १ फर्हा , २ लह्यान , ३ अतबेदाखिल , ४वयाज ,५ तरीख ,६ कब्जुलखारिज् ,७ हुमरा ,८अङ्कीश ,९नस्रतुल खारिज् ,१० उक्ला ,११इजतमा ,१२नस्रतुलदाखिल ,१३ अतबे खारिज् , १४नकी १५कब्जुल् दाखिल् १६जमात इस प्रकार क्रमपूर्वक लेखनको बिज्द या बिज्दह कहते हैं । उदाहरणके लिये इसी रमलाध्यायके चौथे श्लोकके उदाहरणमें जो प्रस्तार निकाला है वैसाही प्रस्तार यदि आवे तो पूर्वलिखितानुसार बिंज्द प्रस्तारमें ग्यारहवीं और पन्द्रहवीं शकल जो है सो उदाहरणसम्बन्धी प्रस्तारमेंभी ग्यारहवीं और पन्द्रहवींमें है इस लिये बिज्दमें दो शकलका परस्परमें मिलान होनेसे

दो प्रश्न करनेवाले आवेंगे ऐसा समझना चाहिये । अब द्रव्य लेकर आवेगा या खाली हाथसे ! इसके लिये यह विचार है कि पहिली १, तेरहवीं १३, ग्यारहवीं ११ और चौदहवीं १४ इन चारों शकलोंसे एक शकल निकाले अर्थात् पहिले पहिली और तेरहवींसे एक शकल निकाले फिर ग्यारहवीं और चौदहवींसे एक निकाले अब इन दोनों शकलोंसे एक निकाले अब यह शकल प्रस्तारमें हो तो द्रव्य लेकर आवेगा नहीं हो तो खाली हाथसे आवेगा ऐसा समझना ॥ १९ ॥

अथ जंबीरकरणम् ।

मूके लह्या कमग्योत्थं जमातघजभ्योद्भवम् ।
छक्यम्याकीशजं स्थाप्यं न्यभ्यच्या नुस्रखारिजम् ॥ २० ॥
अभिप्रायः कारणं च भेदः सिद्धिश्च शाकुने ।
उत्पन्नशकलस्थानान्मूके सिद्धिः शुभाश्रयात् ॥ २१ ॥

अर्थ–जंबीर (जमीर) करण उस क्रियाको कहते हैं कि जिस क्रियाद्वारा मूकप्रश्नमें पहिला मनकी बात, दूसरा उस प्रश्नका कारण, तीसरा उसका भेद और चौथा कार्यके सिद्धासिद्ध ये चारों जाने जायँ। अब इन चारों विषयके जाननेका प्रकार यह कि लह्यान शकल और प्रश्नसमयमें जो प्रस्तार निकलें उनमेंसे पहिली, पाँचवीं तथा तेरहवीं इन चारों शकलोंसे एक शकल निकाल ले अर्थात् लह्यान् ☰ और तेरहवीं शकलसे एक निकालकर फिर पहिली और पाँचवींसे दूसरी निकाले, अब इन निकाले हुए दोनों शकलोंसे एक शकल करले इस शकलसे मनकी बात जाने इसी प्रकार जमातशकल ☰ और आगतप्रस्तारसे चौथी, आठवीं, चौदहवीं इन चारों शकलोंसे एक शकल निकाले अर्थात् जमात और चौदहवीं शकलसे एक और चौथी आठवीं शकलसे एक निकालर फिर इन दोनोंसे एक करले इस, शकलसे प्रश्नका कारण बतावे । फिर सातवीं, ग्यारहवीं, पन्द्रहवीं और अङ्कीश ☰ इन चारों शकलोंसे एक शकल करले अर्थात् सातवीं, ग्यारहवींसे एक करके, पन्द्रहवीं और अंकीशसे एक करै फिर इन दोनोंसे एक करके इससे प्रश्नका भेद कहे। इसी प्रकार दशवीं, चौदहवीं सोलहवीं और नुस्रखारिज् इन चारों शकलोंसे एक निकाले अर्थात् दशवीं और चौदहवींसे एक तथा सोलहवीं और नुस्रखारिज़से एक फिर इन दोनोंसे एक निकालकर प्रश्नकी सिद्ध्यसिद्धि कहै । इस प्रकार चारों शकलोंसे मूकप्रश्नमें पूर्वोक्त चारों विषय कहना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार इसी अध्यायके आठवें श्लोकमें जो शकलोंके अग्नि आदि तत्त्व कहे हैं उसी प्रकारके वस्तु मूकमें कहना । यथा अग्नितत्त्वसे धातु, वायुतत्त्वसे जीव, जलतत्त्वसे मूल और भूमितत्त्वसे

मणि जाने । यहाँ मूलमें "मूके कमग्यलह्योत्थं जमातेभ्यघजोद्भवम् " ऐसा पूर्वार्द्ध पाठ ठीक अर्थ प्रतीत करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अस्योदाहरणम् ।

मूकप्रश्ने तु पाशोत्था जाताः शकुनकेन्द्रवत् ।
तत्रोक्तवच्च खण्डानि नखा हुम्रा इजन्नखाः ॥ २२ ॥

अर्थ–अब पहिले जो दो श्लोकोंसे चार शकल लाकर मूकप्रश्नमें जो मनकी बात तथा कारण आदि समझनेको लिखा है वह उदाहरणद्वारा इस श्लोकसे स्पष्ट किया जाता है–यथा मूकप्रश्नमें पाशा फेंकनेसे शकुनक्रममें जो केन्द्रमें शकलें हैं वेही चारों शकलें आईं अर्थात् पहिली लह्यान दूसरी जमात तीसरी अंकीश चौथी नस्रतुल्खारिज़् येंही शकुनक्रमके पहिली, चौथी, सातवीं और दशवीं हैं अब इन्हीं चारों शकलोंसे पूर्ववत् सोलहों शकलें निकालकर चक्रमें दर्शाये हैं अब पूर्वोक्त श्लोकानुसार लह्यान और प्रस्तारकी तेरहवीं शकल इन दोनोंसे पूर्ववत् एक शकल निकाला तो यह हुई । अब फिर प्रस्तारके प्रथम शकल और पञ्चम शकल इन दोनोंसे एक निकाला अब यह और पूर्व लाई हुई शकल इन दोनोंसे नस्रतुल्खारिज़् हुआ इसीको उदाहरण श्लोकमें 'नखा' लिखी है अर्थात् 'न' से नस्रतुल और 'खा' से खारिज लिखाहै यह नस्रतुलखारिज़् शकुनक्रममें दशवीं शकल है इस लिये दशममें पिता, वर्षा राज्याधिकारमेंसे कोई प्रश्न प्रश्न कर्त्ताके मनोगत समझना इसी प्रकार जमात और प्रस्तारके चौदहवीं से एक और चौथी तथा आठवीं से दूसरी इन दोनोंसे हुम्रा दूसरी भई यह शकुनक्रममें आठवीं शकल है और अष्टमसे युद्ध मृत्यु विवाद आदि विचारा जाता है इसलिये पूर्वोक्त प्रश्नमें इन्हींमेंसे कोई कारण है फिर सातवीं और ग्यारहवीं से एक और पन्द्रहवीं तथा अंकीश से दूसरी दोनोंसे एक यह इजतमा तीसरी भई यह शकुनक्रममें पन्द्रहवीं होनेसे बारहका भाग देनेपर तीन बचा इसलिये इस प्रश्नका भेद भाई है फिर दशवीं और चौदहवीं से एक तथा सोलहवीं और नस्रतुलखारिज़् से दूसरी

शकुनकेंद्रातप्रस्तारः ।

⁚ इन दोनोंसे ⁝ नस्रतुलखारिज् चौथी शकल हुई । यहभी शकुनक्रममें दशम होनेसे वही सिद्धिके असिद्धिहेतु होगी इन्हीं चारों शकलोंसे सभी फल कहे जायँगे इसी प्रकार सर्वत्र मूकप्रश्नमें प्रस्तार बनाकर चार २ शकलसे एक शकल निकालकर बुद्धिमान् सब विषय कहें ॥ २२ ॥

अतिगुह्यमिदं रम्ले राज्येच्छा युद्धकारणम् ।
अर्कशेषो भ्रातृभेदः सिद्धिर्नृपसहायतः ॥ २३ ॥

अर्थ—पूर्व जो मूकप्रश्नके चार भेद और उन चारोंके लिये पृथक् २ चार शकल निकालकर जो उनके जाननेका उपाय लिखा गया है यह रमलमें अत्यन्त गुह्य (गोपनीय) विषय है यह मैंने प्रकाशित किया है, यथा पूर्वोक्त उदाहरणमें नस्रतुलखारिज् पहिली शकल मनकी वात समझनेके लिये है, वह शकुनक्रममें दशम होनेसे मनकी वात राज्येच्छा है । द्वितीय शकल 'हुम्रा' शकुनक्रममें अष्टम होनेसे राज्येच्छाका कारण युद्ध है । तीसरी शकल 'इजतमा' शकुनक्रममें पन्द्रहवीं है इसलिये वारहका भाग देनेपर तीन वचा इसलिये भेदकारक भाई है तथा चौथी 'नस्रतुलखारिज् शकुनक्रममें दशम होनेसे राजाकी सहायतासे सिद्धि मिलेगी इसी प्रकार सर्वत्र मूकप्रश्नोंमें समझना ॥ २३ ॥

अथ प्रश्नासिद्धिकरणम् ।

इदं भवोदितं सत्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।
स्वान्ते रम्ले गुरौ चेत्स्याद्विश्वासः सिद्धिरुत्तमा ॥ २४ ॥

अर्थ—यह पूर्वोक्त मूकप्रश्नोत्तरका प्रकार महादेवजीका कहा हुआ सत्य है, जिस किसीको नहीं देना चाहिये अर्थात् विश्वासपात्र, गुरुभक्त आदिको देना चाहिये । अपने अन्तःकरण (हृदय) में रमलशास्त्र तथा गुरुमें पूर्ण विश्वास होनेसे उत्तम रीतिसे सिद्धि मिलती है ॥ २४ ॥

अथ प्रकारान्तरेण मूकप्रश्नः ।

प्रस्तारे टलपजं चेत्स्यात्स्वार्थः प्रश्नोऽन्यथान्यथा ।
स्वार्थे खण्डग्रहं प्रश्नः परार्थे शकुनं गृहम् ॥ २५ ॥

अर्थ—अब मूकप्रश्नके लिये दूसरा प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाशा फेंककर पूर्ववत् सोलहों शकल निकाले फिर पहिली और तेरहवींसे एक शकल बनावे यह शकल यदि प्रस्तारमें मिले तो स्वार्थ (अपने लिये) प्रश्नकर्त्ताने प्रश्न किया है ऐसा समझे और यदि प्रस्तारमें यह शकल नहीं हो तो परार्थ (दूसरेके लिये)

प्रश्न किया है ऐसा जाने । अपने लिये प्रश्न होय तो प्रस्तारसे प्रश्न कहना चाहिये तथा दूसरेके लिये प्रश्न होय तो शकुनघरसे प्रश्न कहना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ शेषायुर्विचारः ।

शेषायुरुक्तौ का १ भो ४ त्थं दीर्घमध्यादि चागमात् ।
प्रस्तारे तद्दलं यत्र तत्संख्या विज्दहाद्वदेत् ॥ २६ ॥

अर्थ=अब यदि कोई प्रश्न करे कि मेरी आयु कितनी बाकी है ? इसका उत्तर कहते हैं-पूर्ववत् पाशाद्वारा सोलहों शकल बनाकर पहिली शकल और चौथी शकलसे एक शकल निकाल ले इसी शकल द्वारा दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु और अत्यल्पायु प्राचीन ग्रन्थोंसे निर्णय करे । प्राचीन ग्रन्थोंमें १ दाखिल, २ साबित, ३ मुन्कलीब और४ खारिज़ इन निर्द्धारित संज्ञा द्वारा दीर्घायु आदिका निर्णय किया है जैसा कि, पहिली शकल और चौथी शकलसे जो एक शकल बनाई गयी है वह यदि दाखिल् संज्ञक शकलमेंसे कोई होय तो दीर्घायु, साबित संज्ञकमें होय तो मध्यायु, मुन्कलीबमें होय तो अल्पायु (चौथाई) और खारिज़ संज्ञकमें होय तो अत्यल्प (थोडी) आयु समझनी चाहिये । इन चारों संज्ञाकी शकलें नीचे चक्रमें स्पष्ट है अब वर्ष संख्या जाननेका उपाय यह है कि वह जो पहिली और

दाखिलादिसंज्ञाचक्रम् ।

दाखिल	साबित	मुन्कलीब	खारिज
१क. दा.	१जगात	१फरहा	१लह्यान
२ अङ्कीश	२हुम्रा	२ उक्ला	२क. खा.
३न. दा.	३बयाज	३नकी	३न. खा
४ अतवेदा	४इजतमा	४तरीख	४ अनवेला

चौथीसे उत्पन्न शकल है वह प्रस्तारमें जिस संख्यामें हो उस संख्याके सामने और विज्दह क्रममें जहां हो उसके नीचे जो संख्या होय उस संख्या तुल्यवर्ष शेष आयुमें समझे । उदाहरणके लिये यहां मान लिया कि पहिली शकल और चौथी शकलसे जो शकल निकली है वह लह्यान है अब यह लह्यान खारिज़ संज्ञक होनेसे अत्यल्प आयु समझी गयी । अब मानो कि, लह्यान शकल प्रस्तारमें छठी है तो आगे लिखे विज्दह चक्रमें छः के सामने और लह्यानके नीचे १७ सतरह संख्या है वही १७ संख्या अयुशेषकी समझनी और विशेष इसमें यह है कि पहिली चौथीसे उत्पन्न शकल दाखिलमें हो तो आगत संख्यातुल्य वर्ष समझे, साबितमें हो तो संख्यातुल्य मास, मुन्कलीबमें होतो संख्या तुल्य सप्ताह (हफ्ता) और खारिजमें हो तो संख्या तुल्य दिन समझे और यदि वह शकल प्रस्तारमें नहीं हो तो विज्दहके क्रमसेही सामने और नीचेका अंक ग्रहण करे ॥ २६ ॥

विज्दहाङ्कचक्रम् ।

नामानि	फर्द	लह्यान	अ.दा.	वयाज	तरीख	क.खा.	हुस्रा	अङ्काश	न. खा.	उक्ला	इजतमा	न.दा.	अ.खा.	नकी	क. दा	जमात
रूपाणि	·—··	——··	—···	——··	····	·—·	—·——	———·	——··	·——·	—··—	——··	··—·	·—··	—·—·	————
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
२	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
४	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२
५	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
६	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
७	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२२	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७
८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४
९	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२
१०	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१
११	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१
१२	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२
१३	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	६८	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४
१४	९२	९२	९४	९५	९६	९७	९८	९	१००	१०१	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७
१५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०	१२१
१६	१२१	१२२	१२३	१२४	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३६	१३६

द्वयोर्वादे तयोर्न्यूनाधिकद्रव्यज्ञानम् ।

द्वयोः स्वाल्पाधिकप्रश्ने प्रष्टाद्यस्तसिरात्परः ।
तयोः स्वं स्वं धनं ज्ञेयं पुष्टं सौम्यागमाद्वदेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—अव दो मनुष्योंके विवादमें किसके पास अधिक द्रव्य है यह जाननेका प्रकार लिखते हैं—जो प्रश्नकर्त्ता है उसकी पहिली शकल होती है उसपरसे तसीर करके दूसरी शकल जाननी, इन दोनों शकलोंसे जो दूसरी २ शकल हों उसीको धन संज्ञक समझना। उन दोनों धनसंज्ञक शकलोंमें जिसका शुभ होय उसके पास अधिक धन कहना। यदि दोनों शुभ होंय तो बरोवर कहना। और दोनोंके यदि अलग २ द्रव्यसंख्या जाननेके लिये पूर्वोक्त विज्दहाङ्कचक्रही है उससे जाननेका प्रकार यह है कि दोनोंके जो धनवाली शकलें हैं वे प्रस्तारमें जितनी २ संख्यामें होवें उनके सामने और विज्दहक्रममें जहां पर वे शकलें हों उनके नीचे कर्णमार्गके अङ्कोंमें जो जो अङ्क मिलें वही दोनोंकी धन संख्यायें समझी जावेंगी द्रव्यसंख्यामें पूर्ववत् दाखिल साबित आदिसे मोहरसे कौडीतक बुद्धिमान् समझें विज्दह क्रममें कर्ण मार्गके अङ्क समझनेके लिये उपरके चक्रसे निकालकर अलग चक्रमेंभी नीचे दर्शाते हैं ॥ २७ ॥

विज्दहे कर्णमार्गाङ्कबोधकचक्रम् ।

सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
सू.	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
अं.	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	४५	५५	६६	७८	९१	१०५	१२०	१३६

अथ स्वप्नज्ञानम् ।

शुभाशुभस्वप्नप्रश्ने कब्जुलखारिज्जकोद्भवम् ।
शुभं चेच्छुभदः स्वप्नो भेदः खण्डस्वरूपतः ॥ २८ ॥

अर्थ अब शुभाशुभ स्वप्नज्ञान लिखते हैं—पहिली शकल और तीसरी शकलसे एक शकल करे फिर इस शकलको कब्जुल् खारिज़के साथ मिलावे तब जो शकल उत्पन्न हो वह यदि शुभ होय तो शुभ स्वप्न कहना, अशुभ होय तो अशुभ, मिश्र होयं तो शुभ अशुभ दोनों कहना और उस शकलका जो तत्त्व हो उससे समस्त शुभाशुभ विचार कर कहना चाहिये ॥ २८ ॥

भर्त्तारमन्यमिच्छामीति प्रश्ने ।

इच्छामि पं परं सौम्यमाद्यः सन्क १ भ ४ जं शुभम् । परः सन्क १ न्य १० जं सौम्यं पुंसः स्या१ । ७ ध्या १ । ४ स्त्रियौ तथा२९

अर्थ–अब यदि कोई स्त्री पूछे कि, मैं पहिला पति रहते दूसरा पति करना चाहती हूं सो पहिले पतिसे मुझको अधिक सुख है, या दूसरेसे अधिक सुख मिलेगा ? ऐसे प्रश्नमें पूछनेवालीकी पहिली शकल और प्रथम पतिके लिये चौथी शकल लेकर विचारना, और फिर पूछनेवालीकी पहिली शकल तथा दूसरे पतिके लिये दशवीं शकल लेकर विचारना यदि पहिली शकल और चौथी शकलको परस्पर मित्रता और शुभ आदि योग हों तो पहिले पतिसे सुख कहना । तथा पहिली शकल और दशवीं शकलको आपसमें मैत्री आदि हो तो दूसरे पतिसे सुख कहना । यदि पहिली शकलके साथ चौथी और दशवीं इन दोनोंसे मैत्री आदि शुभ योग बनता हो तो दोनोंसे सुख कहना यदि चतुर्थ दशम दोनोंसे मैत्री दृष्ट्यादि न हो तो दोनोंसे दुःख ही कहना । इसमें भी चतुर्थ दशममेंसे जिस शकलसे अधिक शुभादि योग हो उससे अधिक सुख जिससे अल्प हो उससे अल्पसुख कहना । इसी प्रकार यदि पुरुष दूसरी स्त्रीके लिये प्रश्न पूछे तो पूछनेवालेकी पहिली शकल और पहिली स्त्रीकी सातवीं शकल तथा दूसरी स्त्रीकी चौथी शकल समझकर पूर्वोक्तविचार सुख दुःखं कहना चाहिये ॥ २९ ॥

भूमिगतद्रव्यज्ञानं तद्दिशाज्ञानं च ।

भूद्रव्यप्रश्ने धा ४ चो ६ त्थं लाभं चोक्ता धनं बहु ।
अल्पं चरगमं नान्यद्दिग्भं ४ खण्डस्य चक्रतः ॥ ३० ॥

अर्थ–अब यदि कोई पूछे कि अमुक जगहमें द्रव्य होनेकी सम्भावना है सो है या नहीं, और है तो कितना तथा किस जगह है ? ऐसे प्रश्नमें प्रस्तार करके चौथी और छठी शकलको मिलाकर एक शकल निकाले, यह शकल दाखिल, साबित और उक्ता अर्थात् ⩧, ≡, ⩦, ⁝, ≡, ≐, ⋿ ⋿ ÷ इन नवों शकलोंमेंसे कोई हो तो उस जगहमें बहुत द्रव्य है ऐसा कहना । चरगमसंज्ञक अर्थात् उक्तारहित मुन्क्लीब ÷, ⸪, ⁝ मेंसे कोई हो तो अल्प (बहुत थोडा) द्रव्य कहना और इन शकलोंसे भिन्न ≡, ⸗, ÷, ∸ शकलमेंसे कोई शकल हो तो द्रव्य नहीं है ऐसा कहना । अब उपरोक्त प्रकारसे यदि द्रव्यका होना सिद्ध हो तो किस भागमें है ? इसको जाननेके लिये समस्त भूमिको लकीर खैंचकर चतुष्कोण बना ले और फिर

एक आडी और एक तिरछी रेखा खैंचकर तुल्य चार भाग करले (जैसा कि यहाँ चक्र दिया है इन चारों भागोंमें पूर्वदिशाके वायें भागके चतुष्कोणको पूर्व, दहिने भागके चतुष्कोणको दक्षिण समझे और इन दोनोंके नीचेके भागको क्रमसे उत्तर और पश्चिम जाने अर्थात् पूर्वके नीचे उत्तर और दक्षिणके नीचे पश्चिम (जैसा कि चक्रमें है) माने । इस प्रकार दिशा जानकर पाशा फेंक प्रस्तार बनावे उस प्रस्तारकी चौथी शकलकी जो दिशा आगेके अन्तिम चक्रमें है उसी दिशामें धन (द्रव्य) कहना ॥ ३० ॥

	पू		
उ	पू	द	द
	उ	प	
	प		

अथ स्थूलसूक्ष्मज्ञानमगाधज्ञानञ्च ।

पुनः पुनश्च प्रस्ताराद्यावत्स्याद्धस्तमात्रकम् ।
अङ्कुलाद्धस्तपर्यन्तं तुर्या ४ द्वांकादगाधकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—अब पूर्व श्लोकसे जिस भागमें द्रव्य जाना गया है वह भाग यदि वडा हो तो फिर प्रस्तार करै और द्रव्यवाला जो भाग है उसको पीछे कहे अनुसार चार भाग तथा दिशाका ज्ञान कर ले और किये हुए प्रस्तारमें जो चतुर्थ शकल हो उसकी जो दिशा है उस दिशाके भागमें द्रव्य समझे । फिर जिस भागम द्रव्य समझा गया है उसको पूर्ववत् भाग, दिशा ज्ञान कर प्रस्तार बना चतुर्थ शकल द्वारा द्रव्य स्थित भाग जाने । ऐसी क्रिया तवतक करता जाय जवतक एक हाथका भाग होय । फिर उस द्रव्यका स्थूल, सूक्ष्म आकार जाननेके लिये आगे चक्रमें सभी शकलोंके रूप, तत्त्व वर्ण, स्थूलादि दिये हैं और वह द्रव्य कितने हाथ या अङ्कुल नीचे जमीनमें है यह भी आगेके चक्रमें अगाधाङ्क कोष्ठकके प्रस्तारस्थ चतुर्थ शकलाङ्कसे जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ पुत्रोत्पत्तिप्रश्नः ५ ।

पुत्राप्तौ का १ स ५ चा ६ सो ७ त्थं सल्लाभं चेत्सुतासिदम् ।
चिरकालात्सञ्चरागौ निर्गमं चाशुभं हि न ॥ ३२ ॥

अर्थ—अब पञ्चम गृहसम्वन्धी पुत्रोत्पत्तिप्रश्न लिखते हैं—पूर्ववत् प्रस्तार वनाकर पहिली, पाँचवी, छठी और सातवीं इन चारों शकलोंसे एक शकल करे अर्थात् पहिली और पाँचवींसे एक तथा छठी और सातवींसे एक करे फिर इन दोनोंसे एक करे, इस प्रकार पूर्वोक्त चारों शकलोंसे एक शकल लाकर देखे कि यह शकल शुभ तथा लाभ संज्ञक शकलमेंसे कोई शकल हो अर्थात् शुभ दाखिल , , , इनमेंसे कोई हो तो पुत्रोत्पत्ति कहनी । अशुभ दाखिल हो तो सन्ततिकी मृत्यु होती

है । शुभ चर ⁘ ⁝ ,शुभ स्थिर ☰ इनमेंसे कोई हो तो विलम्बसे पुत्र कहना और अशुभचर ⁘ ⁘ अशुभ स्थिर ☰, ☰, ☰ हो तो गर्भनाश आदि कहना । और निर्गम ☰, ⁘, ⁘, ⁘ शकलोंमेंसे कोई हो तो कभीभी पुत्रादिकका सम्भव नहीं होय ॥ ३२ ॥

अथ रोगमुक्तिप्रश्नो जीवनमरणज्ञानश्च ६ ।

को१रोगी व्यो४पथ्यं चोद्दर्त्तिर्न्यो१०वैद्यः क्यो११निरोगकृत् ।
ख्यो१२तिरोगोत्र तत्सौम्यं सद्गमं चे ६ शुभावहम् ॥
जीवने ज्ञाकिंखण्डं चेद्रयोग६।१त्थं ग्यो ३।१त्थं मृतिप्रदम् ॥३३॥

अर्थ–अब छठे घरके रोग दूर होनेका प्रश्न तथा जीवन और मरणज्ञान लिखते हैं–रोग प्रश्नमें प्रस्तारकी पहिली शकल रोगीकी है, चौथी शकल औषधकी, छठी शकल रोगकी, दशवीं शकल वैद्यकी, ग्यारहवीं शकल रोग दूर होनेकी और बारहवीं शकल अतिरोग (दीर्घरोग) की है । उक्त स्थानोंके शकल शुभ हों तो उस २ विषयमें रोगीको शुभ कहना और छठी शकल यदि गमसंज्ञक हो तो शुभ (रोगकी निवृत्ति) कहे । तथा रोगी जीवेगा या मरेगा ? इसको जाननेके लिये छठी और पहिली शकलसे एक शकल करे तथा पहिली और तीसरीसे एक करे ये दोनों शकलें यदि बुधकी ☰, ☰ या शनिकी ⁘, ☰ हो तो मृत्यु कहनी चाहिये ॥३३॥

अथ चौरप्रश्नः ७ ।

चौरप्रश्नस्य प्रस्तारे नांचेद्धुम्रा नकी यदा ।
कब्दवा अत्खाथवा नो चेन्न चौरेण हृतं वदेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ–यदि कोई पूछे कि मेरी अमुक वस्तु खो गयी है चोर ले गया है या घर हीमें है ? इस प्रश्नोत्तरके लिये पूर्ववत् प्रस्तार बनावे उस प्रस्तारमें हुमरा ☰ नकी ⁘, कब्जुल खारिज ⁘, अतबे खारिज़ ⁝ इन चारों शकलोंमेंसे कोईभी शकल न हो तो चोर धन नहीं ले गया है घरहीमें है ऐसा जाने अर्थात् इन उक्त चारोंमेंसे कोई । शकल प्रस्तारमें हों तो चोर धन ले गया है ऐसा जाने ॥ ३४ ॥

अथ स्वकीयसमीपदूरस्थचौरज्ञानम् ।

सर्वार्द्धरेखकानां फाः २ पूर्णानां टा १ ग २ शेषतः ।
स्वकीयश्च समीपस्थो दूरस्थो या १ रि २ ब ३ क्रमात् ॥३५

अर्थ–अब चोरी ज्ञात होनेपर कोई स्वकीय (अपना) आदमी चोर है या अन्य तथा वह चोर समीपमें है या दूरमें है ? इसका ज्ञान लिखते हैं–चोरीके प्रश्नमें जो प्रस्तार बनाया है उस प्रस्तारके सोलहों शकलमें जितनी रेखायें है उनको गिनकर दूना करे और सोलहों शकलोंमें जितने शून्य हैं वे गिनकर मिलादे फिर तीनसे भाग देकर यदि एक शेष बचे तो अपना आदमी चोरी किया है ऐसा, जाने, दो शेष बचे तो चोर समीपमें जाने, तीन बचे तो दूरमें है ऐसा जाने । " यहाँ रेखाको द्विगुण इस वास्ते किया है जिस लिये दो विन्दुओंसे एक रेखा होती है " ॥ ३५ ॥

ग्रामस्थ–बहिर्गत–तादिग्ज्ञानं चौरगृहद्वारज्ञानञ्च ।

केन्द्रोत्थभागमाद्वाभ्यां ग्रामथोऽन्याभ्यां बहिर्गतः ।
न्या १० द्वांद्गमदिशा ज्ञेया तद्गृहास्यं तु ज्ञा ९ वदेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ–अब चोर ग्रामहीमें है या वाहर चला गया तथा किस दिशामें गया है, और चोरका घर कौन मुखका है ? इनका ज्ञान लिखते हैं–प्रस्तारमें केन्द्रस्थ १ । ४ ७ । १० जो शकल हों उन चारों शकलोंसे दो शकल निकाले अर्थात् पहिली, चौथीसे एक और सातवी दशवीसे दूसरी शकल निकाले यह दोनों शकल यदि आगम-संज्ञक हो तो ग्रामहीमें चोर है ऐसा जाने और यदि उक्त दोनों शकल निर्गम संज्ञक हो तो चोर ग्रामसे वाहर जाने । अव प्रस्तारमें जो दशवीं शकल हो उसकी जो आगेके चक्रमें दिशा लिखी है उसी दिशामें चोरका जाना समझे तथा नववीं शकलकी जो दिशा है उसी मुखका चोरका घर जाने ॥ ३६ ॥

अथ चौरस्वरूपज्ञानम् ।

स ७ खण्डमब्दहे यत्र प्रस्तारे तद्गृहस्य च ।
शकलस्य स्वरूपेण चौरवर्णादिकं वदेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ–अब चोरका स्वरूप जानना लिखते हैं–प्रस्तारमें सातवीं जो शकल हो वह शकल अब्दहक्रममें जिस संख्यामें हो उस संख्यातुल्य प्रस्थारस्थ जो शकल हो उस शकलका जो स्वरूप, वर्ण, जाति आदि आगेके कोष्टकमें दर्शाया है वैसाही समस्त चोरके लिये कहे । अब्दह क्रम उसको कहते हैं जिसमें १ लह्यान ≡, २ हुमरा ≡, नस्रतुलखारिज् ≡, ४ बयाज ≡, ५ कब्जुल् खारिज् ≡, ६ इजतमा ≡ ७ अतबेखारिज् ≡, ८ अंकीश ≡, ९ उक्ला ≡, १० फरहा ≡, ११ फरह्वा ≡, १२ नस्रतुलदाखिल् ≡, १३ नकी ≡, १४ अतबेदाखिल ≡, १५ तरीख ≡, १६ जमात ≡ इस प्रकारके क्रमपूर्वक शकल विन्यास किये जाते हैं ॥ ३७॥

अथ नष्टप्राप्तिज्ञानम् ।

नष्टाप्तौ क १ ठ २ क्यो ११ भ्यो १४ स्थमागमं म्यो १५ कलातिदम् । धनभावेऽखिलातादिः सौम्यार्द्धागमतः क्रमात् ॥ ३८ ॥

अर्थ–अब नष्टवस्तुकी प्राप्तिज्ञान लिखते हैं–जब कोई पूछे कि खोयी हुई चीज मिलेगी या नहीं ? इस प्रश्नोत्तरके लिये प्रस्तारके पहिली, दूसरी, ग्यारहवीं और चौदहवीं इन चारों शकलोंसे एक शकल कर लेना अर्थात् किसी दोसे एक निकालना और बाकिये दोसे एक निकालना फिर इन दोनोंसे एक कर लेना यह शकल यदि आगम संज्ञक हो तो नष्टवस्तुका लाभ कहना । तथा पन्द्रहवीं शकल यदि उक्ला ⚎ हो तो भी नष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है । परन्तु दूसरी शकल यदि आगम तथा शुभ हो तो सब धन मिलता है, और सम होय तो आधा, पाप होय तो अल्प मिलेगा यह क्रमसे जानना ॥ ३८ ॥

अथ समाचौरज्ञानम् ।

समा चौरस्य प्रस्तारे स्वाग्रे पंक्तिं नृणां न्यसेत् ।
म ५ च ६ सा ७ मब्जदांकैक्ये चौरो दक्षकरात्पुनः ॥३९॥

अर्थ–अब जहाँपर बहुतसे आदमी हो और उतने आदमीके भीतरही चोरका होना सम्भव हो वहाँ चोर निकालनेका उपाय लिखते हैं–सभी मनुष्योंको एक पंक्तिमें अपने आगे बैठावे पीछे प्रस्तार करे उस प्रस्तारकी पाँचवीं छठी और सातवीं जो शकल हो उन तीनों शकलोंको अब्जद क्रममें देखे कि किस २ संख्यामें वे पडे हैं जिस २ संख्यामें पडे हों उन तीनों संख्याङ्कको जोडकर जो संख्या हो वह संख्या अपनी दाहिनी ओरसे गिनने पर जिस मनुष्यपर समाप्त हो वही चोर है ऐसा जाने यदि संख्या अधिक हो और मनुष्य संख्या कम हो तो एक वार पूरा करके फिर बाकी संख्याको दुबारा तिवारा करके गिने जिस मनुष्यपर संख्या पुरे उसीको चोर जाने ॥ ३९ ॥

अथ ऋणमुक्ति ८ परदेशस्थस्य मृतिज्ञानम् ९ ।

के १ रू २ फे २ भ्यु १४ जे ८ भ्यु १४ शीघ्रमृणमुक्तिर्न संशयः । विदेशस्थस्य प्रस्तारे रगाल्पं ३२ चा ६ म्य १५ खं मृतिः ॥ ४० ॥

अर्थ-अब आठवेंमें ऋणकी मुक्ति और नववेंमें विदेशस्थ मनुष्यका जीवनमरण ज्ञान लिखते हैं-यदि कोई पूछे कि मैं ऋणसे मुक्त होऊंगा या नहीं ? इस प्रश्नोत्तरके लिये प्रस्तार निकाले उस प्रस्तारमें पाहिली शकल शकुन क्रमकी दूसरी अर्थात् कब्जुलदाखिल दूसरी शकल शकुनक्रम की चौदहवीं अर्थात् अतवेदाखिल, तथा आठवीं शकलभी अतवेदाखिल हो तो शीघ्र ऋणसे मुक्ति कहनी इसमें सन्देह नहीं । अब विदेश गया हुआ आदमी मर गया या जीता है ? इसको जाननेके लिये प्रस्तारकी छठी शकलसे पन्द्रहवीं शकल पर्यन्त दश शकलोंके बिन्दु गिननेपर बत्तीससे अल्प हो तो विदेशी मर गया ऐसा समझना, यदि बत्तीस ३२ से अधिक हों तो जीवित जानना और बत्तीस हो तो अतिकष्टमें जानना ॥ ४० ॥

अथ जयाजयज्ञानं द्रव्यलाभसहायज्ञानंच १० ।

विरोधे क १ न्य १० जो मुख्यः स ७ न्य १० जस्त्व-
परः शुभम् । यस्य चेत्स जयी साम्ये सन्धिः कात्
१ सा ७ त्तथाऽथवा ॥ स्वलाभो-यस्य ठं २ लाभं
सन्ध्योमात्स पुष्टिदः ॥ ४१ ॥

अर्थ-अब दशवेंमें जयपराजय और द्रव्यलाभ तथा सहायज्ञान लिखते हैं-दो आदमीके विवादमें कौन जीतेगा इस प्रश्नमें प्रस्तार बनाकर पाहिली शकल और दशवीं शकलसे एक शकल बनावे इस शकलको मुख्य अर्थात् यायी (मुद्दई) समझे तथा सातवीं शकल और दशवीं शकलसे एक शकल निकाले वह शकल स्थायी (मुद्दालह) की जानै । इन दोनों वादी प्रतिवादीके शकलोंमें जिसकी शकल शुभ होय उसकी जय कहनी । यदि दोनों शकल शुभ या अशुभमें समान हो तो सन्धि (मिलाप) कहनी । अथवा पहिली शकल मुद्दईकी और सातवीं मुद्दालहकी समझकर पूर्वके तरह जय पराजय समझे । धनलाभके लिये दूसरी शकल यादि लाभसंज्ञक (दाखिल) हो तो पूर्ण धनलाभ कहना अन्य होय तो नहीं और सातवीं दशवीं शकलके योगसे जो शकल हो उस शकलद्वारा धनलाभमें सहायता मिलती है॥४१॥

अथ भोजनज्ञानम् १० ।

न्ये १० शुभार्द्धे मित्रगं चेजत्मा भुक्तो न चान्यथा ।
कटुक्षारे तिक्तमिश्रे मिष्टाम्लेऽर्कात्कषायकम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-अब दश भोजनज्ञान लिखते हैं-यदि कोई पूछे कि मैं भोजन किया हूँ या नहीं और यदि भोजन किया हूं तो कौन रस ? इस प्रश्नोत्तरके लिये प्रस्तारकी

दशवीं शकल शुभ होय और इजतमा ☳ मित्रस्थानमें हो तो भोजन किया है ऐसा समझना । यदि अन्यथा होय अर्थात् दशवीं शकल अशुभ होय और इजतम ☳ शत्रुके स्थानमें होय तो भोजन नहीं किया है ऐसा जानना । अब यदि भोजन करना सिद्ध हो तो कौन रस भोजन किया है इसको जाननेके लिये दशवीं शकलके जो ग्रह स्वामी है उस ग्रहका रस भोजनमें अधिकतासे कहना । यथा सूर्यसे कटु (कडवा), चन्द्रसे क्षार, मङ्गलसे तिक्त (तीता), बुधसे मिश्र (कटु, क्षार तिक्त मिला) बृहस्पतिसे मधुर, शुक्रसे अम्ल (खट्टा), शनि, राहु, केतुसे कषायरसका भोजन कहना ॥ ४२ ॥

आशापूर्त्तिज्ञानम् ११ बन्धमुक्तिज्ञानञ्च १२ ।

प्रस्तारे क १ कय ११ कयो ११ भ्यो १४ त्थं चेत्पू-
र्णाशाऽन्यथान्यथा । यद्भावे तत्तदाशा स्यात्से १२
गमं बन्धमुक्तिदम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–अब ग्यारहवेंसे आशापूर्त्तिज्ञान और बारहवेंसे बन्धमुक्तिज्ञान लिखते हैं–यदि कोई प्रश्न करे कि मेरे मनकी आशा पूरेगी या नहीं ? इस प्रश्नोत्तरके लिये प्रस्तार बनावे उस प्रस्तारमेंसे पहिली, ग्यारहवीं, ग्यारहवीं, चौदहवीं इन चारों शकलोंसे एक शकल निकाले यह निकाला हुआ शकल यदि प्रस्तारमेंभी हो तो आशाकी पूर्त्ति कहनी चाहिये । यदि वह शकल प्रस्तारमें न हो तो आशाकी पूर्त्ति नहीं कहनी । तथा वह. निकाला हुआ शकल जिस भावमें हो उस भावसम्बन्धी आशा होती है । बन्धनसे मुक्त होनेके प्रश्नमें बारहवीं शकल यदि निर्गमसंज्ञक हो तो बन्धनसे छुडाता है अन्यथा नहीं ॥ ४३ ॥

अथ कार्यावधिज्ञानं वारज्ञानंच ।

जा ८ द्वैतत्त्वैक्यतो घै ४ घैः ४ क्षणाहोवारमासकान् ।
मिजाजे बलिनो वार स्वस्थानां वातसीरजम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–अब प्रश्नसे जिस कार्यका सिद्ध होना जाना गया है वह कार्य कबतक होगा इसका ज्ञान तथा दिनका ज्ञान लिखते हैं–आठ शकल ऐसे लिखे कि जिनके तत्त्व एक हो अर्थात् पहिले जिन शकलोंके ऊपरमें (पहिला) विन्दु है और द्वितीयादि जो कुछ हो उन शकलोंको लिखे ऐसे आठही शकल है ये अग्नितत्त्वके हैं उनको ऊपर कोष्ठकमें लिखे, फिर जिन शकलोंके द्वितीय (दूसरे) विन्दु हैं और ऊपर नीचे कुछभी हों वे वायुतत्त्वके आठ शकल हैं उनको लिखे, फिर जिन शकलोंके तृतीय विन्दु हैं और कुछभी हों वे आठों जलतत्त्वके शकल हैं और जिन

शकलोंके अन्तमें विन्दु हैं और अन्यमें कुछभी हो वे पृथ्वीतत्त्वके हैं इन चारों तत्त्वोंके क्रमसे क्षण (मुहूर्त्त) दिन, वार (हप्ता) मास जानै । आशय यह है कि पूर्व इसी अध्यायके २६ वें श्लोकके व्याख्यामें जो आयु जाननेके लिये जैसा विन्दहांकचक्रसे संख्या जानी जाती है वैसाही अब्दहक्रमसे चक्र वना जो संख्या आवे उसको कार्यशकलके तत्त्वके अनुसार क्षणादि जानै । यदि कार्य शकल दो तीन चार तत्त्वोंमेंभी हो तो संख्यातुल्य उन २ तत्त्वोंके जो क्षणादि हैं उनको जोडकर अवधि वतावै तथा मिजाज क्रममें जो वली हो उसका वार जानै या तसीर करनेपर जो शकल सिद्ध हो उससे वार जानै । मिजाजक्रम उसको कहते हैं जिसमें १ कब्जुलदाखिल , २ फरहा , ३ जमात , ४ वयान ,५ उक्ला , ६ लह्यान , ७ हुमरा , ८ कब्जुलखारिज , ९ नस्रतुलखारिज् , १० अतवेदाखिल , ११ इजतमा , १२ तरीख , १३ अङ्कीश , १४ नस्रतुलदाखिल , १५ नकी , १६ अतवेखारिज इस प्रकारके शकल विन्यास हो ॥ ४४ ॥

अथ मुष्टचा वस्तुकथनम् ।

> दं वा थ्यं चेत्पूर्णमुष्टिं प्रस्तारे चागमेषं ४चे ६ ।
> लाभाद्वैर्मा ५ च ६ ङ्के ९ दक्षंवाममुष्टिं तु निर्गमैः ॥
> विरोधे वलयुक्ताद्वा म ५ त ६ योगाद्वदेत्सुधीः ॥ ४५ ॥

अर्थ–अब मुष्टिप्रश्न लिखते हैं–यदि कोई पूछे कि मेरी मुट्ठीमें क्या है कुछ या नहीं, इस प्रश्नोत्तरके लिये प्रस्तार करै उस प्रस्तारमें यदि हुमरा और नकी ये दोनों शकल हों या कोई एकभी हो तो पूर्णमुष्टि (मुट्ठीमें वस्तु है) कहना चाहिये । यदि उक्त दोनों शकल प्रस्तारमें दो तीनवार हो तो मुट्ठीमें वहुत वस्तु है ऐसा जानना चाहिये । यदि प्रस्तारमें दो उक्त शकलोंमेंसे कोईभी शकल न हो तो मुट्ठी खाली कहनी । दूसरा प्रकार है कि प्रस्तारकी चौथी और छठी शकल यदि आगमसंज्ञक होय तो भी मुट्ठीमें कोई वस्तु है ऐसा जानना । अव यदि दोनों मुट्ठी वन्द रक्खा हो तो कौन मुट्ठीमें वस्तु है यह जाननेका उपाय यह है कि पाँचवीं छठी और नववीं शकल लाभसंज्ञक (दाखिलसावित) हों तो दहिने हाथमें वस्तु है ऐसा जानै और उक्त स्थानोंमें निर्गमसंज्ञक शकल हो तो वायें हाथमें वस्तु जानना । यदि परस्पर विरोध होय अर्थात् उक्त तीनों शकलोंमें किसीमें दाखिल या सावित हो और किसीमें निर्गमसंज्ञक हो तो जो वली हो उससे दक्षिण वामका नियम करना अथवा प्रस्तारकी पाँचवीं शकल और छठी शकलका मिलाकर जो शकल हो उस शकलसे पूर्ववत् सभी विचार विद्वान् करे ॥ ४५ ॥

अथ वस्तुरूपकथनम् ।

मृद्वादिका १ द्वार २ द्वर्णादि रूपं गा ३ द्वृत्तुलादि घात् ४ । झा ९
खण्डितायं न्या १० त्स्वादं धात्वादि ख्या ४ त्समादि सात् ॥ ४६ ॥

अर्थ-अव उस मौष्टिक वस्तुका रूप कहनेका प्रकार लिखते हैं-वह मुट्टीकी वस्तु कोमल है या कठिन इसके लिये प्रस्तारकी पहिली शकल देखनी चाहिये अर्थात् पहिली शकलकी आगेके चक्रमें जैसी कठिनता या मृदुता लिखी है वैसीही कहनी चाहिये इसी तरह दूसरी शकलसे वर्ण (गौर, श्वेत आदि) तीसरीसे रूप, चौथीसे गोल, लम्बाई आदि नववींसे खण्डित आदि दशवींसे उस चीजका स्वाद (कडुआ आदि) बारहवीं शकलसे धात्वादि (धातु, मूल, जीव) सातवींसे सम विषमादि संख्या आगेके चक्रसे उक्त सब विचार कर कहना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ वर्षफलसाधनम् ।

तत्र प्रश्नकरणविधिः समयज्ञानञ्च ।

प्रसन्नचेताः स्थिरहृत् सुस्नातोऽब्दफलं बुधः ।
साधयेत्सायनाऽजार्के वाब्दवेशाह्नि स्वाह्नि वा ॥ ४७ ॥

अर्थ-अब वर्षफलसाधन लिखते हैं-तहाँ प्रश्न करनेकी विधि और किस समयमें प्रश्न करना उसका ज्ञान कहते हैं-प्रसन्नचित्त और स्थिर मनसे उत्तम रीतिसे स्नान आदि करनेके अनन्तर अयन दिन (कर्कसंक्रान्ति और मकरसंक्रान्तिके दिन) में या जिस दिन मेषकी संक्रान्तिका दिन वा जिस दिन प्रश्नकर्त्ताका वर्षप्रवेश होता हो उस दिन वा किसी पुण्यदिनमें रमलज्ञ पण्डित वर्षफल साधे ॥ ४७ ॥

समस्तजगतोर्थं च भिन्नभिन्नजनस्य च ।
यदुद्देशं समाश्रित्य फलं तस्यैव जायते ॥ ४८ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त श्लोकमें जो समय निर्धारित किये हैं उन समयोंमें सम्पूर्ण जगत् (संसार) के लिये या भिन्न २ मनुष्योंके लिये फलादेशका निर्णय करे कारण कि जिस उद्देशसे पाशां फेंककर शकल बनावेगा उसीको वह फल होगा ॥ ४८ ॥

अथ वर्षमासफलम् ।

प्रस्तारस्यार्कखण्डेभ्यस्तन्वादीनां फलं वदेत् ।
तथा द्वादशमासानां शुभमित्रादिनोक्तवत् ॥ ४९ ॥

अर्थ–अब वर्ष और मासका फलादेश करनेका प्रकार लिखते हैं–पूर्ववत् प्रस्तार बनाकर उस प्रस्तारके बारह शकलोंसे लग्नादि बारहों भावोंका फलादेश कहना चाहिये इसी प्रकार बारह शकलोंसे बारहों मासकाभी फलादेश कहना चाहिये अर्थात् पहिली शकलसे लग्नका फल तथा पहिले मासका फल विचारना चाहिये और दूसरी शकलसे धनस्थानका फल और दूसरा मासका फल विचारना चाहिये इसी प्रकार तृतीयादि शकलसे तृतीय (सहज) आदि भावफल और तृतीयादि मासकाभी फल विचारना । फलादेश विचारनेकी रीति यह है कि शुभ तथा मित्रादिद्वारा वह शकल जैसा पूर्वानुसार दृष्ट आदि हो वैसा शुभाशुभ फलादेश कहना चाहिये ॥ ४९ ॥

पुनरुक्तिस्थलादेव तदीशस्यान्यखण्डतः ।
साक्ष्यर्द्धाद्विपरीतार्द्धात्फलं ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥ ५० ॥

अर्थ–पुनरुक्ति शकलसेभी शुभाशुभ फल जानना अर्थात् यदि शुभस्थानमें शुभ शकल दुबारा पडी हो तो विशेष शुभफल जानना इसी प्रकार अशुभस्थानमें अशुभ शकल दो बार पडी हो तो विशेष अशुभ फल विशेष जानना । इसी तरह जो ग्रह उस शकलका स्वामी है उसकी दूसरी जो शकल है उससेभी इसी प्रकार फलका तारतम्य करना । साक्षी शकलसे पूर्व कहेसे विपरीत (उलटा) शुभाशुभ फल जानना ॥ ५० ॥

अथ सावितकरणम् ।

प्रस्तार ग्य१३ न्य१०क्य ११ऽय १४ ऽयः प्रस्तारः साविते८ सकृत् । फग्ये १ । १३ न्यखे १०।२ प्यगे ११ । ३ घभ्ये ४ । १४ यावत्तुल्ये ततः फलम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–अब सावित बनाना लिखते हैं–प्रश्नके समय जो प्रस्तार निकले उस प्रस्तारकी तेरहवीं दशवीं, ग्यारहवीं और चौदहवीं इन चारों शकलोंसे पुनः पहिलेके अनुसार प्रस्तार करना उस प्रस्तारमें देखना कि पहिली तेरहवीं शकल, दूसरी, दशवीं, तीसरी, ग्यारहवीं और चौथी–चौदहवीं ये परस्पर दो दो शकलें तुल्य (एक) हों तो उसको सावित समझना । यदि उक्त दो दो शकलें तुल्य न हों तो इस प्रस्तारको सावित नहीं जानना, और पुनः इस प्रस्तारकीभी तेरहवीं, दशवीं, ग्यारहवीं और चौदहवीं शकल लेकर प्रस्तार करके पूर्वोक्त दो दो शकलें (पहली, तेरहवीं, दूसरी–दशवीं, तीसरी–ग्यारहवीं, चौथी–चौदहवीं) परस्पर तुल्य हों सावित जानना, नहीं तो जबतक सावित न हो तबतक पूर्वोक्त क्रिया करते जाना

यही सावित करनेकी रीति है । जितनेवार उपरोक्त क्रिया करनेसे सावित सिद्ध होय उसके अनुसार आगेके श्लोकसे फल कहना ॥ ९१ ॥

अथ सावितस्य संख्यया फलं दशासंख्या च ।

पाशोत्थः सैव प्रस्तारः सावितश्चेत्तदातिसन् ।
खे २ गे३सन्धे४समौङे५ऽसन् चे ६ऽत्यसन्तन्मिता दशा॥९२॥

अर्थ–अव सावित संख्यासे फलादेश और दशासख्या लिखते हैं–यहां आशय यह है कि सावित करनेमें पूर्वोक्त क्रिया छः वारसे ज्यादा नहीं करनी पडती अर्थात् कैसाभी पहिला प्रस्तार क्यों न हो छः वारके भीतरही सावित सिद्ध हो जाता है । अव इसी संख्याके अनुसार फल लिखते हैं यदि पाशा फेंककर जो प्रस्तार निकले हैं उसीमें सावित सिद्ध हो तो वर्त्तमान दशा वहुतही शुभ जानना तथा दूसरे वार या तीसरे वारमें सावित सिद्ध हो तो वर्त्तमान दशा साधारण शुभ जानना, यदि चौथे वारमें सावित सिद्ध हो तो समान फल (शुभ अशुभ समान), पाँचवें वारमें सावित सिद्ध हो तो साधारण अशुभ और छठे वारमें सावित सिद्ध हो तो वहुतही अशुभ फल जानना । और संख्या तुल्य दशाभी होती है अर्थात् पूर्वोक्त शुभाशुभ फल कवतक रहेगा ? इसको जाननेके लिये जितने वारमें सावित सिद्ध भया है उस संख्यासे वर्षदिन ३६० में भाग देकर जो लब्धि हो उतने दिनतक वह शुभाशुभ फल समझै ॥ ९२ ॥

अथ दशाफलमन्तर्दशामानफलं च ।

आद्यप्रस्तारतस्त्वाद्यं द्वितीयाद्द्वग्दशाफलम् ।
प्रस्तारस्यार्कखण्डेभ्यो द्वादशान्तर्दशाफलम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–दशाफल और अन्तर्दशा मान तथा फल लिखते हैं–सावित संख्यासे वर्षसंख्यामें भाग देनेसे जो तुल्य दशाकी संख्या निकली है उसमें पहिली दशामें पहिले प्रस्तारमें फल कथन करना, और दूसरी दशामें दूसरे प्रस्तारसे इसी प्रकार आगेभी जानना । प्रस्तारके जो वारह शकल हैं उनसे वारहों अन्तर्दशाफल जानना ॥ ९३ ॥

अथ ग्रन्थकृद्वंशानुवर्णनम् ।

दीनानाथो गुरुर्भेऽभूत्ख्यातो विद्याधरस्तथा ।
व्यासो माध्यन्दिनो वात्स्यो वल्लभाख्यः पितामहः ॥ ९४ ॥

पिता कृष्णविलासोऽम्बाऽम्बा भ्राता माधवोऽग्रजः ।
गोविन्दो जानकीभक्तो हरिर्नारायणोऽनुजाः ॥ ५५ ॥

अर्थ–अब ग्रन्थकारका वंशवर्णन लिखते हैं–ग्रन्थकार कहता है कि मेरा नाम दीनानाथ है ! मेरे गुरु विद्याधरनामसे विख्यात थे । मेरे पितामह वल्लभनामसे विख्यात थे जो कि व्यास (पौराणिक) उपनामसे विभूषित थे और माध्यन्दिन शाखाध्यायी वत्सगोत्रमें उत्पन्न हुए थे । मेरे पिता कृष्णविलास, मेरी माता अम्बा, मेर ज्येष्ठ भाई माधव और छोटे भाई गोविन्द, जानकीभक्त, हरि, नारायण थे ॥५५॥

अथ स्वेष्टदेवतास्मरणपूर्वकं ग्रन्थसम्पूर्णता-
समयमनुष्टुभाह ।

दुन्दुभ्यब्दे शकेऽर्थस्के १७७२ ऽवन्त्यां रामोत्सवे भृगौ ।
धीवृद्धिदो दुर्मतिहाऽयं श्रीकृष्णपदेऽर्पितः ॥ ५६ ॥

इति श्रीकृष्णविलासात्मज दीनानाथविरचिते सर्वसंग्रहे तुशे
५६ रमलाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ–अब ग्रन्थकार इष्टदेवका स्मरण करता हुआ ग्रन्थ समाप्त होनेका समय कहता है–दुन्दुभी नामके वर्षमें, १७७२ शाकेमें, अवन्ती (उज्जयिनी) नगरमें रामोत्सव (चैत्रशुक्लनवमी) के दिन शिष्यकी बुद्धि बढानेवाला और दुष्ट बुद्धिको नाश करनेवाला यह ग्रन्थ श्रीकृष्णभगवान्‌के चरणकमलमें समर्पण कियाहै ॥५६॥

इति श्रीमिथिलादेशान्तर्गतकानिगामग्रामवास्तव्य श्रीबबुयेशर्मात्मज ज्योतिर्विद्भूषण श्रीबच्चूशर्मकृतायां सर्वसंग्रहभाषाटीकायां रमलाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अथानेकग्रन्थवचनैर्मुहूर्ताध्यायः ५ ।

तत्रावश्यग्रहणं दीनानाथः ।

ध्यानं स्वेष्टस्य विप्रस्य वचो दानं च हृत्स्थिरम् ।
दोषापवादं शकुनं बलमिन्दोः सुसिद्धिदम् ॥ १ ॥

अर्थ–अब अनेक ग्रन्थोंके वचनसे मुहूर्त्ताध्याय कहते हैं–तहाँ अवश्य करके जिस २ विषयका ग्रहण करना चाहिये उसको ग्रन्थकार (दीनानाथ) कहते हैं–कार्यारम्भसे पूर्व अपने इष्टदेवका ध्यान करना, ब्राह्मणसे वाक्य ग्रहण करना, कुछ दान करना, मनको स्थिर रखना, शास्त्रोंमें दोषापवादपर विश्वास रखना, उत्तम शकुन देखना; और चन्द्रमाका वल ये सब कार्यसिद्धिको देते हैं ॥ १ ॥

अथ वर्ज्यम्।

सपार्श्वामां रिक्तकाश्च विष्टिं दुर्वारपापभम्।
सपार्श्वगा ह्योऽच्छेज्यास्तं दिनमासौ क्षयाधिकौ ॥ २ ॥

अर्थ–अब वर्ज्य तिथ्यादि लिखते हैं–अपनी पार्श्व (आगे पीछे)के तिथियोंसे सहित जो अमा (अमावास्या) अर्थात् चतुर्दशी, अमावास्या, शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, रिक्ता (चौथे, नवमी, चतुर्दशी), विष्टि (भद्रा) पाप ग्रहोंके दिन (सूर्य, क्षीण चन्द्रमाका दिन, मंगल, पापसे युत बुध, शनि) अपने पार्श्वके नक्षत्रोंसे सहित पापग्रहाधिष्ठित नक्षत्र अर्थात् पापग्रह जिसमें होय तथा जिसको भोग चुका हो और जिस नक्षत्रमें जानेवाला हो ये तीनों नक्षत्र, शुक्र, गुरुका अस्त, क्षयदिन और वृद्धि दिन, क्षयमास और अधिकमास (मलमास) ये सब शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं ॥ २ ॥

अजार्कहीनं सिंहेज्यं षण्मासं ग्रहयुद्धभम्।
षष्ट्यंशसन्धिं गोलादेस्त्यजेष्टे ग्रहषड्दिनम् ॥ ३ ॥

अर्थ–मेषके सूर्यसे रहित जो सिंहका बृहस्पति अर्थात् सिंहराशि पर बृहस्पतिके होनेसे सभी शुभकार्य वर्जित हैं परन्तु सिंहमें बृहस्पतिके रहते मेषके सूर्य हों तो दोष नहीं तथा जिस नक्षत्रपर ग्रहोंके आपसमें युद्ध भये हों उस नक्षत्रको छः मास तक शुभ कार्यमें त्याग करो। गोल, अयन आदिकी सन्धि जो कि उनके साठवें हिस्से होते हैं उसकोभी शुभ कार्यमें त्याग करो और ग्रहणसे तीन दिन पूर्व तथा तीन दिन पीछेके दिन अर्थात् छः दिन सभी शुभ कार्यमें त्याग करो ॥ ३ ॥

विषा ३ अगाः ६ शूमा ५ गंचा ६ व्याघ्ना ९ वधाः ९।
व्यन्ताः ६० पन्गा ३० वैन्ता ६० दुर्योगनाडिका वर्ज्याः ॥ ४ ॥

अर्थ–अब वर्ज्य योगोंके त्याज्य घटी लिखते हैं–विसे विष्कंभ और गासे तीन अर्थात् विष्कंभ योगके तीन घटी त्याज्य हैं, ऐसेही सर्वत्र जानना। जैसे अतिगण्डके छः ६ घटी, शूलके पाँच ५ घटी, गण्डके छः ६ घटी, व्याघातके नौ ९ घटी, वज्रयोगके नौ ९ घटी (ग्रन्थान्तरमें ५ घटी लिया है), व्यतीपातकी साठ घटी अर्थात् सम्पूर्ण, परिघयोगके तीस ३० घटी आधा वैधृतिके साठ ६० घटी अर्थात् सम्पूर्ण त्याज्य हैं ॥ ४ ॥

मुहूर्त्तचिन्तामणौ ।

गोजान्त्यकुम्भेतरभेऽतिचारगो न पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः ।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः शुभेषु रेवासुरनिम्नगान्तरे ॥ ५ ॥

अर्थ–अब मुहूर्त्तचिन्तामणिके श्लोकसे विलुप्तवर्षज्ञान और देश परत्वसे त्याज्य लिखते हैं–मेष, वृष, कुम्भ, मीन इन चार राशियोंसे भिन्न राशिमें अर्थात् मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर इन आठों राशियोंमें गुरु अतिचारी होकर जिस किसी पिछली राशिसे आवे और फिर वक्री होकर पिछली राशिमें न जाय तो वह वर्ष विलुप्त कहाता है, परन्तु अतिचारी होकर पिछली राशिको छोड (भोगकर) मेष, वृष, कुम्भ, मीनमें आते और वक्री होकर पूर्वराशिपर न जाने परभी विलुप्त नहीं होता । पूर्वोक्त विलुप्त वर्ष रेवा (नर्मदा) नदी और गङ्गाजीके बीचके देशोंमें वहुत ही निन्दित है अर्थात् विलुप्त वर्ष आवे तो उक्त देशोंमें कोईभी शुभ कार्य (विवाह) उपनयन, यज्ञादि उस वर्षमें नहीं करना ॥ ५ ॥

उदाहरणम् ।

शके१७९३ग्रहलाघवगणितात् मिथुनगे गुरौ
वैशाखादिपञ्चसु विवाहादि न जातं लुप्ताब्दत्वात् ॥ ६ ॥

इति शुभाशुभविचारः ।

अर्थ–उदाहरणके लिये आचार्य कहते हैं कि शके सत्रह सौ तिरानवेमें ग्रहलाघवके गणितसे मिथुनमें अतिचारी होकर गुरुके होनसे फिर वक्री होकर वृषमें नहीं गया इस लिये विलुप्ताब्द भया उस विलुप्तवर्षमें वैशाखसे पाँच महिनोंमें विवाहादि कार्य नहीं भया ॥ ६ ॥ इति शुभाशुभविचारः ॥ १ ॥

अथ नक्षत्रनामानि वालवोधे ।

अश्व दास्र भैषज्य अश्विनी १, यम याम्य अन्तक भरणी २, अग्नि दहन कृशानुकृत्तिका३, ब्राह्मयक प्रजापति रोहिणी ४, चन्द्र इन्दु सोम मृगशिर ५, रौद्र ईश शिव आर्द्रा ६, अदिति पुनर्वसु ७, गुरु इज्य तिष्य पुष्य८,सर्प अहि उरग आश्लेषा९, पितृ कव्यभुक् मघा १०, भग भाग्य पूर्वाफाल्गुनी ११, अर्यम उत्तराफाल्गुनी१२, रवि कर हस्त १३, त्वाष्ट्र चित्रा १४, वायु अनिल स्वाती १५,इन्द्राग्नि द्विप विशाखा १६,

मित्र अनुराधा १७, शक्र इन्द्र ज्येष्ठा १८, रक्ष निर्ऋति मूल १९, अम्बु जल पूर्वाषाढ २०, विश्व उत्तराषाढ २१, धातृ विरंचि अभिजित् २२, हरि गोविन्द श्रवण २३, वसु वासव धनिष्ठा २४, वरुण पाशी जलप शततारका २५, अजचरण पूर्वाभाद्रपद २६, अहिर्बुध्न्य उपान्त्य उत्तराभाद्रपद २७, पूषा पौष्ण रेवती २८ ॥ ७॥

अर्थ–अब अट्ठाईसों नक्षत्रोंके जो जो नाम ग्रन्थमें प्रसिद्ध रूपसे व्यवहृत होते हैं वे लिखते हैं–१ अश्व, २ दास्र, ३ भैषज्य, ४ अश्विनी ये चार नाम अश्विनीनक्षत्रके हैं मतलब यह है कि अश्व अश्विनीके नाम होनेसे अश्व (घोडा) के जितने नाम कोशमें हैं उन सबसे अश्विनी नक्षत्रका नाम समझा जायगा जैसे घोटक, तुरग, हय इत्यादिभी अश्विनीके बोधक हैं, इसी प्रकारसे भरणी आदिके प्रसिद्ध नाम मूलमेंही स्पष्ट परच्छेदके साथ लिखे हैं उन्हींसे जानने योग्य है ॥ ७ ॥

मुहूर्तचिन्तामणौ नक्षत्रवारसंज्ञा।

उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ॥ मृदु ॥ ८ ॥

अर्थ–अब नक्षत्र और दिनोंके संज्ञाविशेष और उनमें करने योग्य कार्य सामान्यरीतिसे लिखते हैं–तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा) रोहिणी ये चारों नक्षत्र और रविदिन ध्रुवसंज्ञक और स्थिर संज्ञक हैं। इन नक्षत्रादिनोंमें स्थिर कार्य, धान्यादि बीज बोना, घर बनाना आदि, शान्ति, (मंगल, पौष्टिक), बगीचा लगाना, आदिशब्दसे मृदुसंज्ञक नक्षत्रमें कहे हुए जो कार्य (गीत, वस्त्र, क्रीडा, मित्रकार्य (दोस्ती), अलङ्करण) हैं वे शुभ होते हैं ॥ ८ ॥

स्वात्यादिते श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम्।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ९॥ लघु ॥ ९ ॥

अर्थ–स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये पाँचों नक्षत्र और सोमवार चर और चल कहाते हैं, इन नक्षत्र दिनोंमें हाथी, घोडे आदिकी प्रथम सवारी, बगीचा लगाना, यात्रा और आदिशब्दसे लघुसंज्ञकोक्त कार्य (हाट लगाना, स्त्रीसंग, शास्त्रादिज्ञान, भूषण शिल्प) शुभ होते हैं ॥ ९ ॥

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।
तस्मिन्घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति ॥ दारुण ॥ १० ॥

अर्थ–पूर्वा तीनों (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा) भरणी, मघा ये पाँचों नक्षत्र और मंगलदिन उग्र और क्रूर कहाते हैं इन नक्षत्रदिनोंमें घात (मारणादि) अग्निकार्य, शठता, विषका कार्य, शस्त्रका काम और आदिशब्दसे दारुण संज्ञकोक्त कार्य अभिचार; घात, मित्रोंमें भेद कराना, पशुका दमन) शुभ होते हैं ॥ १० ॥

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादिसिद्धये ॥ उग्र ॥ ११ ॥

अर्थ–विशाखा, कृत्तिका ये दोनों नक्षत्र और बुधवार मिश्र और साधारण संज्ञक हैं इनमें अग्निकार्य, मिश्रकार्य, काम्यवृषोत्सर्ग और आदिशब्दसे उग्रनक्षत्रोक्त कार्य (घात, शाठ्य, विष, शस्त्र आदि) सिद्ध होते हैं ॥ ११ ॥

हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ।
तस्मिन्पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम् ॥ चर ॥ १२ ॥

अर्थ–हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् ये चारों नक्षत्र और बृहस्पतिवार क्षिप्र और लघु कहाते हैं, इनमें पण्य (दुकान लगाना), स्त्रीसंग, शास्त्रादिज्ञान, अलंकरणधारण, शिल्पकर्म, कलाकौशल और आदिशब्दसे चरोक्त कार्य (हाथी घोडे आदिकी सवारी, बगीचा, यात्रा आदि) सिद्ध होते हैं ॥ १२ ॥

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।
तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम् ॥ लघु ॥ १३ ॥

अर्थ–मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा ये चारों नक्षत्र और शुक्रवार मृदु और मैत्र कहाते हैं इनमें गीत गाना, वस्त्र, क्रीडा (खेल) मित्रकार्य (दोस्ती करना), भूषण धारण शुभ हैं यहाँ लघुसंज्ञकोक्त कार्य (दुकान करना, स्त्रीसंग, शास्त्रज्ञान, शिल्पकार्य) भी शुभ है ॥ १३ ॥

मूलेन्द्रार्द्राऽहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ।
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ स्थिर ॥ १४ ॥

अर्थ–मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ये चारों नक्षत्र और शनिदिन तीक्ष्ण और दारुण कहाते हैं इनमें अभिचारकर्म, घात, उग्रकर्म भेद (दो मित्रोंको परस्पर बिगाड कराना, पशुओंका दमन (सिखाना) आदिशब्दसे स्थिरोक्त कार्य (बीजबोना, घर करना, शान्ति बगीचा लगाना) सिद्ध होते हैं ॥ १४ ॥

ध्रुवादिविशेषसंज्ञाबोधकचक्रम् ।

नामानि	ध्रुव-स्थिर	चर-चल	उग्र-क्रूर	मि. साधारण	क्षिप्र-लघु	मृदु-मैत्र	तीक्ष्ण-दारुण
नक्षत्राणि	रो.उ. फा. उ षा.उभा	स्वा.पुन. श्र.ध.श.	पू.फा.पू.षा पू.भा.भ.म.	वि. कृ.	हस्त अश्वि पुष्य अभि	मृ. रे. चि. अनु	मू.ज्ये. आर्द्रा आश्लेषा
वाराः	रवि	चन्द्र	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ।
तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥ १५

अर्थ–मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, भरणी, मघा ये नौ नक्षत्र अधोमुखसंज्ञावाले हैं अर्थात् उक्त नक्षत्रोंके मुख नीचे झुके हैं । आर्द्रा पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुखसंज्ञक हैं अर्थात् इन नक्षत्रोंके मुख ऊपरके तरफ हैं मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अश्विनी ये नौ नक्षत्र तिर्यङ्मुख (सामने मुखवाले) हैं, इन तीनों संज्ञावाले नक्षत्रोंमें इनके सदृशकार्य सिद्ध होते हैं । यथा. अधोमुखनक्षत्रमें कूप, पोखर आदि खोदना, द्रव्य खोदके निकालना, बिलमें प्रवेश करना शुभ है । ऊर्ध्वमुखमें राज्याभिषेक (सिंहासनपर बैठना) पट्टबन्धन आदि कार्य करना शुभ है तिर्यङ्मुखमें बैल आदिको हलमें, गाडीमें लगाना, बीज बोना यात्रा आदि करना शुभ है ॥ १५ ॥

मुहूर्त्तमार्त्तण्डे क्षणिकनक्षत्राणि ।

अह्नः स्युः शिवसार्पमित्रपितरो वस्वम्बुविश्वेऽभिजित्
केन्द्रेन्द्राग्निनिशाचरा अपि जलाधीशोर्यमाख्यो भगः ।
रात्रेः स्युः स्मरहा त्रयोऽजचरणात्पश्चाश्वितोथोदिति-
र्जीवो विष्णुरिनात्रयस्तिथिलवाः कर्मेषु भोक्तं स्मृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ–अब मुहूर्त्तमार्त्तंडोक्त क्षणिक नक्षत्र लिखते हैं–आशय यह है कि दिन और रात्रि दोना मिलकर साठ घटीके होते हैं इन साठ घटीके भीतर तीस ३० क्षण (मुहूर्त्त) होते हैं पन्द्रह दिनमें और पन्द्रह रातमें । इसीलिये कोई दो घटीके एक क्षण मानते हैं और कोई दिन या रात्रिके पन्द्रहवें हिस्सेको मुहूर्त्त या क्षण कहते हैं, यही ठीक है कारण बत्तीससे ऊपर दिनमान या रात्रिमानमें १६–१७ क्षण हो जायँगे न्यूनाधिकरूप आपत्ति होगी । उन्हीं दिन रात्रिके क्षणोंमें नियत रूपसे रहनेवाले नक्षत्रोंको कहते हैं–तहां दिनमें १ आर्द्रा; २ आश्लेषा, ३ अनुराधा, ४ मघा,

५ धनिष्ठा, ६ पूर्वाषाढा, ७ उत्तराषाढा, ८ अभिजित्, ९ रोहिणी, १० ज्येष्ठा, ११ विशाखा, १२ मूल, १३ शतभिषा; १४ उत्तराफाल्गुनी; १५ पूर्वाफाल्गुनी ये पन्द्रह नक्षत्र क्रमसे दिनके पन्द्रह मुहूर्तोंको नियतरूपसे भोगते हैं । रात्रिमें १ आर्द्रा, २ पूर्वाभाद्रपदा, ३ उत्तराभाद्रपदा ४ रेवती, ५ आश्विनी, ६ भरणी, ७ कृत्तिका, ८रोहिणी, ९ मृगशिर, १०पुनर्वसु, ११ पुष्य, १२ श्रवण,१३ हस्त १४ चित्रा १५ स्वाती ये पन्द्रह नक्षत्र रात्रिके पन्द्रहों क्षणोंको नियतरूपसे क्रमपूर्वक भोगते हैं । इन क्षण-नक्षत्रोंमें उन नक्षत्रोक्त कार्य करना चाहिये । आशय यह है कि कोई कार्य जरूर करना है और ज्योतिषके अनुसार उस कार्यके विहित नक्षत्र आनेमें विलम्ब हो तो उस नक्षत्रके मुहूर्तमें करना उत्तम है ॥ १६ ॥

कृषिमुहूर्त्तः ।

उद्वाहर्क्षचरद्विपेन्द्रलघुभत्वाष्ट्रैः शुभा स्यात्कृषि-
र्व्यार्किज्ञारखगाहियुग्मझषगोकन्याविलग्ने तिथौ ॥ १७ ॥

अर्थ–अब कृषि (खेती) करनेका मुहूर्त्त लिखते हैं–विवाहमें विहित जो नक्षत्र हैं उन नक्षत्रोंमें अर्थात् मृगशिर, हस्त, मूल, अनुराधा, रोहिणी, रेवती उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, स्वाती इन नक्षत्रोंमें और पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्विनी, पुष्य, चित्रा इन नक्षत्रोंमें तथा शनि, बुध, मङ्गल इन दिनोंको छोडकर अन्य दिनमें मिथुन, मीन, वृष, कन्या शुभ तिथि प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशीमें कृषिकर्म शुभ होता है यहाँ एक हलचक्रभी प्रथम हल जुतवानेमें देखा जाता है कि सूर्यसे भोगा हुआ जो नक्षत्र है अर्थात् जिस नक्षत्रपर सूर्य हैं उससे पहिले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र अशुभ, फिर आठ नक्षत्र शुभ फिर नौ नक्षत्र अशुभ और आठ शुभ है ॥ १७ ॥

सूर्यभुक्तभाद्धलचक्रम् ।

संख्या	३	८	९	८
फलम्	नेष्ट	श्रेष्ठ	नेष्ट	श्रेष्ठ
भुक्तसंख्या	३	११	२०	२८

चिन्तामणौ क्रयविक्रयमुहूर्तः ।

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ।
पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ॥ १८ ॥

अर्थ–अब क्रयविक्रय मुहूर्त लिखते हैं–खरीदनेके नक्षत्रमें वेचना नेष्ट है तथा वेचनेके नक्षत्रमें क्रय (खरीदना) नेष्ट है । रेवती, शतभिषा, अश्विनी, स्वाती, श्रवण, चित्रा यह नक्षत्र किसी वस्तुके खरीदनेमें शुभ हैं विक्रयका नक्षत्र आगेके श्लोकमें है, यहाँ खरीदने और वेचनेके नक्षत्रोंमें परस्पर भिन्नता है इसलिये यहाँ शंका होती है कि खरीदनेका नक्षत्र होनेपर वेचनेका नक्षत्र नहीं होनेसे वेचनेवाला कैसे वेचेगा ? इसका उत्तर इस प्रकार हो सकता है कि यह क्रय विक्रयका मुहूर्त हरेक दिनका नहीं है किन्तु प्रथम २ किसी वस्तुद्वारा लाभ उठानेके लिये खरीदना हो तो जिस दुकानमें आद्य विक्रयमुहूर्त्त हो जानेके पीछे अनिवार्य (विना मुहूर्त्तके) विक्रय होता हो उससे खरीदनेके नक्षत्रमें लेना । इसी प्रकार जिस खरीदारको अब मुहूर्त्तका जरूरत नहीं है उसके हाथसे वेचनेका आद्य मुहूर्त्तवाला वेच सकता है ॥ १८ ॥

विक्रयविपणिमुहूर्त्तौ ।

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मित्रध्रुवाक्षिप्रभै-
र्लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्व्यायखे ॥ १९ ॥

अर्थ–अब वेचनेका और दुकान लगानेका मुहूर्त्त लिखते हैं–तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा) विशाखा, कृत्तिका आश्लेषा, भरणी इन नक्षत्रोंमें और कुम्भको छोडकर अन्य लग्न ऐसा होना चाहिये कि जिस लग्नसे केन्द्र (प्रथम चतुर्थ, सप्तम, दशम) त्रिकोण (पञ्चम नवम) में शुभ ग्रह हों तथा पाप ग्रह छठे, तीसरे, ग्यारहवें स्थानमें हों, शुभ तिथिमें वेचना शुभ है । रिक्ता ४।९।१४ मङ्गलवार और कुम्भलग्नको छोडकर अन्य तिथि वार लग्नोंमें अनुराधा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और शुक्र लग्नमें हों पाप ग्रह बारहवें आठवेंसे भिन्नमें हों शुभ ग्रह द्वितीय एकादश, दशममें हो ऐसे समयमें दुकान लगाना शुभ होता है ॥ १९ ॥

जलाशयनृत्यमुहूर्त्तौ ।

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ।

आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यम्भोमघैः सेन्द्रभै-
स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥ २० ॥

अर्थ—जलाशयारम्भ और नाच आरम्भका मुहूर्त्त लिखते हैं—अनुराधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पूर्वाषाढा, रेवती, पुष्य, मृगशिर इन नक्षत्रोंमें पाप ग्रह हीनबली हो बृहस्पति या बुध लग्नमें हों, शुक्र दशममें हो चन्द्रमा जलचरराशिमें हो तो सभी जलाशय (वापी, कूप, पोखडा आदियों) का खोदना शुभ है । अब पूर्व जलाशय खननमें जो नक्षत्र लिखे हैं उनमें पूर्वाषाढा और मघाको छोडकर तथा ज्येष्ठाको मिलाकर जितने नक्षत्र हों उन नक्षत्रोंमें अर्थात् अनुराधा, हस्त, उत्तरा तीनों रोहिणी, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा इन नक्षत्रोंमें, चतुर्थस्थानमें शुभ ग्रह हों लग्नमें बुध हो और चन्द्रमा बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)में हो तो पहले पहल वेश्या आदिका नाचना आरम्भ करना शुभ है ॥ २० ॥

सेवामुहूर्त्तः ।

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा खलाभे ।
योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन २१

अर्थ—अब किसीकी सेवा (नौकरी) करनेका मुहूर्त्त लिखते हैं—क्षिप्र (हस्त, अश्वि, पुष्य) मैत्र संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) नक्षत्रोंमें, बुध, शुक्र, रवि, बृहस्पति वारमें लग्नमें शुभ ग्रह हो और दशवें ग्यारहवें स्थानमें सूर्य या मङ्गल हो तथा सेव्य सेवकके नक्षत्रकी योनिमैत्री हो और दोनोंके राशिस्वामी ग्रहोंमें मैत्री हो तो सेवक स्वामीकी सेवा करे ॥ २१ ॥

मूलाश्लेषादिजातफलम् ।

आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये ।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ।२२।

अर्थ—अब मूल तथा आश्लेषा नक्षत्रोंमें उत्पन्न होनेवालेका फल लिखते हैं—मूलके प्रथम चरणमें जन्म होनेसे पिताका नाश होता है, द्वितीय चरणमें माताका तृतीय चरणमें धनका नाश होताहै, चतुर्थ चरणमें शुभ होताहै । परन्तु शान्ति करनेसे सभी चरणमें शुभही होताहै । आश्लेषा नक्षत्रमें जन्मनेवालेको मूलका उलटा फल होताहै अर्थात् प्रथम चरणमें शुभ, द्वितीयमें धननाश, तृतीयमें माताका नाश, चतुर्थ चरणमें पिताका नाश होता है ॥ २१ ॥

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघटचो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पिताऽस्याष्टसमा न पश्येत् ॥२३॥

अर्थ–किसी २ आचार्योंका मत है कि मूलके पहिली आठ घटी और ज्येष्ठाके अन्तके पाँच घटीमें जन्मनेवाले बालकको त्याग कर दे वा त्याग नहीं किया जा सके तो आठ वर्ष पिता उस बालकका मुख नहीं देखै ॥ २३ ॥

गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे
संक्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवाली कुहूदर्शके ।
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभा शान्तितः ॥ २४ ॥

अर्थ–अब जन्मके समय अशुभ दायकोंको लिखते हैं–गण्डान्त (तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त लग्नगण्डान्त) ज्येष्ठा नक्षत्र. शूल योग, पात (महापात) व्याघात, गण्डयोग, अवम (तिथिक्षय), संक्रान्तिदिन, व्यतीपात , वैधृति योग, सिनीवाली और कुहूनामवाली अमावास्या, वज्रयोग, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, यमघण्ट, दग्धयोग, मृत्युयोग, भद्रा, सोदर भाईके जन्मनक्षत्र, पिताके जन्मनक्षत्र इनमें जन्म होनेसे शुभ नहीं है किन्तु शान्ति करनेसे शुभ होता है ॥ २४ ॥

प्रतिष्ठामुहूर्त्तः ।

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे ।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा २५॥
रिक्तारवर्जे दिवसेऽति शस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।
व्यष्टान्त्यगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः २६।

अर्थ–अब प्रतिष्ठामुहूर्त्त लिखते हैं–सौम्यायनमें बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्रके उदय रहते. मृदुसंज्ञक (मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा) क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) ध्रुवसंज्ञक (उत्तरा तीनों, रोहिणी) इन नक्षत्रोंमें, शुक्लपक्षमें वा जिस देवताका जो नक्षत्र, तिथि, क्षण कहा है उसमें, रिक्ता ४ । ९ । १४ तिथि और मंगलवारको छोडकर अन्य तिथि और दिनोंमें, चन्द्रमा और पाप ग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों, शुभग्रह आठवें, बारहवें स्थानको छोडकर अन्य

स्थानमें हो ऐसे समयमें जलाशय (कूप, बावडी, तालाब), बगीचा, देवता इन्होंकी प्रतिष्ठा शुभ है । सिंहलग्नमें सूर्यकी, कुम्भमें ब्रह्माकी, कन्यालग्नमें विष्णुकी प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

दीनानाथः नष्टप्राप्तिप्रश्ने ।

अन्धे द्राग्यत्नतो मन्दे काणे वार्त्ता सुलोचने ।
नाप्तिः कान्न च विट्पातेतीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रके ॥ २७ ॥

अर्थ–अब नक्षत्रोंकी अन्धादि संज्ञा और उनमें चोरी गयी हुई वस्तुओंका प्राप्त होना या नहीं होना आदि लिखते हैं–रोहिणी नक्षत्रसे आरंभ करके कृत्तिका-पर्यन्त अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्रोंकी यथाक्रम अन्ध, मन्द, काण, सुलोचन संज्ञायें होती हैं चक्रमें स्पष्ट है । अन्ध नक्षत्रमें खोई चीज जल्दी मिलती है, मन्द नक्षत्रमें खोई चीज यत्नसे मिलती है, काण नक्षत्रमें वार्त्तामात्र मिले और सुलो-चनमें प्राप्ति नहीं हो अर्थात् वार्त्ताभी नहीं मिले और भद्रा, पात योग या महापात-तीक्ष्णसंज्ञक नक्षत्र (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा), मिश्र (विशाखा, कृत्ति-का) ध्रुव (उत्तरा तीनों, रोहिणी) उग्र (पूर्वतीनों, भरणी, मघा) इन नक्षत्रोंमेंभी खोईहुई चीज नहीं मिलती ॥ २७ ॥

सफलान्धादि संज्ञाचक्रम् ।

रो	पु	उ	वि	पू	ध	रे	अन्ध	शीघ्रलाभ
मृ	आ	ह	अ	उ	श	अ	मन्द	यत्नसेलाभ
आ	म	चि	ज्ये	अ	पू	भ	काण	वार्तामात्र
पु	पू	स्वा	मू	श्र	उ	कृ	सुलोचन	नहीं मिले

मुहूर्त्तचिन्तामणौ वस्त्राभरणधारणम् ।

पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवासवेज्या-
दित्ये प्रवालरदशंखसुवर्णवस्त्रम् ।
धार्यं विरिक्तशनिचन्द्रकुजेह्नि रक्तं
भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥ २८ ॥

अर्थ–अब वस्त्रधारणमुहूर्त्त लिखते हैं–रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें, तथा

रिक्ता (४-९-१४) रहित तिथियोंमें, और शनि, सोम, मङ्गल रहित दिनोंमें प्रवाल (मूँगा) धारण करना दाँत बनवाकर धारण करना, शंखकी चूरी आदि धारण करना सोनेका आभूषण धारण करना और नवीन वस्त्र धारण करना शुभ है परन्तु मङ्गल दिन निन्दित होनेपरभी उसमें पूर्वोक्त वस्तु लाल रङ्गका हो तो धारण करनेमें हर्ज नहीं । अब सधवा स्त्रीके लिये यह विशेष है कि पूर्वोक्त नक्षत्र वारोंमेंसे मंगलवारमें और उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, पुष्य इन नक्षत्रोंमें पूर्वोक्त वस्तु नहीं धारण करे ॥ २८ ॥.

रोगमुक्तस्नानम् ।

ध्यन्त्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ण्ये
रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवीन्दुवारे ।
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं
हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे ॥ २९ ॥

अर्थ-अब रोग छूटने पर प्रथम स्नान मुहूर्त्त लिखते हैं-रेवती, पुनर्वसु, उत्तरा तीनों, रोहिणी, मघा, स्वाती, आश्लेषा इन नौ नक्षत्रोंको छोडकर अन्य यह जो १८ अठारह नक्षत्र हैं उन नक्षत्रोंमें, रिक्ता ४-९-१४ तिथिमें, चरलग्न (मेष, कर्क, तुला, मकर) में और शुक्र तथा चन्द्रवारको छोड अन्य दिनोंमें, चन्द्रमा हीनबली हो, पाप ग्रह ग्यारहवाँ, केन्द्र (१-४-७-१० कोण ९-५) में हो तो जिस मनुष्यको रोग छूट गया हो उसका प्रथम स्नान करना शुभ होता है ॥ २९ ॥

मुहूर्त्तगणपतौ पञ्चकम् ।

धनिष्ठार्धोत्तरं पञ्च ऋक्षेष्वेषु त्यजेद्बुधः ।
याम्यदिग्गमनं शय्या गृहसंगोपनं तथा ॥ ३० ॥

अर्थ-अब पञ्चक लिखते हैं-धनिष्ठानक्षत्रके उत्तरार्धसे लेकर रेवती नक्षत्र पर्यन्त अर्थात् धनिष्ठाका पिछला आधा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती इन साढे चार नक्षत्रोंको पञ्चक कहते हैं इस पञ्चकमें दक्षिण दिशाकी यात्रा, शय्या (खटिया आदि) का निर्माण करना या सोना, तथा घरको तृण (घास) आदिसे आच्छादित करना त्याज्य है, इस पञ्चकमेंभी कहीं ग्रन्थान्तरमें विशेष है । कि धनिष्ठाकी पांच घटी अंत्यकी, शतभिषाकी पांच घटी मध्यकी, पूर्वाभाद्रपदाकी पांच घटी आदिकी, उत्तराभाद्रपदाकी पांच घटी अन्त्यकी और रेवतीकी सम्पूर्ण घटी त्याज्य है ॥ ३० ॥

स्तम्भोच्छ्राय प्रेतदाहं तृणकाष्ठादिसंग्रहम् ।
भवेत्पञ्चगुणं चात्र जातं लब्धं मृतं गतम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त पञ्चकमें स्तंम्भ (खम्भ) गाडना, प्रेतका दाह, तृण (घास) काष्ठ आदिका संग्रह त्याज्य है, और इस पञ्चकमें जन्म, लाभ, मरण, खोयाजाना पञ्च गुण हो जाता है अर्थात् पञ्चकमें किसीके घरमें जन्म हो तो उस घरमें और पाँच जन्मेगा ऐसा जानना, कुछ लाभ हो पाँचगुण और लाभ जानना; कोइ मरे तो पांच और मरेंगे, कोई वस्तु खो जाय तो और पांच गुण खो जायगा ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

मुहूर्तचिन्तामणौ नरपर्णदाहः ।

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नन्दासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ।
याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ॥ ३२ ॥

अर्थ–अब नरपर्णदाह लिखते हैं–नरपर्ण दाह उसको कहते हैं कि कोई मनुष्य विदेशमें मर जाय या किसी कारणसे इस प्रकारसे मृत्यु हो जिससे उसकी लास न मिले और अस्थि आदिभी खोजने पर नहीं मिले तो उसकी प्रेतक्रिया नरपर्ण दाह द्वारा होनी चाहिये जो कि धर्मशास्त्रोंमें पलास पत्रसे प्रत्येक अंगको अपनी २ नियत संख्यासे निर्माण करना लिखा है उसीके दाह करनेका मुहूर्त्त इस श्लोकमें लिखा है, शुक्र, मंगल, शनि इन दिनोंमें नरपर्णदाह नहीं करना । अमावास्या, चतुर्दशी, त्रयोदशी, नन्दा (१–६–११) इन तिथियोंमें नहीं करना । मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, पूर्वा तीनों, भरणी, मघा, रेवती, शतभिषा इन दश नक्षत्रोंमें त्रिपुष्करयोगमें नरपर्णदाह नहीं करना । क्षयमास तथा अधिक मास (मलमास) में नहीं करना । वर्षसे ऊपर होनेपर याम्यायनमें भी नहीं करना अर्थात् वर्षके भीतर नरपर्ण दाह करना हो तो याम्यायनमें भी हो सकता है । पात योग, परिध योगमें भी नहीं करना । बृहस्पति और शुक्रके अस्तमें नहीं करना । भद्रा (विष्टि) करण, वैधतियोगमें नहीं करना और शुक्लपक्षमेंभी नरपर्ण दाह नहीं करना ॥ ३२ ॥

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखान्तेऽब्जे च कर्तुर्नस-
न्मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाब्याङ्घ्रिभे ज्ञेऽपि च ।

श्रेष्ठोऽर्केज्यविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये तथा
त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथा सम्भवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त नरपर्णदाह करनेवालेकी जन्मतारा और प्रत्यरि (पञ्चम) ताराके दिन नहीं होना चाहिये तथा आठवां, चौथा, बारहवाँ चन्द्रमामें नहीं करना । अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, रोहिणी, विशाखा और दो चरणके जो नक्षत्र हैं अर्थात् जिन नक्षत्रोंके दो चरण एक राशिमें और दो चरण दूसरे राशिमें हो । जैसे कि मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें और बुधवारमें नरपर्णदाह मध्यम होता है । रवि, बृहस्पती, सोम इन दिनोंमें श्रवण, हस्त, स्वाती, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रोंमें नरपर्णदाह श्रेष्ठ है । अशौच बीतजाने पर यह सब विचार करना चाहिये अशौचके भीतर जैसा कुछ अच्छा मुहूर्त्त मिल जाय उसीमें नरपर्णदाह करके अशौचप्रार्त्ति कर उसकी प्रेतक्रिया करै ॥ ३२ ॥

नागबलिः- धर्मसिन्धौ ।

अमावास्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां श्रवणयुक्तनवम्यां वा कार्यः ॥ ३३ ॥

अर्थ–अब नागबलि करनेको लिखते हैं–अमावस्या, पूर्णिमा, पञ्चमी या श्रवणयुक्त नवमीमें नागबलि करना चाहिये ॥ ३३ ॥

संक्रान्तौ पुण्यं दीनानाथः ।

पाऽर्श्वेऽह्नार्द्धस्तुलेजेऽर्के कर्क्येऽगे प्राक्परेऽन्यगे ।
निशाद्यान्त्यत्रिनाडीषु मृगेऽजे पुण्यदोऽन्यथा ॥ ३४ ॥

अर्थ–अब संक्रान्तिके पुण्यकाल लिखते हैं– तुला और मेषकी संक्रान्तिकालसे दोनों तरफ दिनार्द्धतुल्य पुण्य काल होते हैं अर्थात् दिनके चौथाई भाग संक्रान्तिसे पूर्व और उतनेही घटी पश्चात् पुण्यकाल होते हैं (अन्य ग्रन्थोंमें आठ घटी पूर्व और आठही घटी पर पुण्यकाल माना है) कर्क और स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) इन पाँचों राशियोंकी संक्रान्तिसे पूर्व दिनार्द्धतुल्य पुण्यकाल होते हैं । अब ऊपर कहे सात राशियोंसे भिन्न जो पाँच राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मकर, मीन) की संक्रान्तिकालसे पीछे दिनार्द्धतुल्य पुण्यकाल होते हैं । अब रात्रिकी आदि और अन्त्यकी जो तीन २ घटी अर्थात् सायंसन्ध्या प्रातः सन्ध्या कहे हैं उनमें सायंसन्ध्यामें यदि मकर संक्रान्ति हो, और प्रातः सन्ध्यामें यदि कर्क संक्रान्ति हो तो उलटा पुण्यकाल होता है अर्थात् सायं सन्ध्यामें मकरसंक्रान्ति होनेसे परदिन (आगेके दिन) में दिनार्द्धपर्यन्त पुण्यकाल और प्रातः सन्ध्यामें

कर्ककी संक्रान्ति होनेसे पूर्वदिन (पहिलादिन) के परार्द्धमें पुण्यकाल होता है । सारांश यह है कि रात्रिमें संक्रान्ति होनेपरभी स्नान दानादि निषिद्ध होनेसे रात्रिमें पुण्यकाल नहीं होता है किन्तु रात्रिके पूर्वार्द्धमें किसी समय मकर कर्कसंक्रान्तिको छोडकर अन्य दश संक्रान्तियोंमेंसे कोई संक्रान्ति हो तो उसी दिनके परार्द्ध भागमें (दो पहरसे सायंकालपर्यन्त) पुण्यकाल होता है तथा रात्रिके परार्द्धमें पूर्वोक्त संक्रान्ति होनेसे परदिनमें दिनार्द्धपर्यन्त पुण्यकाल होता है, यदि ठीक रात्र्यर्द्धके समय संक्रान्ति हो तो दोनों दिन पुण्यकाल होते हैं अर्थात् पूर्वदिनके उत्तरार्द्ध और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होते हैं मकर और कर्ककी संक्रान्तिमें यह विशेष है कि सूर्यास्तसे पीछे और सूर्योदयपर्यन्त किसी समय रात्रिमें मकर संक्रान्ति हो तो परदिन दिनार्द्ध पर्यन्त पुण्यकाल होता है, और पूर्वोक्तकालमें कर्कसंक्रान्ति हो तो पूर्व दिनकेही उत्तरार्द्धम पुण्यकाल होता है । रात्रिकी संक्रान्ति होनेमें बारहों राशियोंके यही नियम हैं । दिनकी संक्रान्तिमें पुण्यकालका नियम ऊपर ही लिख चुका हूँ तथाऽपि इतना विशेष है कि पुण्यकालकाभी जो भाग रात्रिमें पड जाता है वह पुण्यकालसे बाहर कर दिया जाता है अवशेष जो दिनके भागमें पडते हैं वही पुण्यकालमें लिये जाते हैं उदाहरणके लिये संवत् १९७४ श्रावणकृष्ण त्रयोदशी चन्द्रवारके दिन कर्कसंक्रान्ति दो २ घटी, २१ इक्कीस पलापर हुई है और कर्कका पुण्यकाल पूर्व दिनार्द्ध तुल्य लिखा है सो यहां पूर्व भागके अधिकतर पुण्यकाल रात्रिमें चले जानेसे केवल सूर्योदयसे दो २ घटी २१ पल पर्यन्तही पुण्यकाल जानना ॥ ३४ ॥

गोचरे चिन्तामणौ नवग्रहमुद्रिका ।

वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ता प्रवालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम् ।
केतौ वैडूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिःप्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये।३५।

अर्थ–अब नवग्रहोंके प्रीत्यर्थ नव रत्न धारण लिखते हैं– पहिले वर्त्तुलाकार मुद्रिका (अंगूठी) बनवाकर उसपर दो रेखा तिर्यक् और दो रेखा सूधी खैंचकर नौ भाग करै ऐसे नौ भागोंमें नव रत्न धारण इस प्रकार है कि शुक्रके प्रीत्यर्थ वज्र (हीरा) पूर्व दिशामें धारण करै, चन्द्रमाके प्रीत्यर्थ उत्तम मुक्ता (मोती) आग्नेय कोणमें, मङ्गलके लिये प्रवाल (मूँगा) दक्षिणदिशामें, राहुके लिये गोमेद नैर्ऋत्यकोणमें शनिके लिये नीलमणि (नीलम) पश्चिममें केतुके निमित्त वैडूर्य वायव्य कोणमें गुरुके प्रीत्यर्थ पुष्पकमणि (पुखराज) उत्तरमें, बुधके अनिष्टमें प्रीत्यर्थ पाचिमणि ईशानकोणमें, सूर्यके प्रीत्यर्थ माणिक्य मध्यभागमें धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

दीनानाथः।

जन्मर्क्षाच्च त्रिरावृत्त्या तारा नेष्टाः क१ गा ३ म ५ साः ७ ॥
तारयेन्दुर्विधोः सूर्यः परे सूर्यबलाच्छुभाः ॥ ३६ ॥

अर्थ–अब ताराज्ञान और त्याज्य तारा लिखते हैं–जिस दिन जिस समयमें यह जानना होय कि, मेरी कौनसी तारा है तो उस समयका नक्षत्र पञ्चाङ्गमें देख लेना। जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र पर्यन्त अपना जन्म नक्षत्रसे गिने पहिली आवृत्तिमें नौतक दूसरी आवृत्तिमें दशसे अठारहतक, तीसरी आवृत्तिमें उन्नीससे सत्ताईसतक गिनै जिस आवृत्तिके जिस संख्यामें दिननक्षत्र पडे उसी संख्याकी तारा जाननी चाहिये। नवों तारोंके नाम इस प्रकार हैं- १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मैत्र, ९ अतिमैत्र। इनमें इन नवों ताराओंमें पहिली, (जन्म) तीसरी (विपत्ति,) पाँचवीं (प्रत्यरि) और सातवीं (वध) ये चार तारायें नेष्ट हैं। अब चन्द्रमाकी संक्रान्तिके समय (अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें जानके समय अपनी जन्म नक्षत्रसे तारा शुभ होता हो तो दुष्ट चन्द्रकोभी शुभ जानना और सूर्यकी संक्रान्ति समय चन्द्रमा शुभ होय तो अनिष्ट सूर्यभी शुभ होता है, तथा अन्य ग्रहोंके संक्रमणकालमें यदि गोचरसे सूर्य शुभ हो तो अन्य अनिष्ट ग्रहभी शुभ फल देते हैं ॥ ३६ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे।

तदर्चनाद्वा द्विजदेववन्दनाच्छ्रेयस्कथाकर्णनतो मखेक्षणात्।
होमाज्जपादागमपाठदानतो न पीडयन्त्यङ्गभृतः खगामिनः ३७

अर्थ–जो ग्रह अनिष्ट होते हैं वे अपनी पूजासे, या ब्राह्मण देवताकी वन्दनासे उत्तम कथा (पुराणोपपुराणादि) के सुननेसे, यज्ञ देखनेसे, होम करनेसे, जप करनेसे, आगम (पुराणादि) के पाठ करनेसे और दान करनेसे शरीरधारीको पीडा नहीं करते हैं ॥ ३७ ॥ इति गोचरप्रकरणम्।

प्रथमरजःस्नानमुहूर्त्तः गणपतौ।

पुनर्वसौ तथा चित्राज्येष्ठापुष्याभिधेषु च।
रोहिणीद्वितये स्वात्यां हस्तर्क्षे रेवतीद्वये ॥
स्नायादृतुमती नारी शुभवारे शुभे तिथौ ॥ ३८ ॥

अर्थ–प्रथम ऋतु प्राप्त स्त्रीके स्नान मुहूर्त्त लिखते हैं–पुनर्वसु, चित्रा, ज्येष्ठा, पुष्य, रोहिणी, मृगशिर, स्वाती, हस्त, रेवती अश्विनी इन दशों नक्षत्रोंमें शुभदिन और शुभ तिथिमें पहिली ऋतुवाली स्त्री स्नान करे ॥ ३८ ॥

फलदानं मुहूर्त्तमार्त्तण्डे ।

स्वस्त्रीं प्राङ्निट्चतुष्कात्समादिनविवरश्राद्धतत्प्राग्दिनानि
त्यक्त्वा मूलं मघान्त्ये वसुकलिजनिभाहानि पर्वाणि चार्तौ ।
याहीज्यार्केन्दुलग्नैर्विषमभलवकैरुद्धलैर्भो सुतार्थैन्
व्यस्तैरेतैरिहैवायुगहनि मुदितः कन्यकेच्छः सुचन्द्रे ॥ ३९ ॥

अर्थ–ऋतुमती होनेके पीछे अपनी स्त्रीसे संभोगका मुहूर्त्त लिखते हैं–सोलह रात्रिपर्यन्त स्त्री ऋतुमती रहती है उनमें पूर्वकी चार रात्रि, विवर दिन, श्राद्धदिन और श्राद्धसे पूर्व दिन, मूल, मघा, रेवती, नक्षत्र अष्टमी चतुर्दशीतिथि, जन्मनक्षत्र और जन्मदिन, पर्वदिन इनको छोडकर अन्य नक्षत्रादिकोंमें बृहस्पति सूर्य चन्द्र और लग्न ये चारों विषम राशि और विषम राशिके नवांशमें बली होकर स्थित हों ऐसे समयमें पुत्रकी इच्छावाला पुरुष अपनी स्त्रीके पास जाय । यदि उपरोक्त बृहस्पति आदि चारों समराशि और समराशिके नवांशमें हो विषमदिन हो उत्तम चन्द्रमा हो तो कन्याकी इच्छावाला पुरुष हर्षित होकर स्त्रीके पास जाय ॥ ३९ ॥

त्रिविक्रमे ।

सीमन्तोन्नयनं कार्यमादित्ये गुरुभौमयोः ।
मृगे पुनर्वसौ हस्ते पुष्ये मूले च वैष्णवे ॥ ४० ॥
मासेषष्ठेऽष्टमे वापि नवमे वा कुलक्रमात् ।
संस्कारः प्रथमे गर्भे पुंलग्ने पुंनवांशके ॥ ४१ ॥

अर्थ–अब प्रथम गर्भवाली स्त्रीके सीमन्तोन्नयन संस्कारका मुहुर्त्त लिखते हैं–सूर्य, गुरु और मंगल इन तीनों वारमें मृगशिर, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य, मूल, श्रवण इन नक्षत्रोंमें छठे, आठवें, नववें मासोंमेंसे जिसमें अपने कुलमें रिवाज हो, पुरुष-राशिके लग्न और नवमांशमें पहिले गर्भवाली स्त्रीका सीमन्तोन्नयन संस्कार शुभ होता है । द्वितीयादि गर्भमें संस्कारकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

जातनामकरणं मुहूर्त्तमार्त्तण्डे ।

सूतौ जातं विदध्यादपि जनिमरणाशौचके वा तदन्ते
क्षिप्रेब्राह्म्योत्तराभिश्वरमृदुभिरथो नामवर्णं विदध्युः ।
सूतेः सूर्याष्टिविंशाकृतिमितदिवसे जातभैर्वा चराङ्गं
रिक्ताष्टम्यारमन्दान्व्ययगतखचरं प्रोह्य रात्रिं पराह्णम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–जातकर्म और नामकर्म संस्कार लिखते हैं–जातकर्म संस्कार जिसी समय बालक जन्मे उसी समय करना चाहिये चाहे उस समय जननाशौच और मरणाशौच प्राप्तभी हो । यदि जन्मके समय पिताकी अनुपस्थिति या और किसी कारणसे न हो सके तो जन्मे हुए बालकका जननाशौचान्तमें हस्त, अश्विनी, पुष्य, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें जातकर्म करै जन्मदिनसे बारहवें, सोलहवें बीसवें और बाईसवें दिनमें, जातकर्मोक्त नक्षत्रोंमें चरलग्न (मेष, कर्क, तुला, मकर), रिक्ता ४ । ९ । १४ और अष्टमी तिथि, मङ्गल और शनिवार, बारहवें स्थानमें ग्रह, रात्रिके समय और अपराह्ण (दो पहरसे ऊपरके) समयको छोडकर नामकर्मसंस्कार करे ॥ ४२ ॥

सूतीस्नानं चिन्तामणौ ।

पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु सूती स्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु
शस्तम् । नार्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्रज्ञसौरिवसुषड्-
विरिक्ततिथ्याम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–अब प्रसूतिका स्त्रीके प्रथम स्नानमुहूर्त्त लिखते हैं–रेवती, उत्तरा तीनों, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें, रवि, बृहस्पति मंगल इन तीन दिनोंमें सूतीस्नान शुभ होता है । आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल, चित्रा इन नक्षत्रोंमें सूतीस्नान वर्जित है, बुध और शनिवारमें, तथा अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी और रिक्ता तिथिमें सूतीस्नान नहीं करना चाहिये ॥ ४३ ॥

जलपूजामुहूर्त्तः कल्पद्रुमे ।

चैत्रे पौषे चाधिके शुक्रगुर्वोमौढ्ये सूती पूजयेन्नैव नीरम् ।
मैत्रेज्यार्कादित्यचान्द्रश्रवोभे मूले तत्सत्सद्दिने मासपूर्तौ ॥ ४४ ॥

अर्थ–अब प्रसूती स्त्रीके जलपूजामुहूर्त्त लिखते हैं–आशय यह है कि, प्रसूती स्त्रीके अपने २ जातीय सूतक निवृत्त होनेपरभी सूतीस्नान ऊपर लिखा गया है

परन्तु मासपर्यन्त उसका स्पर्श किया हुआ जलादि देव पितरके कार्यमें लाना निषिद्ध है इसलिये मासादिन बीत जानेके पीछे जलका पूजन मुहूर्त्त देखकर जलका पूजन करे और उसी दिनसे अपना स्पर्श किया हुआ जलको देव पूजनादिके कामोंमें लावे उसका मुहूर्त्त इस प्रकार है—मास पूरा हो जानेपरभी यदि चैत्र, पौष, अधिक मास (मलमास) रहे, या गुरु और शुक्रका अस्त हो तो जबतक यह सब रहे तबतक जलका पूजन नहीं करे । अनुराधा, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिर, श्रवण, मूल इन नक्षत्रोंमें और शुभ दिनमें जलपूजा करे शुभ होता है ॥ ४४ ॥

अन्नप्राशनं चिन्तामणौ ।

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ च मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् ४५

अर्थ—अब बालक या कन्याके प्रथम अन्न खानेका मुहूर्त्त लिखते हैं—बालकका जन्मसे छठे महीनेसे सम मासमें अर्थात् छठे, आठवें, दशवें और बारहवें महीनेमें तथा कन्याका पाँचवें माससे विषम मासमें अर्थात् पाँचवें, सातवें, नवमें, ग्यारहवें महीनेमें रिक्ता ४ । ९ । १४ नवमी, अष्टमी, अमावास्या, द्वादशी इन तिथियोंको छोडकर अन्य तिथियोंमें शनि, मङ्गल, रवि इन वारोंको छोडकर अन्य दिनोंमें जिसको अन्न खिलाना है उसके जन्मराशि और जन्मलग्नसे आठवीं जो राशि हो उसको और मीन, मेष, वृश्चिकलग्नको छोडकर अन्य लग्नोंमें उत्तरा तीनों, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें बालक या कन्याका प्रथम अन्न खाना शुभ होता है ॥ ४५ ॥

कर्णवेधः ।

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मताराम्तुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा ।
जन्माह्नात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेन्दुशुक्रेज्यवारे-
ऽथौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ४६

अर्थ—अब बालक या कन्याके कान छेदानका मुहूर्त्त लिखते हैं—चैत्र, पौषमास, अवम (तिथिका क्षय), हरिशयन (आषाढ शुक्ल एकादशीसे कार्तिक शुक्ल एका-

दशीपर्यन्त चार मास) जन्मका मास, रिक्ता ४ । ९ । १४ । तिथि, सम (द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि) वर्ष और जन्मकी तारा इन सबोंको छोडकर जन्मसे छठे, सातवें, आठवें महीनेमें या जन्मदिनसे बारहवें या सोलहवें दिनमें, बुध, चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति इन दिनोंमें श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध शुभ होता है । अथवा विषम (तृतीय, पञ्चम, सप्तम आदि) वर्षमें पूर्वोक्त चैत्रमासादिको छोडकर और विहित दिन नक्षत्रादिकोंमें कर्णवेध शुभ होता है ॥ ४६ ॥

चौलाक्षरारम्भौ मुहूर्त्ततत्त्वे ।

क्षौरायह्नीन्द्रचित्रान्त्यशशिलघुचरे व्युअनन्दाष्टरिक्ते
व्यष्टान्त्यैष्टैः खलैर्व्यायारिपुषु विमधौ मौञ्जिमासे तु चौलम् ।
जन्माधानौजवर्षेऽककुजशनियमाहेऽपि विप्रादिचौलं
नान्तर्वत्न्याः सुतेऽथो ज्वरवति न जनन्यार्तवे मङ्गलं सत् ॥
मित्रादित्यर्कचित्राश्विशिवहरिमरुत्पूषभैः पञ्चमेऽब्दे
मौञ्जी तिथ्यह्नि मासेष्वपि विचरतनावक्षरारम्भ इष्टः ॥ ४७ ॥

अर्थ—अब चौल (प्रथम २ बालकका केश कटाना) और अक्षरारम्भका मुहूर्त लिखते हैं—क्षौरकर्ममें उक्त जो दिन हैं उन (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) दिनोंमें, ज्येष्ठा, चित्रा, रेवती, मृगशिर, हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें द्वादशी नन्दा १।६।११, अष्टमी रिक्ता ४।९।१४ इन तिथियोंको छोडकर अन्य तिथियोंमें चूडाकरणसमयके लग्नसे आठवें और बारहवें स्थानमें कोईभी शुभ ग्रह नहीं होय तथा पाप ग्रह तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थानमें हो और मौञ्जीबन्धन (उपनयन) में कहे हुए जो मास हैं उनमेंसे चैत्रको छोडकर और शेष (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ) इन मासोंमें जन्मसे या गर्भसे विषम (तीसरे, पाँचवें, सातवें) वर्षोंमें चौल (चूडाकरण) शुभ होता है तथा ब्राह्मणको रविदिन, क्षत्रियको मङ्गलदिन, वैश्य शूद्रको शनिदिनमेंभी चौलकर्म शुभ होता है परन्तु लडकेकी माता गर्भवती हो या ऋतुमती हो या बालक स्वयं ज्वरादिरोगोंसे पीडित हो तो उस समय मङ्गल कार्य करना शुभ नहीं है । अनुराधा, पुनर्वसु, हस्त चित्रा, अश्विनी, आर्द्रा, स्वाती, रेवती इन नक्षत्रोंमें पाँचवें वर्षमें और उपनयनमें विहित जो तिथि, वार, मास है उनमें तथा चर (मेष, कर्क, तुला, मकर) लग्नोंको छोडकर अन्य लग्नोंमें बालकको अक्षरारम्भ कराना शुभ होता है ॥ ४७ ॥

अथ मौञ्जीबन्धो मार्त्तण्डे ।

विप्रादेर्गर्भतोऽब्देष्टशिवरविमिते जन्मतो वा व्रतं स्या-
द्वानिष्टेऽपि जीवेऽनिमिषरविमधौ कार्यमब्दस्य दार्ढ्यात् ।
शुक्ले माघादिपञ्चस्विनशुभदिवसे प्राग्दलेऽह्नो व्रतं सत्
त्यक्त्वानध्यायरिक्तातिथिमुनिमदनांश्चन्द्रभागं प्रदोषम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-अब मौञ्जीवन्धन (उपनयन) का मुहूर्त्त लिखते हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंही वर्णोंका उपनयन संस्कार शास्त्रसिद्ध है इसीलिये गर्भसे या जन्मसे ब्राह्मणका अष्टम वर्षमें क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें वैश्यका बारहवें वर्षमें गुरु-शुद्धि नहीं होनेपरभी व्रतवन्ध (उपनयन) शुभ होता है । यदि वर्ष अधिक हो गया हो तो मीनके सूर्य रहते चैत्रमासमें करनेसे उत्तम होता है । शुक्लपक्षमें माघसे (मकरसंक्रान्तिसे) लेकर हरिशयनपर्यन्तके महीनेमें, रवि और शुभ (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र,) दिनमें दिनके दोपहरसे पहिले, अनध्याय (सन्ध्यागर्ज आदि) रिक्ता ४।९।१४ पूर्णिमा, सप्तमी त्रयोदशी कर्कका नवमांश और प्रदोष इनको छोडकर व्रतन्बधन शुभ होता है ॥ ४८ ॥

शस्तो द्वीशाग्निशाकान्तकपितृरहितैः सर्वभैर्मौञ्जिबन्धो
वेदेशे ज्ञे बलाढ्ये गुरुसितकुजवित्संज्ञका वेदपाः स्युः ।
चन्द्रक्रूरा विलग्ने शशिसिततनुपाः षष्ठगेहे सितोऽन्त्ये
सर्वे रन्ध्रे वटुघ्नाः क्व च तनुग इनः श्रेष्ठ उच्चेन्दुरेके ॥४९ ॥

अर्थ-विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, भरणी, मघा इन पाँचों नक्षत्रोंको छोडकर अन्य सभी नक्षत्रोंमें, अपने २ वेदके स्वामी और बुधके बली होनेमें उपनयन शुभ होते हैं । चारों वेदके क्रमसे गुरु, शुक्र, मंगल, बुध ये चार ग्रह स्वामी हैं यथा ऋग्वेदका स्वामी गुरु, यजुर्वेदका स्वामी शुक्र, सामवेदका स्वामी मङ्गल, अथर्ववेदका स्वामी बुध हैं । चन्द्रमा और पाप ग्रह लग्नमें. चन्द्रमा, शुक्र और लग्नका स्वामी छठे स्थानमें, शुक्र बारहवें स्थानमें और सब ग्रह अष्टम स्थानमें॰ बालकको मारनेवाले होते हैं । किसी आचार्यका मत है कि पहिले जो लग्नमें चन्द्रमा और पाप ग्रहको अशुभ कहा है उसमें रवि पाप होनेपरभी लग्नमें श्रेष्ठ है और चन्द्रमा यदि उच्च (वृष) का होकर लग्नमें हो तो श्रेष्ठ होता है यहभी किसी आचार्यका मत है ॥ ४९ ॥

केशान्तमौञ्जीविमोक्षच्छुरिकाबन्धनानि ।

केशान्तं चौलवत्स्यान्नृपमितशरदीत्याहुरार्या व्रतोक्ते
काले मौञ्जीविमोक्षो गुरुबलमनयोर्नावलोक्यं सुधीभिः ।
शूद्राणां मौञ्ज्यभावात्तदुदिततिथिभेऽनस्तभौमेज्यशुक्रे-
ष्वारे वारे लवे मास्युपयमविहिते छूरिकाबन्धमाहुः ॥ ९० ॥

अर्थ-अब केशान्तकर्म, मौञ्जीमोक्षण और छुरिकाबन्धन मुहूर्त्त लिखते हैं-जन्मसे सोलहवें वर्षमें चूडाकरणमें जो मुहूर्त्त उक्त है उसी मुहूर्त्तमें केशान्तकर्म पण्डितोंने कहे हैं सोलहवें वर्षमें व्रतबन्धमें जो समय लिखा है उसी समयमें मौञ्जी मोक्षण शुभ होता है परन्तु इन दोनों कर्म (केशान्त, मौञ्जीमोक्षण) में गुरुबल पण्डितोंसे देखने योग्य नहीं है अर्थात् गुरुबल नहीं देखा जाता है । शूद्रोंके मौञ्जीबन्ध नहीं होनेके कारण मौञ्जीबन्धमें उक्त जो तिथि नक्षत्र हैं उन्हीं तिथि नक्षत्रोंमें, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र इन तीनोंके उदित रहनेके समयमें, मंगलको छोड अन्य वारोंमें, लग्नमें मंगलका नवांश छोडकर विवाहमें विहित जो मास हैं उन्हीं मासोंमें छुरिका बन्धन कहे हैं ॥ ९० ॥

चिन्तामणौ ।

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥ ९१ ॥

अर्थ-अब शुभकार्योंमें जन्ममासादि निन्द्य कहे हैं तहां मौञ्जीबन्धनमें विशेष लिखते हैं--जन्मका नक्षत्र, जन्मका मास और जन्मका लग्न आदिमें उपनीत ब्राह्मणका बालक विद्याधिक होता है परन्तु क्षत्री और वैश्योंके द्वितीयादि गर्भसे उत्पन्न होनेवाला विद्याधिक होता है आदि प्रथम गर्भोत्पन्न नहीं ॥ ९१ ॥

शाखेशवारतनुवीर्यमतीवशस्तं
शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् ॥ ९२ ॥

अर्थ-अपने वेदके स्वामीके वार, लग्न और गोचरीय बल अत्यन्त शुभ होते हैं । शाखेश (निज वेदका स्वामी) सूर्य, चन्द्र, बृहस्पतिके बलवान् रहते यज्ञोपवीत शुभ होता है ॥ ९२ ॥ इति संस्कारप्रकरणम् ॥

अथ विवाहे दीनानाथः ।

उपकारादाश्रमाणां गृहस्थाश्रम उत्तमः ।
सुशीलनार्यधीनः सः शीलं कालात्त्रिवर्गदम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–अब विवाहके विषय लिखते हैं–शास्त्रमें ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास ये चार आश्रम बताये हैं परन्तु गृहस्थाश्रमहीसे अन्य तीन आश्रमधारियोंको उपकार होता है इसी लिये सभी आश्रमोंसे गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, वह गृहस्थाश्रम सुंदरशीलवती स्त्रीके अधीन है, और वह त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) को देनेवाला शील काल (समय) के अधीनसे होताहै अर्थात् उत्तम समयमें विवाह होनेसेही अच्छी शीलवती स्त्री होती है, इसलिये विवाहमुहूर्त्तप्रकरण लिखते हैं ॥ ५३ ॥

गोत्रशुद्धिः सपिण्डत्वं शीलं सामुद्रिकाणि च ।
वीक्ष्यं वाग्दानतः पूर्वं जातकादिभमेलकम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–गोत्रशुद्धि, सपिण्डता, शील (चालचलन), सामुद्रिक (मस्तक हस्त पादादिके चिह्नोंद्वारा सौभाग्य वैधव्यादि) और जातकादि (जन्मपत्रद्वारा सौभाग्य वैधव्यादियोग) और दोनों वरकन्याके नक्षत्र मिलान ये सब वाग्दानसे पूर्वही देखना चाहिये ॥ ५४ ॥

मेलनम् ।

वर्णो वश्यो भयोनी च ग्रहमैत्री गणस्य च ।
कूटं नाडी गुणाध्याः स्युर्जायाधिकगुणाः शुभाः ॥ ५५ ॥

अर्थ–मेलन (क्या २ विषय वर कन्याका मिला उसंको) लिखते हैं–१ वर्ण (ब्राह्मणादि) २ वश्य (जलचर द्विपदादि) ३ भ (तारा) ४ योनि, ५ ग्रहमैत्री, ६ गण, ७ भकूट, ८ नाडी ये आठों शुद्ध होनेपर एक एक गुण अधिक होते हैं। अर्थात् वर कन्या दोनोंके वर्ण शुद्ध होनेसे एक गुण, वश्य शुद्ध होनेसे दो गुण, तारा शुद्ध होनेसे तीन गुण, योनि शुद्ध होनेसे चार गुण, ग्रहमैत्रीसे पाँच गुण, गणमैत्रीसे छः गुण, भकूट शुद्ध होनेसे सात गुण, नाडी शुद्ध होनेसे आठ गुण होते हैं, सब शुद्ध होनेपर ३६ गुण जोडनेसे होते हैं । तिसमें अठारह १८ से अधिक गुण होनेसे विवाह शुभ होता है ॥ ५५ ॥

अथ वर्णवश्यगणतारागुणज्ञानम् ।

ना सन्वर्णोत्तमो दैत्यैर्नरि देवे मृतिः कलिः ।
अन्योन्यर्क्षौघनन्दाप्तं त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥ ५६ ॥
वश्यो राशिरूपव्यवहारात ।

अर्थ-यदि कन्याके वर्णसे वर (पुरुष) का वर्ण उत्तम हो तो शुभ जानना। खुलासा यह है कि राशिके अनुसार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) नीचे चक्रमें लिखे हैं उससे वर और कन्या दोनोंकी जन्म राशिसे वर्ण नियम कर ले तब कन्याके वर्णसे वरका वर्ण ऊँचा हो या दोनों एकही वर्ण हों तो एक गुण होता है और कन्याके वर्णसे वरका वर्ण नीच हो तो शून्य गुण जानना। यहाँ किसी आचार्यका मत है कि कन्यासे वरका वर्ण उत्तम होनेपर एक गुण, एक होनेपर आधा और हीन होनेसे शून्य परन्तु व्यवहारमें पूर्वोक्त लिया जाता है। अवश्यके गुण दो होते हैं परन्तु राशिके रूप और व्यवहारसेही वश्य जाना जाता है, जैसे कि बारह राशियोंमें पाँच भेद हैं वह इस प्रकार हैं कि मेष, वृष चतुष्पद हैं। मिथुन, कन्या, तुला, धनु, कुम्भ ये पाँच राशि द्विपद (मानव) हैं। कर्क, मकर, मीन ये तीन राशि जलचर हैं। सिंह वनचर है और वृश्चिक (सरीसृप) कीट है। यहाँ विशेष यह है कि धनुका पूर्वार्द्ध द्विपद और उत्तरार्द्ध चतुष्पद तथा मकरका पूर्वार्द्ध चतुष्पद और उत्तरार्द्ध जलचर है। इसी परसे आगेके चक्रद्वारा गुण निकाल लेना। गण मैत्रीका विचार इस प्रकार है कि आगेके ६१ वें श्लोकमें नक्षत्रोंके अनुसारसे देव, मनुष्य, राक्षस इन तीन गणोंका विधान किया है उनमें दैत्यंगण और मनुष्यगणमें परस्पर सम्बन्ध होनेसे मनुष्यगणकी मृत्यु होती है और राक्षस, देवमें परस्पर कलह (टण्टा) होता है इसका भी गुण निकालनेके लिये चक्र नीचे है। वर कन्या दोनोंका गण देखकर दोनोंके सामनेका अङ्क ले लेना। ताराके गुण जाननेका प्रकार यह है कि कन्याके नक्षत्रसे वरके नक्षत्र पर्यन्त गिने और वरके नक्षत्रसे कन्याके नक्षत्र पर्यन्त गिने दोनों संख्यामें नौका भाग देनेसे यदि तीन ३, पाँच ५, और सात ७ शेष रहे तो अशुभ जानना। इसकाभी गुण लानेका प्रकार यह है कि दोनोंकी तारा अशुभ होय तो शून्य गुण, एककी तारा शुभ और एककी अशुभ होय तो डेढ गुण, दोनोंकी तारा शुभ होनेसे तीन गुण होते हैं चक्रमें स्पष्ट है ॥ ५६ ॥

जन्मराशितो वर्णज्ञानम् ।

वर्णाः	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
राशयः	कर्क वृश्चिक मीन	मेष सिंह धनु	वृष कन्या मकर	मिथुन तुला कुम्भ

वर्णगुणज्ञानचक्रम् ।

		वरस्य.			
		ब्रा.	क्ष.	वै.	शू.
कन्यायाः	ब्रा.	१	०	०	०
	क्ष.	१	१	०	०
	वै.	१	१	१	०
	शू.	१	१	१	१

वश्यगुणज्ञानचक्रम् ।

		कन्यायाः ।				
वरस्य	संज्ञा	चं.	मा.	ज.	व	की.
	चतुष्पद	२	॥	१	॥	१
	मानव	०	२	०	०	०
	जलचर	१	०	२	२	२
	वनचर	०	०	२	२	०
	कीट	१	०	०	०	२

वरस्य ।

	संज्ञा	देव	मनु	राक्षस
कन्यायाः ।	देव	६	५	१
	मनु	६	६	०
	राक्ष	१	०	६

तारागुणाः

तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	२	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	१॥
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

अथ योनिः ।

अश्विनी शतभं चाश्वः स्वातिहस्तश्च कासरः ।
पूभा धनिष्ठा सिंहः स्याद्रेवती भरणी गजः ॥ ५७ ॥
पुष्यश्च कृत्तिका छागः श्रुतिः पूषा च मर्कटः ।
उषाऽभिजित्स्यान्नकुलः सर्पः स्याद्रोहिणी मृगः ॥ ५८ ॥
आर्द्रा मूलमपि श्वान एणो ज्येष्ठानुराधका ।
मार्जारोऽदितिराश्लेषा मघा पूफा च मूषकः ॥ ५९ ॥
व्याघ्रश्चित्रा विशाखा च गोयोनिः स्यादुफोभयोः ।
वृताद्र्गतयोर्वैरं दंपत्योः स्वामिभृत्ययोः ॥ ६० ॥

अर्थ–अब योनिज्ञान लिखते हैं–अश्विनी और शतभिषाकी अश्व (घोडा) योनि है । स्वाती, हस्तकी भैंस योनि है । पूर्वाभाद्रपदा, धनिष्ठाकी सिंह योनि है । रेवती, भरणीकी गज (हाथी) योनि है । पुष्य, कृत्तिकाकी छाग (मेंढा) योनि है । श्रवण, पूर्वाषाढाकी मर्कट (वानर) योनि है । उत्तराषाढा, अभिजित्की नकुल (न्यौला) योनि है । रोहिणी, मृगशिराकी सर्प योनि है । आर्द्रा, मूलकी श्वान (कुत्ता) योनि है । ज्येष्ठा, अनुराधाकी हरिण योनि है । पुनर्वसु, आश्लेषाकी मार्जार (बिलाव) योनि है । मघा, पूर्वाफाल्गुनीकी मूष (चूहा) योनि है । चित्रा, विशाखाकी व्याघ्र (बाघ) योनि है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपदाकी गो (गाय) योनि है । इसी तरह वर और कन्याके नक्षत्रपरसे योनिज्ञान कर लेना । उनमें ऊपरके श्लोकार्द्धमें जो दो दो योनि लिखते हैं उनको परस्पर शत्रुता है इसलिये वर कन्या, मालिक नौकरके मेलापकमें विचारना चाहिये । खुलासा इस प्रकार है कि, घोडा–भैंसा, सिंह–हाथी, मेंढा–वानर, न्योला–सर्प, कुत्ता–हरिण बिलाव–चूहा, बाघ–गाय इनको परस्पर शत्रुता होनेसे वर्जित है। दोनोंके योनि शुद्ध एक होनेसे चार गुण होते हैं और जिसके साथ जितने गुण होने चाहिये सो चक्रमें स्पष्ट है ॥ ८७–९० ॥

कन्यायाः ।

योनिगुणाः

	अ.	ग.	मे.	स.	श्वा	मा.	मू.	गौ.	भैं.	व्या	ह.	वा.	न.	सिं.
अश्व	४	२	२	३	२	२	२	१	०	१	३	३	२	१
गज	२	४	३	३	२	२	२	२	३	१	२	३	२	०
मेष	२	३	४	२	१	२	१	३	३	१	२	०	३	१
सर्प	३	३	२	४	२	१	१	१	१	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	१	२	४	२	१	२	२	१	०	२	१	१
मार्जार	२	२	२	२	२	४	०	२	२	१	३	३	२	२
मूषक	२	२	१	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ	१	२	३	२	२	२	२	४	३	०	३	२	२	१
भैंस	०	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	१	१	१	२	०	१	४	१	१	२	२
हरिण	३	२	२	२	२	३	२	३	२	१	४	२	२	०
वानर	३	३	०	२	२	३	२	२	२	१	२	४	३	२
नकुल	२	३	३	०	०	२	१	२	२	२	२	३	४	२
सिंह	१	०	१	२	२	१	१	१	३	२	२	२	२	४

वरस्य

अथ गणज्ञानम् ।

देमराम देमदे देरारा मम देरा देरा ।
देरा राम मदे रारा मम दे चाश्विभाद्गणः ॥ ६१ ॥

अर्थ–कौन नक्षत्र कौन गण है उसको लिखते हैं–अश्विन्यादि सत्ताईसों नक्षत्रोंके क्रमसे देसे देव, मसे मनुष्य, रासे राक्षस जानकर गिननेसे जिस नक्षत्रमें जो अक्षर पडे वही गण उसका जानना चाहिये, चक्रमें स्पष्ट है और इसका गुण निकालनेका चक्र पहिले दे चुके हैं ॥ ६१ ॥

नक्षत्र	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	आ	म	पू	उ	ह	चि	स्वा	वि
गण	दे	म	रा	म	दे	म	दे	दे	रा	रा	म	म	दे	रा	दे	रा

नक्षत्र	अ	ज्ये	मू	पू	उ	श्र	ध	श	पू	उ	रे
गण	दे	रा	रा	म	म	दे	रा	रा	म	म	दे

अथ भकूटनाडीज्ञानम् ।

षडष्टकं द्विर्द्वयं च नवपञ्चमकं त्यजेत् ।
सर्पवच्चादिमध्यान्त्याश्विभान्नाड्यैकताधमा ॥ ६२ ॥

अर्थ–अब दुष्टभकूट लिखते हैं–वर और कन्याके राशि षडष्टक हो अर्थात् वरकी राशिसे कन्याकी राशि यदि छठी होगी तो कन्याकी राशिसे वरकी राशि आठवीं ही होगी इस प्रकार षडष्टक, द्विर्द्वादश और नवपञ्चम परस्पर होनेसे भकूट दोष होता है। भकूटका गुण निकालना सुलभ है जैसा कि भकूट शुद्ध हो अर्थात् पूर्वोक्त षडष्टकादिसे रहित हो तो सात गुण होते हैं और भकूट शुद्ध नहीं होनेसे शून्य गुण होते हैं । अब नाडी जाननेका प्रकार यह है कि सर्पाकार एक चक्र लिखकर उसमें क्रमसे अश्विन्यादि नक्षत्र जैसा नीचेके चक्रमें जैसा लिखा है वैसाही लिखके पहिले २ नक्षत्रकी आदि नाडी, मध्यके नक्षत्रकी मध्यनाडी और ऊपरके नक्षत्रोंकी अन्त्य नाडी जाननी चाहिये । यह जो तीन नाडी कहे हैं उसमें यदि किसी एकही नाडीमें वर कन्या दोनोंके नक्षत्र पड जायँ तो अधम (नाडीदोष) जानना चाहिये । इसकाभी गुण निकालना सुलभ है जैसा कि एक नाडीमें दोनोंके नक्षत्र होनेसे शून्य गुण और नाडी भिन्न होनेसे आठ गुण होते हैं ॥ ६२ ॥

सर्पचक्रम् ।

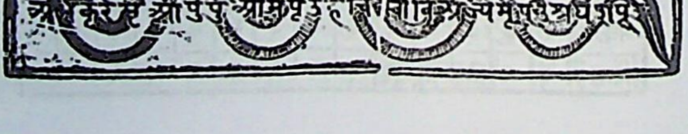

भपयोर्वांशपोर्मैत्र्यां वर्णादिकूटकं शुभम् ।
सर्वं शुभं चैकराशौ चैकभे पादभेदतः ॥ ६३ ॥

अर्थ-अब वर्णसे लेकर और भकूट पर्यन्त जो दोष लिखे हैं उनके परिहार लिखते हैं- यदि वर कन्या दोनोंके राशिस्वामियोंकी परस्पर मैत्री हो या दोनोंके राशिनवांशेश (राशिनवांशपति) को परस्पर मैत्री हो तो वर्णसे लेकर भकूट पर्यन्त जो सात दोष हैं वे शुभ होते हैं । दोनोंकी एकराशि हो तो सभी शुभ होते हैं । नक्षत्रभी एक होनेसे यदि चरणका भेद होय तौ भी शुभ फल होते हैं ॥ ६३॥

चे ४ भौमो घभयो घेमे स्थितोन्योन्यविनाशः ।
न भौमदोषः शनिना सावित्र्यादिव्रतेन वा ॥ ६४ ॥

अर्थ-अब भौमदोष और परिहार लिखते हैं-लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, द्वादश इन स्थानोंमें जन्मपत्रमें यदि मंगल हो तो परस्पर नाश करता है अर्थात् कन्याकी कुण्डलीमें इस प्रकार मंगलके होनेसे वरका नाश और वरकी कुण्डलीमें होनेसे कन्याका नाश होता है । परन्तु दोनोंके कुण्डलीमें मंगलका दोष होनेसे शुभ होता है । फिर यदि एक कुण्डलीमें पूर्वोक्त स्थानमें मंगल हो और दूसरी कुण्डलीमें पूर्वोक्त स्थानोंमेंसे किसी स्थानमें शनैश्चर हो तो भौम दोष मिट जाता है । अथवा सावित्री आदि व्रतसेभी दोष नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

अथ सूर्यादिबलविचारः ।

वरस्यार्कबलं जैवं कन्यायाश्चाष्टगोन्तकृत् ।
तुर्यान्त्यौ संकटे द्व्यर्च्यौ शस्तान्याः पूजया शुभाः ॥ ६५ ॥

अर्थ-वरका सूर्य बल देखना चाहिये तथा कन्याका गुरु बल देखना चाहिये और दोनोंका चन्द्रबल देखना चाहिये । यह तीनों ग्रह अष्टम होनेसे मृत्युकारक होते हैं । चौथे और बारहवेंमें पूर्वोक्त ग्रह द्विगुण पूजनसे शुभ फल देते हैं तथा शुभ स्थानसे जो भिन्न स्थान है उनमें होनेसे केवल पूजामात्रसे शुभ फल देते हैं । उपरोक्त तीनों ग्रहोंके क्रमसे ये शुभ स्थान हैं सूर्यके ३ । ६ । १०।११ गुरुके २।५।७।९। ११ चन्द्रके १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ इनसे अन्य स्थान अशुभ हैं । अशुभमेंभी त्याज्य, द्विगुणार्चन और केवल पूजा ऊपर लिखित जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ विवाहे दश महादोषाः ।

लत्ता पातो युतिर्वेधो यामित्रं पञ्चकोऽर्गलः ।
उपग्रहः क्रान्तिसाम्यं दग्धतिथ्यो दशाधमाः ॥ ६६ ॥

अर्थ–विवाहमें वर्ज्य दश महादोष लिखते हैं–१ लत्ता, २ पात, ३ युति, ४ वेध, ५यामित्र, ६ वाणपञ्चक, ७ एकार्गल, ८उपग्रह, ९ क्रान्तिसाम्य और १०दग्धतिथि ये दश महादोष हैं विवाहमें निन्दित हैं। इन दशों दोषोंका परिज्ञान मुहूर्त्तचिन्तामणिसे, लिखते हैं। १ लत्ता–" ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिताः स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि। संलत्त-यन्तेऽर्कशनीज्यभौमाः सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात्" अर्थ यह है कि, बुध अपने अधिष्ठित नक्षत्रसे पृष्ठस्थ सप्तम नक्षत्रको लत्तित करता है। इसी प्रकार राहुपृष्ठस्थ-नवमको, पूर्ण (पूर्णिमाका) चन्द्रमा पृष्ठस्थ बाईसवेंको, शुक्र पृष्ठस्थ पांचवें नक्षत्रको लत्तित करते हैं इन चारों ग्रहकी पृष्ठ लत्ता होती है। और सूर्य आगेके बारहवेंको, शनि आठवेंको, बृहस्पति छठेको, मंगल तीसरेको लत्तित करते हैं। इन चारोंकी अग्र लत्ता होती है। २ पात– । हर्षणवैधृतिसाध्यव्यतिपातकगण्डशूलयोगानाम् । अन्ते यन्नक्षत्रं पातननिपातितं तत्स्यात् ॥" अर्थ यह है कि, १ हर्षण, २ वैधृति, ३ साध्य, ४ व्यतिपात, ५ गण्ड, ६ शूल इन छः योगोंके अन्तमें जो नक्षत्र हो वे पातोंसे निपातित (दूषित) होते हैं। ३ युति-" चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्र्य मरणं शुभम्। सौख्यं सापत्न्यवैराग्ये पापद्वययुते मृतिः॥" इसका आशय यह है कि चन्द्र-मासे कोईभी ग्रह युक्त होनेसे युति दोष होता है उसमें पाप योगका तो फल लिखाही है परन्तु शुभग्रह (गुरुशुक्र) का जो शुभ लिखा है सोभी आवश्यकमें ग्रहण किया जा सकता है किन्तु उसमेंभी ग्रन्थान्तरोंसे दोषही पाया जाता है । ४ वेध–वेधोऽन्योन्यमसौ विरिंच्यभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयोर्विश्वेन्द्वोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः। स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋतिभादित्योस्तथोपान्त्ययोः खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः॥" आशय यह है कि–वेध दो प्रकारके होते हैं एक पञ्चशला-कावेध, दूसरा सप्तशलाकावेध, इन दोनोंमेंसे विवाहमें पञ्चशलाकावेधही त्याज्य किया जाता है, पञ्चशलाका चक्रमें जिस नक्षत्रमें ग्रह होनेसे जिस नक्षत्रको वेधता है सो चक्रहीसे स्पष्ट विदित होता है सो चक्रमें देखना । परन्तु यहाँ आचार्यने विवाहविहित नक्षत्रकाही वेध श्लोकमें पठित कर दिये हैं वह ऐसा है कि, रोहिणी अभिजित्, भरणी–अनुराधा, उत्तराषाढा–मृगशिर, श्रवण–मघा, हस्त–उत्तराभाद्रपदा, स्वाती–शतभिषा, मूल–पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी–रेवती, इनको परस्पर वेध होता है अर्थात् जो दो दो नक्षत्र लिखे हैं उनमेंसे कि एकमें किसी ग्रहक होनेसे दूसरा नक्षत्र विद्ध समझा जाता है आवश्यकमें विद्ध नक्षत्रकाभी विद्ध चरण

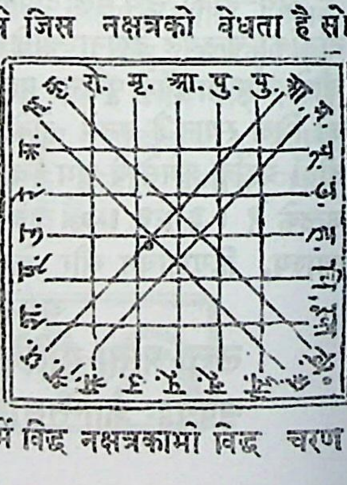

छोडकर अन्य चरणोंमें विवाह हो सकता है। चरणवेधमें प्रथम चरणको चतुर्थ चरणके साथ और द्वितीय चरणको तृतीय चरणके साथ वेध होते हैं। ५ यामित्र—लग्ना-चन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम्। किंवा बाणाशुभमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम्॥" आशय यह है कि, लग्नसे या चन्द्रमासे सातवें स्थानमें कोई ग्रह होनेसे यामित्र दोष होता है वह विवाहमें निन्दित है किन्तु परिहारभी है कि चन्द्रमा या लग्न जिस नवांशमें हो उससे पचपनवाँ ५५ नवमांशमें यदि ग्रह हो तो उसको अवश्य यामित्रदोषसे त्याग करना चाहिये अन्य नवांशमें हो तो दोष नहीं। ६ बाण-पञ्चक—बाणपञ्चक ग्रंथोंमें दो तरहके लिखे हैं उनमें एक दाक्षिणात्यदेशमें व्यवहृत-होता है और दूसरा उत्तर देशमें गृहीत होता है। तहां दाक्षिणदेशीय प्रथम लिखते हैं-"लग्नेनाढ्या याततिथ्योङ्कतष्टाः शेषे नागद्व्यब्धितर्केन्दुसंख्ये। रोगो वह्नी राज-चौरौ च मृत्युर्बाणश्चायं दाक्षिणात्ये प्रसिद्धः" आशय यह है कि शुक्लप्रतिपदासे विवाह समय तक जितनी तिथियें पूरी २ व्यतीत हो गई हों उनमें लग्नसंख्य मेषा-दिसे गिनकर मिलादेना जो हो उसमें नौका भाग दे आठ शेष रहे तो रोगवाण दो शेष रहे तो वह्नि (अग्नि) वाण, चार शेष रहे तो राजवाण, छः शेष रहे तो चोर वाण और एक शेष रहे तो मृत्युबाण होता है ये पाँचों वाण विवाहमें त्याज्य हैं। यह दाक्षिण देशमें प्रसिद्ध है। उत्तरदेशके लिये यह श्लोकहै—"रसगुणशशिनागाब्ध्या-ढ्यसंक्रान्तियातांशकमितिरथतष्टांकैर्यदा पञ्चशेषाः। रुगनलनृपचौरा मृत्युसंज्ञश्च बाणो नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः॥" इसकाभी आशय यह है कि जिस दिनमें विवाहमुहूर्त्त देखना हो. उस दिन गत संक्रान्तिसे जितने अंश गत हो गये हों उस संख्याको पाँच जगह लिखे क्रमसे एक जगह छः ६ दूसरे जगह तीन ३ तीसरे जगह एक १ चौथे जगह आठ ८, पाँचवें जगह चार मिलावे और पाँचों जगह नौसे भाग लेना यदि प्रथम स्थानमें पाँच शेष रहे तो रुग (रोग) बाण, द्वितीय स्था-नमें पाँच शेष रहे तो अग्निवाण, तृतीय स्थानमें पांच शेष रहे तो नृप (राज) बाण चतुर्थ स्थानमें पाँच शेष रहे तो चोरवाण, पञ्चम स्थानमें पाँच शेष रहे तो मृत्यु-वाण जानना चाहिये। और पाँचों जगह नौसे भाग देनेपर जो जो शेष बचे उन सबको एकत्र कर पुनः नौसे भाग देनेपर यदि पाँच शेष बचे तो सशल्यवाण जानना चाहिये। इन बाणोंका परिहारभी तीन प्रकारसे होता है १ एक समयपर-त्वसे, २ दूसरा वार (दिन) परत्वसे, ३ तीसरा कर्मपरत्वसे इन सबका आशय यह है कि विवाहमें मुख्यकरके मृत्युवाणही त्याज्य है अन्य नहीं। ७ एकार्गल—"व्याघातगण्डव्यतिपातपूर्वशूलान्त्यवज्रे परिघातिगण्डे। एकार्गलाख्यो ह्यभिजित्स-मेतो दोषः शशी चेद्विषमर्क्षगोर्कात्॥" अर्थ यह है कि, व्याघात, गण्ड, व्यतिपात,

शूल, वैधृति, वज्र, परिघ, अतिगण्ड ये आठों योगोंमेंसे कोई योग जिस दिन हो और उस दिनमें सूर्यसे अभिजित्सहित गिननेसे चन्द्रनक्षत्र (दिननक्षत्र) विषम संख्यामें पडता हो तो एकार्गल दोष होता है यह विवाहमें त्याज्य है । ८ उपग्रह- "शराष्टदिक्छक्रनगातिधृत्यस्तिथिर्धृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च । उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरुवाह्लिकानाम् ॥" अर्थ यह है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें उस नक्षत्रसे चन्द्रनक्षत्र ५, ८, १०, १४, ७, १९, १५, १८, २१, २२, २३, २४, २५ इन संख्यामें पडे तो उपग्रह दोष होता है यह उपग्रह कुरु और वाह्लिक देशमें शुभ नहीं है । ९ क्रान्तिसाम्य-'पञ्चास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापकुम्भे । तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरुक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मंगले तत् ॥" अर्थ यह है कि, सिंह-मेष, वृष-मकर, तुला-कुम्भ, कन्या-मीन, कर्क-वृश्चिक, धनु-मिथुन इन दो दो राशियोंमें यथासम्भव चन्द्रमा सूर्यके होनेसे क्रान्तिसाम्य होता है वह क्रान्तिसाम्य शुभकार्यमें निन्दित है । यहां बहुत जगह अब थोडे दिनसे विवाद खडा होता है कि क्रान्तिसाम्य (महापात) जो पाताधिकारके गणितद्वारा सिद्ध होता है वही त्याज्य है अन्य नहीं, परन्तु विचारने योग्य विषय है कि अनादि कालसे सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थद्वारा गणितसिद्ध पातज्ञान होतेभी प्राचीन ग्रन्थोंमें इस प्रकारका उल्लेख क्यों ? अतः मेरी सम्मतिसे और अनेक प्राचीन ग्रन्थाधारसे गणितागत महापातके सिवाय लिखित क्रान्तिसाम्यभी त्याज्य है । १० दग्धातिथि- "चापान्त्यगे गोघटगे पतंगे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च । सिंहालिगे नक्रधटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीयाप्रमुखाश्च दग्धाः" ॥ अर्थ यह है-धनु-मीनके सूर्य रहते द्वितीया वृष-कुम्भके सूर्यमें चौथी, कर्क-मेषके सूर्यमें षष्ठी, कन्या-मिथुनके सूर्यमें अष्टमी, सिंह-वृश्चिकके सूर्यमें दशमी, मकर-तुलाके सूर्यमें द्वादशी दग्ध होती है यह सभी शुभ कार्यमें वर्जित है । यह दश दोष विवाहमुहूर्त्तशुद्धिके लिये देखे जाते हैं इसका संकेतभी इस प्रकार है कि दोष रहते (ऽ) यह चिह्न देते हैं और निर्दोषमें (।) यह चिह्न देते हैं । अथवा कोई २ (ऽ) इसको शुद्ध और (।) इसको अशुद्धके संकेत रखते हैं उसमें पाँचसे अधिक शुद्ध रेखा होने २ मुहूर्त शुद्ध समझा जाता है उसमेंभी क्रान्तिसाम्य, दग्धा तिथि मृत्युबाण ये तीन दोष तो बिलकुल नहीं होना चाहिये, बहुतसे पञ्चांगमें इसी रीतसे दश दोष देखकर मुहूर्त्त लिखे रहते हैं और जिसमें नहीं रहते उसमें इसी प्रकारसे सुज्ञ ज्योतिर्विद देख लेते हैं ॥ ६६ ॥

विवाहे विहितमासाः ।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढाश्च मार्गकः ।
मृगकुम्भाजगोयुग्मालयको लग्नेऽतिशोभनः ॥ ६७ ॥

अर्थ-अब विवाहमें विहित मास लिखते हैं-माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, मार्गशीर्ष यह छः मास विवाहमें विहित हैं । परन्तु विवाहादि कार्योंमें सौरमासकी प्रधानता होनेसे मकर, कुम्भ, मेष, वृष, वृश्चिकके सूर्यमें विवाह अतिशुभ होता है आशय यह है कि पूर्वोक्त चन्द्रमासमें क्रमोक्त राशिके सूर्य होनेसे अधिक उत्तम है परन्तु मकरराशिका सूर्य होनेसे चान्द्रमानसे पौष रहतेभी विवाह होना श्रेष्ठ है, इसी तरह वृश्चिकके सूर्य हो जानेसे कार्तिकमें मेषके सूर्य हो जानेपर चैत्रमें विवाह श्रेष्ठ है ॥ ६७ ॥

विवाहनक्षत्राणि ।

उत्तरा रोहिणी स्वाती मूलं च रेवती मघा ।
मृगोऽनुराधा हस्तः सन् ह ८ झा ९न्या १०द्वधूद्वहे ॥ ६८ ॥

अर्थ-अब विवाहविहित नक्षत्र लिखते हैं-उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा) रोहिणी, स्वाती, मूल, रेवती, मघा, मृगशिरा, अनुराधा, हस्त ये नक्षत्र आठ नौ और दश वर्षकी कन्याके विवाहमें शुभ हैं ॥ ६८ ॥

मुहूर्त्तदर्पणे ।

दशवर्षाधिका कन्या भवत्येव रजस्वला ॥ ६९ ॥

अर्थ-दश वर्षसे अधिक अवस्थावाली कन्या अवश्य करके रजस्वला होती हैं अर्थात् रजस्वला होनेके पीछे कन्यादान योग्य नहीं रहती ॥ ६९ ॥

शीघ्रबोधे ।

पूजाभिः शकुनैर्वापि तस्या लग्नं प्रदापयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-रजस्वला होनेके पीछे पूजा करके उत्तम शकुनोंके साथ उसका विवाह-लग्न देना चाहिये ॥ ७० ॥

दीनानाथः ।

लग्नांशाद्द्यूनलवगोऽस्ते वर्ज्योऽब्जांशतो ग्रहः ।
लग्नपः कार्यपश्चेति लग्नास्तलवपेषु सन् ॥ ७१ ॥

अर्थ-लग्नमें जो नवमांश हो सप्तमराशिके उसी संख्याके नवमांशमें जो ग्रह हो तो वह लग्न त्याग करना चाहिये । इसी प्रकार चन्द्रमा जिस राशिके जिस नवांशमें हो उससे सप्तम राशिके उसी संख्याके नवांशमें यदि कोई ग्रह हो तो त्याग करना चाहिये । परन्तु लग्नेश और कार्येश यदि लग्नसे सप्तमके उक्त अंशमें हों तो दोष नहीं शुभ फल देते हैं ॥ ७१ ॥

साधारणलग्नशुद्धिः ।

जन्माङ्के द्वष्टमं लग्नं विना रुया १२ न्या १० र २ ती ६ ज ८ भमु४
नेष्टं श्रेष्ठाः केन्द्रकोणे सन्तोऽन्ये त्र्यरिलाभगाः ॥ ७२ ॥

अर्थ-यदि जन्मलग्न और जन्मराशिसे अष्टम लग्न या राशि मीन, मकर, वृष, कन्या, वृश्चिक और कर्क इनमेंसे कोई अष्टममें हो और विवाह समयमें लग्नमें पडे तो अष्टम गृहजन्य दोष नहीं होता अर्थात् जन्मलग्न जन्मराशिसे अष्टममें उक्त राशियोंसे अन्य राशि हों तो उस लग्नमें विवाहादि नहीं हो सकता । विवाहलग्नसे केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) कोण (५-९) में शुभ ग्रह श्रेष्ठ होते हैं और तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थानमें पाप ग्रह श्रेष्ठ होते हैं ॥ ७२ ॥

चिन्तामणौ जन्ममासादिविचारः ।

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोर्जन्ममासभतिथौ करग्रहः ।
नोचितोऽथविबुधैः प्रशस्यते चेद्द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ॥
ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं संप्रादिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि ॥७३॥

अर्थ-अब जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि और ज्येष्ठका विचार लिखते हैं-माताके प्रथम गर्भसे जन्में हुए बालक और कन्याके विवाह जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्मतिथिमें नहीं होना चाहिये । किन्तु द्वितीयादि गर्भसे उत्पन्न वर कन्याके जन्ममासादिमें विवाह होनेसे सन्ततिसुख होता है इसलिये पण्डितोंसे शुभ माना गया हैं । अब ज्येष्ठका विचार यह है कि, दो ज्येष्ठ मध्यम है. अर्थात् ज्येष्ठ मास हो और वरकन्यामेंसे कोई एक ज्येष्ठ हो तो विवाह मध्यम होता है किन्तु वर्जित नहीं है और तीनों ज्येष्ठ (ज्येष्ठ मास, ज्येष्ठ कन्या, ज्येष्ठ वर) हो तो विवाह कदापि उचित नहीं है ॥ ७३ ॥

अनेकदोषापवादः ।

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतकं
हरेत्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः ।
भवेदाये केन्द्रेऽङ्गप उत लवेशो यदि तदा
समूहं दोषाणां दहन इव तूलं शमयाति ॥ ७४ ॥

अर्थ-विवाह लग्नसे त्रिकोण (५-९) या सप्तमरहित केन्द्र (१ । ४ । १०) में बुध हो तो सौ दोषका नाश करता है तथा उक्त स्थानोंमें शुक्र हो तो दो सौ

दोषका नाश करता है और उक्त स्थानमें बृहस्पति हो तो एक लाख दोषको हरण करता है। यदि लग्नेश या लग्ननवांशेश केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) और ग्यारहवें स्थानमें हो तो जिस प्रकार रूईके ढेरके अग्नि नाश करता है उसी तरह दोषोंके ढेरको नाश करता है ॥ ७४ ॥

स्थानपरत्वेन त्याज्यग्रहाः।

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चन्द्रखला न शस्ताः।
लग्नेट्कविग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौर्लग्नेट्शुभाराश्च मदे च सर्वे ॥७५॥

अर्थ—अब स्थानपरत्वसे त्याज्य ग्रह लिखते हैं—विवाह लग्नसे बारहवें स्थानमें शनि, दशममें मङ्गल, तीसरे स्थानमें शुक्र, लग्नमें चन्द्रमा और पाप ग्रह, छठे स्थानमें लग्नस्वामी, शुक्र और चन्द्रमा, अष्टम स्थानमें चन्द्रमा, लग्नस्वामी, सब शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र), और सप्तम स्थानमें सब ग्रह अशुभ होते हैं अर्थात् विवाह लग्नसे उक्तस्थानोंमें उक्त ग्रह नहीं होना चाहिये ॥ ७५ ॥

त्र्यायाष्टषट्सुरविकेतुतमोर्कपुत्रा स्त्र्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोऽब्जः। सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरू सितोऽष्टत्रिद्यूनषड्व्ययगृहान्परिहृत्य शस्तः ॥ ७६ ॥

अर्थ—विवाहलग्नसे तीसरे, छठे, आठवें, ग्यारहवें स्थानमें रवि, केतु राहु, शनि शुभ होते हैं. तीसरे, ग्यारहवें, छठे स्थानमें मङ्गल शुभ होता है. दूसरे, तीसरे, ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा शुभ होता है. सातवें, बारहवें, आठवें इन तीनों स्थानोंको छोडकर अन्य नौ स्थानोंमें बुध और बृहस्पति शुभ होते हैं. आठवें, तीसरे, सातवें, छठे, बारहवें इन पाँचों स्थानोंको छोड अन्य स्थानोंमें शुक्र शुभ होता है ॥ ७६ ॥

शीघ्रबोधे ग्राह्यनवांशाः।

गोतुलायुग्मकन्यानां नवांशाः शुभदाः स्मृताः।
धनुषः प्रथमो भागो विवाहेऽन्त्यश्च मध्यमः ॥ ७७ ॥

अर्थ—वृष, तुला, मिथुन, कन्या इन चार राशियोंके नवमांश यदि विवाह लग्नमें पडें तो शुभ देते हैं। धनुका प्रथम भाग और मीनका अन्तिम भाग मध्यम फल देते हैं ॥ ७७ ॥

विवाहवृन्दावने ।

इति तुलाजितुमप्रमदाधनुःप्रथमखण्डमखण्डफलं जगुः ॥७८॥

अर्थ-तुला, मिथुन, कन्या, धनुषका प्रथम खण्ड विवाह लग्नमें अखण्ड फल देते हैं यह विद्वानोंने कहे हैं ॥ ७८ ॥

उषःकालप्राशस्त्यम् ।

नष्टार्कद्युतितारकाऽविरला पूर्वा च दिग्भासते
किञ्चित्पीतविलोहिता न धवला यावन्न सन्ध्या भवेत् ।
तावन्नो कुतिथिर्न धिष्ण्यमशुभं नैव ग्रहाश्चाशुभा
ऊषाकालमिमं ब्रुवन्ति मुनयः सर्वार्थसंसिद्धये ॥ ७९ ॥

अर्थ-अब उषाकाल और उसका प्राशस्त्य लिखते हैं-जिस समय आकाशमें सूर्यके तेजसे तारोंके तेज नष्ट होने लगते हैं और तारा॰ विरल (थोडे) रह जाते हैं तथा पूर्वदिशामें पीत रंग और लोहित (किञ्चित् रक्त) वर्ण आकाश होता है उस समयसे जबतक आकाश स्वच्छ होकर संध्या नहीं होती है उस समयपर्यन्त उषाकाल कहलाता है अर्थात् पाँच घटी (दो घण्टा) जब रात बाकी रहती है उसी समयसे उषाकाल शुरू होता है और दो घटी रहता है उस समयमें दुष्टतिथि दुष्ट नक्षत्र, अशुभ ग्रह इन सबोंका दोष नहीं होता है और सब शुभ कार्य सिद्ध होते हैं ऐसे मुनिलोग कहते हैं ॥ ७९ ॥

ज्योतिर्निबन्धे अभिजित्प्राशस्त्यम् ।

कालं हित्वा सर्वदेशे लग्ने शस्तोऽभिजित्क्षणः ।
अम्भोधिमथनोत्पन्नां प्राप्तोऽत्र कमलां हरिः ॥ ८० ॥

अर्थ-अब अभिजित् मुहूर्त्तका प्राशस्त्य लिखते हैं-अभिजित् मुहूर्त्त उसको कहते हैं जो कि दिन और रात्रिके मध्यमें अष्टम मुहूर्त्त होता है वह दिनार्द्ध और रात्र्यर्द्धसे लगभग एक घटी (२४ मिनट) पहिले शुरू होकर दिनार्द्ध और रात्र्यर्द्धसे एक घटी पीछे तक रहता है इन दो घटियोंके भीतरमें एक कालका समय बीस पल होता है अर्थात् दिनार्द्ध और रात्र्यर्द्धसे दश पल पूर्वसे शुरू होकर दश पल परतक कालका समय रहता है, उसका प्रमाणभी इस प्रकार है कि " मूर्त्तः कालो

निवसति महानिशायां दिनदले यस्मात् । दश पूर्वं दश परतस्तस्माद्वर्ज्यानि च पलानि" इस कालका समय छोडकर बाकी अभिजित्‌का समय विवाहमें सब देशमें शुभ है । इसी अभिजित्‌मुहूर्त्तमें क्षीरसमुद्रमथनसे उत्पन्न होनेवाली लक्ष्मीजीसे भगवान्‌ने विवाह किया इससे इस मुहूर्त्तका अधिक प्राशस्त्य है ॥ ८० ॥

मुहूर्त्तचिन्तामणौ गोधूलिप्राशस्त्यम् ।

नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता
नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्त्तस्य चर्चा ।
नो वा योगो न मृतिभवनं नापि यामित्रदोषो
गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता ॥ ८१ ॥

अर्थ–अब गोधूलिसमयका उत्कर्ष लिखते हैं–इस गोधूलीके समय नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, दिन, नवांश, मुहूर्त्त, योग, अष्टम लग्नदोष, यामित्र दोष ये सब कुछभी विचारने योग्य नहीं है अर्थात् गोधूलीके समय उक्त नक्षत्रादि दोष रहतेभी विवाहमें शुभदायक हैं । इसी लिये मुनियोंने सभी कार्योंमें शस्त कहे हैं ॥ ८१ ॥

अस्तं याते गुरुदिवसे सौरे सार्केऽलग्नान्मृत्यौ रिपुभवने लग्ने चेन्दौ । कन्यानाशस्तनुमदमृत्युस्थे भौमे वोढुर्लाभे धनसहजे चन्द्रे सौख्यम् ॥ ८२ ॥

अर्थ–बृहस्पतिवारको अष्टम अर्द्धयाम होनेके कारण सूर्यास्तसे पीछे गोधूली होती है और शनिवारको कुलिक होनेसे सूर्यास्तसे पहिलेही गोधूली होती है तथा अन्य वारोंमें हेमन्त (मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन) में सूर्यके पिण्डीभूत होनेपर (सूर्यास्तसे पहिले गोधूली होती है । ग्रीष्म (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ) में सूर्यके अर्द्धास्त होनेपर गोधूली होती है और वर्षाकाल (श्रावण, भाद्रपद; आश्विन, कार्त्तिक) में सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब अस्त होनेपर गोधूली होती है । ऐसेही गोधूलीके समय पूर्वोक्त दोषोंका नाश होता है । परन्तु गोधूली, समयमेंभी विवाह लग्नसे आठवें, छठे और लग्नमें चन्द्रमा हो तो कन्याकी मृत्यु होती है तथा लग्न, सप्तम, अष्टममें मङ्गल हो तो वरका नाश होता है और एकादश, द्वितीय, तृतीय स्थानमें चन्द्रमा हो तो सौख्य करता है । सारांश यह है कि विवाहादि कार्योंमें

गोघूलीके प्रशस्त होने परभी १ कुलिक, २ क्रान्तिसाम्य, ३ लग्न, ४ छठा और ५ आठवाँ चन्द्रमा यह पाँच दोष सर्वथा त्याग करने योग्य हैं ॥ ८२ ॥

मुहूर्त्तमार्त्तण्डे ।

यस्याङ्गं यदुदोङ्गिनो गदितभे कुर्यादिहेन्दोर्बलं
नालोक्यं तु विवाहतस्त्रयरिनवाह्नि प्राङ्न कुर्यादिदम् ॥ ८३ ॥

अर्थ–जिस कामके लिये जो नक्षत्रादि विहित हैं उन्हीं नक्षत्रादिकोंमें उसके अङ्ग कार्य अर्थात् मण्डपनिर्माणादि करना चाहिये परन्तु चन्द्रबल अवश्य करके देखना चाहिये । परन्तु विवाहसे पूर्वके तीसरे, छठे, नवमें दिनमें विवाहाङ्गकार्य नहीं करना चाहिये ॥ ८३ ॥

शुभाशुभयामार्द्धानि दीनानाथः ।

उद्वेगश्चामृतो रोगो लाभः शुभचरौ मृतिः ।
सूर्यादौ क्रमतो ज्ञेयो रात्रौ पञ्चमगोऽह्नि षट् ॥ ८४ ॥
सूर्यो बृहस्पतिश्चन्द्रः शुक्रो भौमः शनिर्बुधः ।
सूर्यः शुक्रो बुधश्चन्द्रो मन्दो जीवो धरासुतः ॥ ८५ ॥

अर्थ–अब शुभाशुभ यामार्द्ध (चौघडिया) लिखते हैं–सूर्यवारमें पहिला अर्द्धयाम उद्वेगनामक होता है, चन्द्रवारमें पहिला अमृत, मङ्गलवारमें पहिला रोग, बुधवारमें पहिला लाभ, बृहस्पतिवारमें पहिला शुभ, शुक्र वारमें पहिला चर, शनिवारमें पहिला मृति (काल) नामके होते है । जिस दिनमें जो पहिला यामार्द्ध कहा है उससे पांचवाँ यामार्द्ध उस वारके रात्रिमें पहिला होता है । जैसा कि रविवारमें पहिला उद्वेग है तो रविकी रात्रिमें पहिला फिर जिस दिन जो चौघडिया पहिला कहा है उससे छठा दूसरा, फिर दूसरेसे छठा तीसरा इत्यादि क्रमसे आठों जाने और रात्रिमें जो पहिला हो उससे पञ्चम पञ्चम चौघडिया क्रमसे जानना । उदाहरणके लिये सूर्यवारके रात्रिमें पहिला सूर्यका, दूसरा बृहस्पतिका, तीसरा चन्द्रका, चौथा शुक्रका, पाँचवाँ मङ्गलका, छठा शनिका, सातवाँ बुधका, फिर आठवाँ सूर्यका होता है इसी प्रकार रविके दिनमें १ सूर्य, २ शुक्र, ३ बुध, ४ चन्द्र, ५ शनि, ६ बृहस्पति, ७ मंगल, फिर ८ सूर्यका होता है चक्रमें नीचे दिन रात्रिकी चौघडिया चक्रमेंभी खुलासा दिया है ॥ ८४.८५ ॥

दिनका चौघडिया							रात्रिका चौघडिया।						
र	चं	मं	बु	गु	शु	श	र	चं	मं	बु	गु	शु	श
उ	अ	रो	ला	शु	चं	का	शु	चं	का	उ	अ	रो	अ
चं	का	उ	अ	रो	ला	शु	अ	रो	ला	शु	चं	का	उ
ला	शु	चं	का	उ	अ	रो	चं	का	उ	अ	रो	ला	शु
अ	रो	ला	शु	चं	का	उ	रो	ला	शु	चं	का	उ	अ
का	उ	अ	रो	ला	शु	च	का	उ	अ	रो	ला	शु	चं
शु	चं	का	उ	अ	रो	ला	ला	शु	चं	का	उ	अ	रो
रो	ला	शु	चं	का	उ	अ	उ	अ	रा	ला	शु	चं	का
उ	अ	रो	ला	शु	चं	का	शु	चं	का	उ	अ	रो	ला

मुहूर्त्तमुक्तावल्यां वधूप्रवेशः ।

मृदु ध्रुवं वासवमूलपुष्यं मघानिलौ दस्रकरौ हरिश्च ।
शुक्रेन्दुजीवार्किदिनान्यरिक्तास्तिथयःप्रशस्ता हि वधूप्रवेशे८६

अर्थ–अब वधूप्रवेशमुहूर्त्त लिखते हैं–(विवाहसे सोलह दिनके भीतर सम दिन २। ४।६।८।१०।१२।१४।१६ तथा ५।७।९ इन दिनोंमें, इसके पीछे विषम मासमें वर्षसे ऊपर विषम वर्षमें) मृदु (मृगशिरा रेवती, चित्रा, अनुराधा) ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी) धनिष्ठा, मूल, पुष्य, मघा, स्वाती, अश्विनी हस्त और श्रवण॰ ये नक्षत्र शुक्र, चन्द्र, बृहस्पति, शनि ये दिन रिक्तारहित तिथि वधूप्रवेशमें शुभ होते हैं ॥ ८६ ॥

मुहूर्त्तमार्त्तण्डे ।

लग्नादष्टिदिनान्ततः सममुनीष्वङ्कद्युषूर्ध्वं त्वथु-
ग्धस्ते मास्यपि हायने शरमिताद्वर्षात्परं स्वेच्छया ।
वैफामार्गसिते जगुः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनी-
ज्यर्क्षैश्चानवमन्दिरे निशि वधूसंवेशमंगे स्थिरे ॥ ८७ ॥

अर्थ–मुहूर्त्तमार्त्तण्डमें वधूप्रवेशमुहूर्त्त इस प्रकार लिखा है–विवाहसे सोलह दिनके॰ भीतर सम दिन (२ । ४ ।६।८।१०।१२।१४।१६) और सप्तम, पञ्चम, नवम इन दिनोंमें तथा सोलह दिनसे ऊपर हो जानेपर विषम दिन, विषम मास विषम वर्षमें और पाँच वर्षसे ऊपर स्वेच्छासे जिस वर्षमें हो सके उस वर्षमें वैशाख, फाल्गुन

मार्गशीर्ष इन तीनही मासोंके शुक्लपक्षमें श्रवण, धनिष्ठा तथा विवाहोक्त नक्षत्र (मृगशिर, हस्त, मूल, अनुराधा, रोहिणी, तीनों उत्तरा, स्वाती) और चित्रा, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रोंमें स्थिर लग्नोंमें रातके समय पुराने घरमें वधूका प्रवेश शुभ होता है ॥ ८७ ॥

अथ पुनर्विवाहमुहूर्त्तः ।

शूद्रान्त्येषु पुनर्भवापरिणयः प्रोक्तो विवाहोक्तभै-
र्नालोक्यं तिथिमासवेधभृगुजेज्यास्तादि तत्रार्कभात् ।
त्रित्र्यृक्षेषु मृतिर्धनं मृतिमृती पुत्रो मृतिर्दुर्भगं
श्रीरौन्नत्यमथो धृतीशकृततत्वर्क्षेत्ययः साभिजित् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अब शूद्रादिक वर्णोंमें जो स्त्रियोंके पुनर्विवाह होते हैं उसका मुहूर्त्त लिखते हैं-शूद्र और अन्त्यजोंके पुनर्विवाह विवाहोक्त जो नक्षत्र हैं उन्हींमें शुभ कहे हैं। परन्तु तिथि, मास वेध (पञ्चशालाका) शुक्र और बृहस्पतिके अस्त आदि कुछभी देखनेकी जरूरत नहीं है केवल सूर्यके नक्षत्रसे ३ तीन नक्षत्रमें मृत्यु फिर आगेके तीन नक्षत्रमें धन फिर ३ तीनमें मरण फिर तीनमें मृत्यु फिर तीनमें पुत्र फिर तीनमें मृत्यु फिर तीनमें दुर्भग फिर तीनमें लक्ष्मी फिर तीनमें औन्नत्य इस प्रकारसे सूर्यनक्षत्रसे सत्ताईसों नक्षत्रोंके फल देखकर जिसका फल शुभ हो और विवाहविहित नक्षत्र हो उसमें विवाह करना। दूसरा चक्र यह है कि सूर्यके नक्षत्रसे अभिजित्सहित गणना करनेपर अठारहवें, ग्यारहवें, चौथे और पचीसवें नक्षत्रमें पुनर्भूविवाह होनेसे मृत्यु होती है ॥ ८८ ॥

मुहूर्त्तरत्नमालायाम् ।

न शास्त्रदृष्ट्या विदुषा कदाचिदुल्लंघनीयाः कुलदेशधर्माः ॥८९॥

अर्थ-पण्डितोंको उचित है कि जिस जगह शास्त्रदृष्टिसे उत्तम होनेपरभी कुल, देश, और जातीय धर्मसे विरुद्ध पाता हो वहाँ शास्त्रके बलसे कुल, देश, धर्मको उल्लंघन नहीं करें ॥ ८९ ॥ इति द्विरागमनम् ॥ ७ ॥

अथाग्न्याधानं मुहूर्त्तमार्तण्डे ।

अग्न्याधानमवादि दारसमये दायाद्यकाले परै-
र्द्वीशाग्निध्रुवशाक्रपूषभमृगेज्यैर्न्यब्जलघ्नांशयोः ।
जीवेन्द्वर्ककुजैः सुतार्द्धिगुरुकेन्द्रस्थैरनस्तं गतैः
स्वोच्चेष्टर्क्षगतैः परैरुपचयैर्वित्ताद्यशुद्धौ बुधैः ॥ ९० ॥

अर्थ-अब अग्न्याधानमुहूर्त्त लिखते हैं-अग्न्याधान विवाहके समय करना या भाइयोंमें जब धनका विभाग हो अर्थात् सब भाई अलग २ होजाय उस समय करना आशय यह है कि जिसको भाई नहीं हो वह विवाहके समय और भाईवाला धन विभाग होनेपर अग्न्याधान करे । विशाखा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, मृगशिर, पुष्य इन नक्षत्रोंमें, जलचर राशि और जलचरराशिके नवांशको छोडकर अन्य राशि और अन्य राशिके अंशोंमें । बृहस्पति, चन्द्रमा, सूर्य मङ्गल ये चारों ग्रह पञ्चम, ऋद्धि (उपचय) ३ । ६ । ११ । १० नवम और केन्द्र १ । ४ । ७ इन स्थानोंमें हों किन्तु उक्त ग्रह अस्त नहीं हों अर्थात् उदित हों और अपनी राशि, अपना उच्च, तथा मित्रोंके राशिमें प्राप्त हों, और अन्य ग्रह उपचय ३ । ६ । ११ । १० में हों तथा लग्नसे द्वितीय स्थान और लग्न शुद्ध हो अर्थात् उक्त दोनों स्थानमें पापग्रह नहीं हों ऐसे समयमें पण्डितोंने अग्न्याधान करना शुभ कहे हैं ॥ ९० ॥ इत्यग्न्याधानम् ॥ ८ ॥

पट्टाभिषेको मार्त्तण्डे ।

जन्मांगर्क्षदशेशसद्ग्रहकुजैः सार्कैर्बलिष्ठैर्मृदु-
क्षिप्रेन्द्रध्रुवभैः स्थिरर्द्धिनृतनौ व्यारात्ति भूपस्थितिः ॥ ९१ ॥

अर्थ-अब राजाभिषेकमुहूर्त्त लिखते हैं-जन्मलग्न, जन्मराशि, और वर्त्तमान दशाके स्वामी, शुभग्रह मंगल, सूर्य ये सबोंके बलवान् होनेमें, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी इन नक्षत्रोंमें तथा जन्मलग्न जन्म राशिसे उपचयगत स्थिर और मनुष्य (द्विपद) संज्ञक लग्नमें, मंगलवाररहित वारोंमें राजाओंका राजगद्दीपर प्रथम २ बैठना शुभ होता है ॥ ९१ ॥

सिंहासनच्छत्रचामरादि नरपतिजयचर्याद्यैर्द्रष्टव्यम् ।

अर्थ-सिंहासन, छत्र, चामर आदि राजाओंके लिये किस प्रकारके होनें चाहिये इसको जाननेके लिये "नरपतिजयचर्या" आदिके जो ग्रन्थ हैं उनको देखना चाहिये॥

ज्योतिषरत्ने-दत्तकग्रहणमु० ।

हस्तादिपञ्चकभिषग्वसुपञ्चकेषु
सूर्यक्षमाजगुरुभार्गववासरेषु ।
रिक्ताविवर्जिततिथिष्वलिकुम्भलग्ने
सिंहे वृषे भवति दत्तपरिग्रहोऽयम् ॥ ९२ ॥

अर्थ--हस्तसे पाँच (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा) अश्विनी, धनिष्ठासे पांच (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा रेवती) नक्षत्रोंमें, रवि, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र इन दिनोंमें, रिक्ता ४।९। १४ रहित तिथियोंमें वृश्चिक, कुम्भ, सिंह, वृष इन लग्नोंमें दत्तक (गोद) लेना शुभ होता है ॥ ९२ ॥ इति पट्टाभिषेकः ॥९॥

अथ यात्रा मार्त्तण्डे ।

वारे चोपचयावहस्य सुदशास्विष्टं प्रयाणं जगुः
कर्णान्त्यादितिभाद्विकेषु मृगमैत्रार्केषु नो जन्मभे ।
सार्पार्द्राग्नियमाजपादपित्तृभे त्वाष्ट्रत्रये चाशुभं
रिक्तापर्वगुहाष्टमीहरिसितास्येषु ज्ञशुक्रोन्मुखम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–अब यात्रामुहूर्त्त लिखते हैं–वृद्धिदायक दिनमें अर्थात् गोचर और अष्टक वर्गके अनुसार जो ग्रह शुद्ध हो उसके दिनमें, तथा जिस समय उत्तम (बलवान्) ग्रहकी दशा अन्तर्दशा आदि उपस्थित हो उस समयमें, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिर, अनुराधा, हस्त इन नक्षत्रोंमें यात्रा शुभ होती है । जन्मनक्षत्रमें यात्रा नहीं करनी । आश्लेषा, आर्द्रा, कृत्तिका, भरणी, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, चित्रा, स्वाती, विशाखा इन नक्षत्रोंकी यात्रा अशुभ होती है; इसी तरह रिक्ता (४।९ । १४), पर्व (३० । १५ । ८ संक्रान्ति), षष्ठी. अष्टमी, द्वादशी और शुक्लपक्षकी प्रतिपदामें तथा बुध शुक्रके सम्मुख रहते यात्रा शुभ नहीं देती ॥ ९३ ॥

दिक्छूलग्रहशुद्धी ।

प्राक्चन्द्रासितशक्रभं वसुपरार्द्धात्पञ्चभेज्यानपाक्
पश्चात्कार्कसितानुदक्कुजबुधार्यम्णस्त्यजेच्छूलकान् ।
त्र्यायार्यन्यगताः खलाः ख इनजोऽजोन्त्याद्यषष्ठाष्टगो
भूपः सोपचितोस्तखाम्बुसुतगः शुक्रोस्त इज्यो मृतौ ॥ ९४ ॥

अर्थ–अब यात्रामें दिशाशूल और यात्रालग्नसे ग्रहशुद्धि लिखते हैं–सोम, शनिवार और ज्येष्ठानक्षत्रमें पूर्वदिशामें शूल होता है, धनिष्ठाके उत्तरार्द्धसे पांच नक्षत्र (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती) में और बृहस्पतिवारमें दक्षिणमें शूल होताहै, रोहिणी नक्षत्र और सूर्य शुक्रवारमें पश्चिममें शूल होता है, मंगल बुधवार और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्तर दिशामें शूल होता है । यह शूल यात्रामें त्याज्य है । यात्रालग्नसे तृतीय, एकादश, षष्ठ स्थानको छोडकर अन्य स्थानोंमें पापग्रह त्याज्य होते हैं, दशवेंमें शनि त्याज्य (यहां पाप ग्रहके लिये

दशम स्थान पूर्वकथनसे निन्दित होनेपरभी दशम स्थानमें शनिके विशेष नेष्टसूचनके लिये पुनः उपादान किया है) १२ । १ । ६ । ८ । इन स्थानोंमें चन्द्रमा नेष्ट होता है और कृष्णपक्षके क्षीणचन्द्रमा ७ । १० । ४ । ९ मेंभी नेष्ट है, सप्तममें शुक्र और अष्टममें बृहस्पति नेष्ट होता है ॥ ९४ ॥

मुहूर्त्तचिन्तामणौ।

कुम्भकुम्भांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे ॥ ९५ ॥

अर्थ—अब कुम्भलग्न और कुम्भांशकका दोष कहते हैं—कुम्भलग्न और जिस किसी राशिमें कुम्भका नवमांश यत्नपूर्वक विद्वानोंसे सर्वथा त्याज्य है। इनमें यात्रा करनेवाला राजाको पद पदमें धनका नाश होता है ॥ ९५ ॥

अथ मीनलग्न उत वा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते।
जनिलग्नजन्मभवती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः ॥ ९६ ॥

अर्थ—अब मीनलग्न और मीनवंशकका दोष कहते हैं—मीनलग्न और मीनांशकमें यात्रा करनेवालेका मार्ग (रास्ता) टेडा होता है अर्थात् जहां जाना है उससे दूसरी जगह जाना होय। जन्मलग्न और जन्मराशिके स्वामी शुभ ग्रह जिस राशिमें हो उस लग्नमें यात्रा शुभ होती है ॥ ९६ ॥

उषःकालादौ त्याज्यादिक्।

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना।
विनोत्तरां निशीथः सन् याने याम्यां विनाभिजित् ॥ ९७ ॥

अर्थ—पहिले उषाकाल, गोधूली, अभिजितकी प्रशंसा यात्रादिमें कर आये हैं यहाँ दशापरत्वसे यात्रामें त्याज्य कहते हैं—पूर्वदिशाको छोडकर अन्य दिशाओंके यात्रामें उषाकाल विहित है, पश्चिमको छोडकर गोधूली, उत्तरको छोडकर निशीथ(रात्रिका अष्टम मुहूर्त्त), दक्षिणको छोडकर अभिजित् शुभ होता है अर्थात् उषामें पूर्व, गोधूलीमें पश्चिम, निशीथमें उत्तर, अभिजित्(दिनके अष्टम मुहूर्त्त) में दक्षिण जाना निन्दित है ॥ ९७ ॥

सर्वदिग्भानि विदिङ्नियमश्च।

मित्रार्कपुष्याश्विनभैर्निरुक्ता यात्रा शुभा सर्वदिशासु तज्ज्ञैः।
अग्नेर्दिशं नृप इयात्पुरुहूतदिग्भैरेवं प्रदक्षिणगता विदिशोऽत्थकृत्ये ॥ ९८ ॥

अर्थ—अब सर्व दिग्द्वारिक नक्षत्र और कौन विदिशाकी गणना किस दिशामें है उसको लिखिते हैं-- अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी ये चार नक्षत्र सर्व दिग्द्वारिक हैं इनमें सब दिशाओंकी यात्रा पण्डितोंने शुभ कही हैं अर्थात् इन नक्षत्रोंमें पृष्ठ चन्द्रादिका दोष नहीं होता । पूर्वदिशाकी यात्रामें जो नक्षत्रादि शुभ कहे हैं उन्हींमें आग्नेयकोणकी यात्रा करनी, अर्थात् अग्निकोणकी गणना पूर्वमें है इसी प्रकार नैर्ऋत्य दक्षिणमें, वायव्य पश्चिममें, ईशान उत्तरमें जानना ॥ ९८ ॥

प्रस्थानादिनसंख्या ।

प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्र तिष्ठेत्
सामन्तः सप्तरात्रं तदितरमनुजः पञ्चरात्रं तथैव ॥ ९९ ॥

अर्थ—अब प्रस्थानमें दिनसंख्या लिखते हैं—चक्रवर्त्ती राजा प्रस्थान करके दश दिन एक जगह नहीं ठहरे अर्थात् दश दिनके भीतरमेंही प्रस्थान उठाकर चल दे सामन्त राजा सात दिन, और साधारण मनुष्य पाँच दिन पूरा प्रस्थान न रक्खे । अपने २ अवधि वीतनेपर दूसरा मुहूर्त्त देखकर जाय । किसीका मत है कि पूर्वमें सात दिन, दक्षिणमें पाँच दिन, पश्चिममें तीन दिन उत्तरमें दो दिन प्रस्थान रहता है ॥ ९९ ॥

दीनानाथः प्रस्थानस्थानवस्तुनोः ।

गेहाद्गेहान्तरं याने सीम्नः सीमान्तरं तथा ।
प्रस्थाने हृत्प्रियं स्थाप्यं वा स्वर्णान्ननिशाफलम् ॥ १०० ॥

अर्थ—यात्रामें अपने घरसे निकलनेपर समीपवर्त्तीभी किसी अन्य गृहतक जानेपर पूरी यात्रा समझी जाती है और किसीका मत है कि अपनी ग्रामसीमाका उल्लंघन होनेपर पूरी यात्रा समझी जाती है, इसका आशय यह है कि प्रस्थान इतने दूरपर रखना चाहिये, या यात्रा करनेपर इतने दूरतकही शुभाशुभ शकुन विचारणीय है। प्रस्थानमें जो अपने हृदयमें प्रियवस्तु हो उसीको रक्खे या सोना, अन्न, हल्दी, फलको रक्खे ॥ १०० ।

अथ योगिनी ।

तिथि पू उ अ नि द प वा ई, अशुभ होई सम्मुख डाई ॥ १०१ ॥

अर्थ—अब योगिनीका विचार लिखते हैं—प्रतिपदासे लेकर क्रमसे पू (पूर्व)१, उ (उत्तर)२, अ (अग्नि)३, नि (निर्ऋति)४, द (दक्षिण)५, प (पश्चिम)६

६ वा (वायव्य) ७, ई (ईशान) ८ इन आठों दिशामें आठ तिथि ग्रहण करे, फिर नवमीसे पूर्व, उत्तर आदि ऊपरके क्रमसे गिने जैसा कि पूर्वमें ९, उत्तरमें १०, अग्निकोणमें ११, निर्ऋतिमें १२. दक्षिणमें १३, पश्चिममें १४, वायव्यमें १५ और ईशानमें ३० अमावास्या तिथि जाने । इस प्रकार दो दो तिथिमें प्रत्येक आठों दिशाओंमें होती हैं । आशय यह है कि, जो तिथि जिस दिशामें कही गयी है उस तिथिमें उस दिशामें योगिनी रहती है उस योगिनीको सम्मुख और दाहिन करके यात्रा आदि नहीं करनी । यहां शङ्का होती है कि मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थोंमें "तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ताः" अर्थात् सम्मुख और वाम योगिनी शुभ नहीं । तथा ग्रन्थान्तरोंमें "योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वांछितदायिनी । दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा ॥" इसमें दक्षिण और सम्मुख त्याज्य लिखा है । यह भेद क्यों ? इसका उत्तर इस प्रकारसे होता है कि, साधारण यात्रामें दक्षिण और संमुख योगिनी वर्जित है तथा युद्ध यात्रा (शत्रुओंसे लडनेके लिये जो यात्रा होती है उस) में वाम और सम्मुख योगिनी त्याज्य है । योगिनी चक्र नीचे स्पष्ट है १०१॥

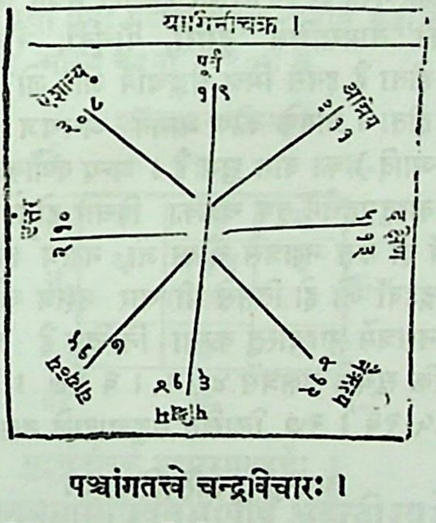

पञ्चांगतत्त्वे चन्द्रविचारः ।

सम्मुखे चार्थलाभश्च दक्षिणे सुखसम्पदा ।
पृष्ठस्थे मरणं चैव वामे चन्द्रे धनक्षयः ॥ १०२ ॥

अर्थ–चन्द्रवास और फल लिखते हैं–चन्द्रवास जानना सुलभ है जैसा कि मेषादि बारह राशि हैं और पूर्वादि क्रमसे चार दिशा हैं अतः पूर्वादि क्रमसे मेषादि बारह राशि क्रमसे गिननेसे तीन आवृत्तिमें पूरी होती है और तीन २ राशि एक २

दिशामें हो होती हैं। जैसे कि मेष, सिंह, धनु पूर्वमें, वृष, कन्या, मकर दाक्षिणमें। मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें। कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें। जिस दिन जिस राशिपर चन्द्र हो वह राशि पूर्व लिखितानुसार जिस दिशामें पडता हो उस दिन उसी दिशाका चन्द्र जनना। वह चन्द्र यात्रा गृहप्रवेशादिमें सम्मुख हो तो अर्थ लाभ, दक्षिणमें सुख सम्पदा, पृष्ठमें मरण और वामचन्द्रमें धनक्षय होता है १०२॥

इतियात्रा ॥ १० ॥

वास्तौ मार्त्तण्डे ।

नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभोऽन्योऽन्यथा
तत्कोणेन्त्यभुवां शुभं निवसतां दोषाः परेषामलम् ।
तुर्यात्पञ्चदशात्त्रिदिक्परिमिताद्वेदाब्धिपञ्चक्रमा-
न्निद्यान्यर्कयुतादिगेहकरणे भानि प्रवेशेऽपि च ॥ १०३ ॥

अर्थ—अब वास्तुप्रकरणका विषय लिखते हैं—तहाँ प्रथम ग्रामका शुभाशुभ विचार लिखते हैं—बसनेवालेको नामराशिसे दूसरी, पाँचवीं, नौवीं, दशवीं, ग्यारहवीं राशिवाला ग्राम शुभ होता है इनसे भिन्न सङ्ख्यामें जो जो राशि परै उस राशिवाला ग्राम शुभ नहीं होता। ग्रामके कोण भागमें अन्त्यज (धोबी, चमार, नट, मलाह, भिल्ल, पाशी आदि) का वास शुभ है। अन्य वर्णोंका कोणमें बसना बहुत दोषकारक है। अब वास्तुमुहूर्त्तमें वृष चक्रका विचार होता है सो इस प्रकार है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उस नक्षत्रसे चौथा जो नक्षत्र हो तिससे चार नक्षत्र, तथा सूर्यनक्षत्रसे पन्द्रहवाँ जो हो तिससे भी चार नक्षत्र और सूर्यनक्षत्रसे तेईसवीं जो हो तिससे पाँच नक्षत्रमें गृहवास्तु करना निन्दित है तथा प्रवेशभी निन्दित है। सारांश यह है कि सूर्यके नक्षत्रसे ४।५।६।७। १५। १६ ।१७। १८। २३ ।२४। २५।२६। २७ लिखित सङ्ख्यावाले नक्षत्र निन्दित हैं ॥१०३॥

वासभूमिप्लवास्थिविचारः ।

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद्द्विप्रादिकोऽग्र्योऽखिले
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं तत्स्थिरम् ।
सङ्क्प्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम-
श्चेत्ताद्दिग्गतमादिशेत्तु हयपैः शल्यं सुधीर्मध्यतः ॥ १०४ ॥

अर्थ–अब वास्तुभूमिका प्लव (ढार) और अस्थिनिर्णय लिखते हैं–नीचको प्लव कहते हैं । ब्राह्मणादिक जो चार वर्ण हैं उनके प्रदक्षिण क्रमसे उत्तरादि प्लव भूमिमें गृह शुभ होते हैं, अर्थात् ब्राह्मणका उत्तर प्लवमें, क्षत्रियका पूर्व प्लवमें, वैश्यका दक्षिण प्लवमें, शूद्रका पश्चिम प्लवमें गृह शुभ होता है । इन चार वर्णोंसे अन्य जो वर्ण हैं उनके लिये कुछ नियम नहीं है । और सभी वर्णोंको उचित है कि जहाँपर बसनेमें अपना मन स्थिर हो उस जगह घर करे । अब शल्य (हड्डी) जाननेका प्रकार यह है कि, गृह निर्माण करनेवाला घर बनानेके विषयमें प्रथम जो कुछ प्रश्न करे उस प्रश्नका पहिला अक्षर यदि वर्गोंके आदिका वर्ण (अ, क, च, ट, त, प, य, श) में से कोई हो तो क्रमसे पूर्वादि आठों दिशाओंमें जिस दिशामें वह अक्षर आवे उस दिशामें शल्य जानना अर्थात् प्रश्नादि अक्षर 'अ' होनेसे पूर्वमें, 'क'से अग्निकोणमें, 'च' से दक्षिणमें, 'ट'से नैर्ऋत्य. 'त'से पश्चिममें, 'प'से वायव्यमें, 'य'से उत्तरमें 'श'से ईशानमें अस्थि जाने और "ह प य"से मध्य भागमें अस्थि जाने । भूमिके नौ विभाग इस प्रकार करे कि सम्पूर्ण वासभूमिको चतुष्कोण मापकर त्रिभाग २ अन्तर पर दो आडी और दो तिरछी रेखा खैंचे, बस, तुल्य नौ भाग हो जायँगे जैसा कि नीचे चक्र दिखाया है । यहाँ 'प' से वायव्य और 'य' से उत्तरमें अस्थि कहा है तथा पुनः मध्यमेंभी इन दोनोंसे कहा है अतः। ज्ञात होता है कि इन दोनोंसे दो जगह अस्थि कहना ॥ १०४ ॥

शल्यज्ञानचक्रम् ।

	ई.	पू.	आ.	
	श	अ	क	
उ.	य	पयश (मध्य)	च	द.
	प	त	ट	
	वा॰	प.	नै.	

मुहूर्त्तदीपके गृहारम्भमुहूर्त्तः ।

मासे फाल्गुनमार्गमाधवनभःपौषे ध्रुवेन्द्वीज्यभे
हस्तस्वातिवसुद्वये शनिभृगुज्ञेज्ये गृहारम्भणम् ।
द्वारं प्राक्तिमिमेषकौर्पिषु शुभं याम्यं नृयुग्माङ्गना
नक्रे पश्चिममुक्षतौलिकलशे कर्काश्विसिंहे ह्युदक् ॥ १०५ ॥

अर्थ–अब गृहारम्भमुहूर्त्त लिखते हैं--फाल्गुन, मार्गशीर्ष, वैशाख, श्रावण, पौष इन मासोंमें ध्रुव (३ उत्तरा, रोहिणी) मृगशिर, पुष्य, हस्त, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें, शनि, शुक्र, बुध, बृहस्पति इन दिनोंमें गृहारम्भ करना शुभ है। मीन (चैत्र), मेष (वैशाख) कौर्पि मार्गशीर्षमें पूर्वद्वार शुभ है। मिथुन, (आषाढ) कन्या (आश्विन) नक्र (माघ) में दक्षिण द्वार शुभ है । वृष (ज्येष्ठ) तुल (कार्त्तिक,) कलश (फाल्गुन) में पश्चिम द्वार शुभ है। कर्क (श्रावण) अश्वि (पौष), सिंह (भाद्रपद) में उत्तर द्वार शुभ है । पूर्व जो गृहारम्भका मास पाँच लिखा है और यह बारहों मासोंके द्वारपरत्वसे विधान किया है वह इस करणसे है कि तृणादि निर्मित गृहमें मासका नियम नहीं है, करे तो ठीक, नहीं तो विहितका तो विधान है ही ॥ १०५ ॥

वर्गविचारे दीनानाथः ।

अकचटतपयशवर्गास्ताक्ष्यौं तु हरिश्वाह्याखेणाजाः ॥
स्ववर्गात्पञ्चमः शत्रुर्द्विघ्नो वर्गः परेण युक् ॥
मिथो गजैः शेषितश्च योऽधिकः सोऽर्थदः स्मृतः ॥ १०६ ॥

अर्थ–अब वर्गविचार लिखते हैं--अकारादि सोलह स्वर और ककारादि तेंतीस वर्ण हैं इनमें आठ वर्गोंके विभाग हैं जैसे 'अ'से अवर्गका बोध होता है, अवर्गमें सोलहों स्वर लिये जाते हैं, अतः जिस वस्तु, ग्राम, मनुष्यके नामादिमें स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः हों वे अवर्ग कहाते हैं तथा अवर्गवाले गरुडवर्ग कहे जाते हैं। इसी तरह 'क'से कवर्ग (क ख ग घ ङ) मार्जार'च'से चवर्ग (च छ ज झ ञ) सिंह 'ट'से टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) श्वान, 'त'से तवर्ग (त थ द ध न) नाग 'प' से पवर्ग (प फ ब भ म) मूषक 'य' से यवर्ग (य र ल व) मृग, 'श' से शवर्ग (श ष स ह) मेष वर्ग कहे जाते हैं। इन आठों वर्गोंमें अपनेसे पाँचवाँ शत्रु होता है जैसे गरुड--सर्प, मार्जार-मूषक, सिंह–मृग, श्वान–मेष इनमें परस्पर शत्रुता है। जिन दोके साथ लाभालाभका विचार करना हो उन दोनोंकी अवर्गादि वर्गसंख्याको दूना करके एककी वर्गसंख्या दूसरेमें परस्पर मिलावे और दोनों जगह आठका भाग देय जिसका शेष अधिक बचे वह अर्थ देनेवाला होता है ॥ १०६ ॥

वर्गचक्रम् ।

१ अवर्ग	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ	गरुड
२ कवर्ग	क ख ग घ ङ	मार्जार
३ चवर्ग	च छ ज झ ञ	सिंह
४ टवर्ग	ट ठ ड ढ ण	श्वान
५ तवर्ग	त थ द ध न	नाग
६ पवर्ग	प फ ब भ म	मूष
७ यवर्ग	य र ल व	मृग
८ शवर्ग	श ष स ह	मेष

अथायविचारः ।

फलेऽष्टभक्तेऽष्टायाः स्युः सर्वेषां विषमाः शुभाः ।
समा अग्नेरन्त्यजस्य वेश्याखगपयोः क्रमात् ॥
ध्वजधूम्रसिंहश्वानवृषखरहस्तिकाकाः ॥ १०७ ॥

अर्थ—अब आयविचार लिखते हैं—वासभूमिका जो क्षेत्रफल हो उसमें आठका भाग देनेसे शेषके अनुसार आठ आय १ ध्वज, २ धूम्र, ३ सिंह ४ श्वान, ५ वृषभ, ६ खर, ७ हस्ती, ८ काक क्रमसे होते हैं। इन आयोंमें विषम जो आय (१ ध्वज, ३ सिंह, ५ वृषभ, ७ हस्ती) हैं वे शुभ होते हैं । तथा सम आय (२ धूम्र, ४ श्वान, ६ खर, ८ काकभी (क्रमसे अग्नि, अन्त्यज, वेश्या और खगप,) व्याध । के लिये शुभ होते हैं अर्थात् अग्निशाला, या अग्निके कार्यसे जीविका करनेवाले सोनार आदिके गृह धूम्र आयमें शुभ होते हैं। अन्त्यज (मुसलमान आदिनीच वर्ण) के गृह श्वान आयमें शुभ होते हैं। वेश्याके गृह खर आयमें शुभ होते हैं और व्याध या मक्षीके रहनेके घर काक आयमें शुभ होते हैं ॥ १०७ ॥

कुण्डकल्पद्रुमे विश्वकर्मा ।

यत्र दण्डैर्मितं क्षेत्रं तत्रायो हस्तसम्मितैः ।
हस्तेन मीयते यत्र तत्रायः स्यादिहाङ्गुलैः ॥ १०८ ॥

अर्थ–जहाँ दण्डसे गृह क्षेत्र भूमि मापा जाय वहाँ हस्तमानसे आय लेना चाहिये तथा जहाँपर हस्त (हाथसे) क्षेत्र मापन किया जाय वहाँ अङ्गुलमानसे आय लेना चाहिये ॥ १०८ ॥

रुद्रकल्पद्रुमे ।

स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके ।
खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरात् ॥ १०९ ॥

अर्थ–स्तम्भोच्छ्राय (खम्भेको घरमें लगाने) में, शिल (पत्थर) के न्यासमें सूत्रयोजन (रस्सीसे सीधे करने) में, कीलस्थापनमें मकानके खननारम्भ और अवट-संस्कारमें अग्निकोणसे प्रारम्भ करना चाहिये ॥ १०९ ॥

चिन्तामणौ विशेषः ।

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि
मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात् ।
वेशोम्बुपेज्यानिलवासवेषु
नावश्यमस्तादिविचारणात्र ॥ ११० ॥

अर्थ–पुराने घरमें और अग्नि आदिके उपद्रवसे नव घरमेंभी मार्ग (अगहन) कार्तिक और श्रावण इन महीनोंमें शतभिषा, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें प्रवेश शुभ होता है । ऐसे प्रवेशमें गुरु और शुक्रास्तादि विचार करना अनावश्यक है ॥ ११० ॥

वामरविविचारः प्रवेशविधिश्च ।

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पञ्चभे प्राग्वदनादिमन्दिरे ।
शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौराञ्राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ।
अग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्मभकूटशुद्धम् ॥ १११

अर्थ–अब वाम रविका विचार लिखते हैं–गृहप्रवेशके लग्नसे ८।९।१०।११।१२ इन स्थानोंमें सूर्यके रहते पूर्वमुखके गृहप्रवेशमें वाम रवि होता है इसी तरह दक्षिण-मुखके ग्रहप्रवेशमें लग्नसे ५।६।७।८।९ इन स्थानोंमें सूर्यके होनेसे वाम रवि होता है पश्चिममुखके गृहप्रवेशमें लग्नसे २।३।४।५।६ इन स्थानोंमें सूर्यके होनेसे वाम रवि होता है और उत्तरमुखके गृहप्रवेशमें प्रवेशलग्नसे ११।१२।१।२।३ इन स्थानोंमें सूर्यके

होनेसे वाम रवि होता है। यह गृहप्रवेशमें आवश्यक है। प्रवेश समयमें शिल्पज्ञ (चित्रकार या सुतार) दैवज्ञ (ज्योतिषी) विधिज्ञ (कर्मकाण्डी पुरोहित) और ग्रामवासी लोगोंका भूमि (जमीन) हिरण्य (सोना) और वस्त्रसे पूजन (संतोष) करके अपने आगेमें जलपूर्ण कलश और ब्राह्मणको करके भकूट शुद्ध अर्थात् अपनी नामराशिके गृहकी नामराशि द्विर्द्वादश, नवपञ्चम, और षडष्टकमें न हो ऐसे घरमें राजा या अन्य मनुष्य प्रवेश करे ॥ १११ ॥

अथ दोषापवादा ज्योतिर्निबन्धे ।

दोषाश्च बहवः सन्ति गुणाः स्वल्पाः कलौ युगे ।
तथाऽपि दोषा नश्यन्ति स्वापवादगुणैः सह ॥ ११२ ॥

अर्थ—कलियुगमें दोष बहुत होते हैं और गुण थोडे होते हैं परन्तु गुणोंके साथ दोषोंके अपवाद (परिहार) होनेसे सब दोष नाश हो जाते हैं। इसलिये आगे परिहार लिखते हैं ॥ ११२ ॥

चिन्तामणौ ।

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणवङ्गखसेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ११३ ॥

अर्थ—अब दोषोंका अपवाद लिखते हैं—तिथि और दिनसे उत्पन्न जो कुयोग (दुष्ट योग) हैं, तथा तिथि और नक्षत्रसे उत्पन्न जो दुष्ट योग हैं और नक्षत्र व दिनसे उत्पन्न जो कुयोग हैं और तीनोंसे (तिथि, दिन, नक्षत्रोंसे उत्पन्न जो हैं वे हूणदेश, वङ्ग (बङ्गाला), खस (नेपाल) इन्हीं देशोंमें वर्जित हैं अन्य देशोंमें नहीं ॥ ११३ ॥

मृत्युक्रकचदग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभाञ्जगुः ।
केचिद्यामोत्तरं चान्ये यात्रायामेव निन्दितान् ॥ ११४ ॥

अर्थ—मृत्यु, क्रकच, दग्ध, आदि दोष चन्द्रमाके शुभ होनेसे शुभ होते हैं तथा किसीका मत है कि प्रहरोत्तर शुभ होते हैं और कोई यात्रामात्रमें निन्दित कहते हैं ॥ ११४ ॥

चक्राणि

	योग.	सू.	चं	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
१	चरयोग	पू. स्वा.	आर्द्रा	वि.	रो.	पुष्य	भ.	मू.
२	क्रकचयोग	१२ ति.	११	१०	९	८	७	६
३	दग्धयोग	१२ ति.	११	५	३	६	८	९
४	मृत्युयोग	ति. १।६।११	२।७।१२	१।१।६	भ. ९ १४	२।७ १२	३।८ ११	५।१० १५
५	सिद्धियोग	ति०	ति०	३।८ १३	७।२ १२	५।१० १५	१।६ ११	८।९ १४
६	उत्पातयोग	वि.	पू.	ध.	रे.	रो.	पुष्य	उ.
७	मृत्युयोग	अनु.	उ.	श.	अ.	मृ.	आश्ले.	ह.
८	कालयोग	ज्ये.	अ.	पू.	भ.	आर्द्रा	म.	चि.
९	सिद्धियोग	मू.	श्र.	उ.	कृ.	पु.	पू.	स्वा.
१०	यमदंष्ट्रयोग	म. ध.	मू. वि.	कृ. अ:	पू. षा. पु.	उ. षा. अ.	रो. अ.	श्र. श.
११	यमघंट	म.	वि.	आ.	मू.	कृ.	रो.	ह.
१२	मुशलवज्र	म.	चि.	उ. षा.	ध.	उ.	ज्ये.	रो.
१३	अमृतसिद्धि	ह.	श्र.	अ.	अनु.	पुष्य	रे.	रो.

कुलिक आदि मुहूर्तचक्रम् ।

	रवि.	चन्द्र.	मंगल.	बुध.	बृह.	शुक्र.	शनि.
कुलिक. दुर्मुहूर्त.	१४	१२	१०	८	६	४	२
कालवेला.	८	६	४	२	१४	१२	१०
यमघंट	१०	८	६	४	२	१४	१२
कंटक.	६	४	२	१४	१२	१०	८
अर्द्धयाम.	७	९	३	९	१५	५	९

यामार्धचक्रम् ।

वार	यामार्ध. संख्या.	प्रहर.	तिथि.
र.	४	१२	१
च.	७	२४	२८
मं.	२	४	८
बु.	५	१६	२०
गु.	८	२८	३२
शु.	५	८	१२
श.	६	२०	२४

विपाशेरावतीतीरे शतद्र्वाश्च त्रिपुष्करे ।
विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥ ११९ ॥

अर्थ-विपाशा नदी और इरावती नदीके तीरमें जो देश हैं तथा शतद्रू नदीके तीरस्थ देश और त्रिपुष्करदेशमें होली (फाल्गुनकी पूनम) से पहिलेके आठदिनमें विवाहादि शुभ कार्य नेष्ट हैं ॥ ११५ ॥

अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानी-
मयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति ।
परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं
दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ११६ ॥

अर्थ-बहुतसे दुष्ट योगमें एकभी उत्तम सुयोग हो जानेसे वह सुयोग समस्त दुष्ट योगको नाश करके सिद्धि देता है । तथा किसी आचार्यका मत है कि लग्न शुद्ध होनेसे कुयोग (दुष्ट योग) का नाश हो जाता है और भद्रा आदि जो दोष हैं सो दिनार्द्धसे ऊपर शुभ होते हैं ॥ ११६ ॥

पातोपग्रहलत्तासु नेष्टोङ्घ्रिः खेटपत्समः ।
पौष्णमेषभगे चन्द्रे प्रतिशुक्रो न गर्हितः ॥ ११७ ॥

अर्थ-पात उपग्रह और लत्तादोषोंसे जो नक्षत्र त्याग किये जाते हैं उनमें केवल ग्रह जिस चरणको दूषित करता हो वही चरण त्याज्य है अन्य चरणोंमें दोष नहीं । रेवती और मेषराशिके जो नक्षत्र (अश्विनी भरणी कृत्तिकाका प्रथम चरणों) में जबतक चन्द्रमा रहैं तबतक सम्मुख शुक्र और दक्षिण शुक्रका दोष नहीं होता है ॥ ११७ ॥

एकार्गलोपग्रहपातलत्ता यामित्रकर्त्तर्युदयास्तदोषाः ।
नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषाः ॥ ११८ ॥

अर्थ-एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, यामित्र, कर्त्तरी और ग्रहोंके उदयास्तदोष जो विवाहादिक कार्यमें वर्ज्य कहे हैं वे सब दोष चद्रन्मा और सूर्यके बलसे सम्पन्न लग्न होनेसे नाश हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्यका उदय होनेसे रात्रि (अन्धकार) नाश होता है ॥ ११८ ॥

अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्षदग्ध-
तिथ्यन्धकाणबधिराङ्गमुखाश्च दोषाः ।
नश्यन्ति विद्गुरुसितेष्विह केन्द्रकोणे
तद्वच्च पापविधुयुक्तनवांशदोषाः ॥ ११९ ॥

अर्थ–वर्षदोष; अयनदोष, ऋतु दोष, तिथि दोष, मासदोष, नक्षत्रदोष दग्धातिथिदोष, अन्धलग्न–काणलग्न–बधिरलग्नादिदोष और पापग्रह तथा चन्द्रमासे युक्त जो नवांश दोष हैं वे सब दोष बुध, बृहस्पति और शुक्रके केन्द्र (१ ।४।७।१०) कोण (९।९) में होनेसे नाश हो जाते हैं ॥ ११९ ॥

केन्द्रे कोणे जीव आये रवौ वा
लग्ने चन्द्रे वापि वर्गोत्तमे वा ।
सर्वे दोषा नाशमायान्ति चन्द्रे
लाभे तद्वद्दुर्मुहूर्त्तांशदोषाः ॥ १२० ॥

अर्थ–केन्द्र १।४।७।१० और कोण ९।९ में बृहस्पतिके होनेसे वा ग्यारहवें स्थानमें रविके होनेसे या लग्न और चन्द्रमाके वर्गोत्तममें होनेसे सब दोष नाश होते हैं तथा चन्द्रमाके ग्यारहवें स्थानमें होनेसे दुर्मुहूर्त (दुष्टमुहूर्त) और दुष्ट अंशदोष नहीं होते हैं ॥ १२० ॥

वेध–विषदोषभंगे मार्त्तण्डे ।

दुष्टे योगे हेम चन्द्रे च शङ्खं
धान्यं तिथ्यर्द्धे तिथौ तण्डुलांश्च ।
वारे रत्नं भे च गां हेम नाड्यां
दद्यात्सिन्धूत्थं च तारासु राजा ॥ १२१ ॥

अर्थ–दुष्ट योगमें सुवर्ण (सोना), दुष्ट चन्द्रमें शङ्ख. दुष्ट करणमें धान्य; दुष्ट तिथिमें चावल, दुष्ट दिनमें रत्न (हीरा), दुष्ट नक्षत्रमें गाय, दुष्ट नाडीमें सोना, दुष्ट तारामें सैंधा निमक दान करके राजा शुभ कार्य करे ॥ १२१ ॥

लग्नेशे भवगेऽथवा शशिनि सदृष्टे शुभे वाङ्गगे
होरायां च शुभस्य वा व्यधभयं नास्तीति पूर्वे जगुः ।
चन्द्रः सौम्यभगोऽथवा शुभसुहृद्दृष्टोथवा स्वांशगः
कोणास्ताम्रसुखेषु वा विषभयं हन्तीह साङ्गेऽङ्गपः ॥ १२२ ॥

अर्थ–लग्नका स्वामी ग्यारहवें स्थानमें हो, वा लग्न चन्द्रमा और शुभ ग्रहोंसे दृष्ट देखा जाता हो; वा चन्द्रवर्जित शुभ ग्रह लग्नमें हो वा शुभ ग्रहकी होरा लग्नमें हो तो वेधका दोष नहीं होता है यह पूर्वाचार्योंने कहे हैं । यदि चन्द्रमा शुभ ग्रहकी राशिमें हो

अथवा चन्द्रमा शुभ ग्रह और मित्र ग्रहसे दृष्ट (देखा जाता) हो, वा चन्द्रमा अपने कर्कके नवमांशमें हो वा चन्द्रमा लग्नसे कोण (५।९) सप्तम, दशम, चतुर्थ स्थानमें हो तो विष घटीका दोष नहीं होता है। तथा लग्नपति लग्न और पूर्वोक्त स्थान ५।९।७।१०।४ में हो तो भी विष घटी दोष नहीं होता है ॥ १२२ ॥

कन्यातौक्षिकशत्रुगेहगभृगुः षष्ठेऽपि नो भङ्गकृ-
द्भौमो मृत्युगतोऽपि शत्रुशशिनोर्गेहस्थितो वार्कगः।
द्व्यर्के ताम्रसुवर्णमष्टरिपुके गोयुग्ममर्थाङ्गके
रौप्यं कांस्यमथैकनाडियुजि गोस्वर्णादि दत्त्वोद्वहेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ—अब शुक्रका षष्ठ दोष और मङ्गल अष्टम तथा अस्तदोष और द्विर्द्वादशादिका परिहार लिखते हैं कन्या राशि शुक्रका नीच है और धनु शत्रुकी राशि है अतः इन दोनों राशियोंमें शुक्रके होनेसे षष्ठस्थ शुक्र दोष नहीं होता तथा मङ्गलका शत्रु (बुध) की राशि मिथुन कन्या है और कर्क नीच है इन तीनों राशियोंमें मंगलके रहते अष्टममंगलका और अस्त मंगलका दोष नहीं होता है। यदि वरकन्याके मेलापकमें द्विर्द्वादश हो तो ताम्र (तामा) दान करे, षडाष्टक हो तो दो गायें नवमपञ्चम हो तो रौप्य कांस्य और नाडी दोषमें गाय तथा सोना दान करके विवाह करे ॥ १२३ ॥

अर्द्धोदयमहोदययोगः।

माघे मासि रवौ दर्शे व्यतीपाते श्रवान्विते।
अर्द्धोदयाभिधो योगः सूर्यपर्वशताधिकः।
अयमुक्तो दिवायोगः कश्चिन्न्यूनो महोदयः ॥ १२४ ॥

अर्थ—अब अर्द्धोदय और महोदयका योग लिखते हैं—माघमासकी अमावास्या रविवारी हो तथा व्यतीपात योग और श्रवण नक्षत्र हो तो अर्द्धोदययोग होता है यह अर्द्धोदय योग सौ सूर्यपर्व (सूर्यग्रहण) से अधिक है। परन्तु यह दिनका योग है अर्थात् पूर्वोक्त योगकारक तिथ्यादि हैं वे दिनमें मिलनेसे ही अर्द्धोदय माना जाता है, रात्रिमें, नहीं। तथा पूर्वोक्त तिथ्यादिकोंमें एक न्यून होनेपर महोदय नामका योग होता है ॥ १२४ ॥

अथ गजच्छायायोगः।

पितृपक्षे त्रयोदश्यां हस्तेऽर्केऽब्जे मघागते।
गजच्छायाभिधो योगः श्राद्धेऽक्षय्यफलप्रदः॥ १२५॥

अर्थ–अब गजच्छायायोग लिखते हैं–पितृपक्ष "आश्विनकृष्ण" (दक्षिणमें भाद्रपदकृष्ण कहते हैं) की त्रयोदशीको हस्तनक्षत्रमें सूर्य और मघानक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो गजच्छाया नामका योग होता है। इसमें पितरोंका श्राद्ध करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है॥ १२५॥

अथ कापिलाषष्ठी।

आश्विने कृष्णपक्षे च षष्ठ्यां भौमोऽथ रोहिणी।
व्यतीपातस्तदा षष्ठी कापिलानन्तपुण्यदा॥ १२६॥

अर्थ–अब कापिलाषष्ठीयोग लिखते हैं–आश्विन कृष्ण षष्ठीको मंगलवार रोहिणी नक्षत्र और व्यतीपात योग हों तो कापिलाषष्ठी कहलाती है यह अनन्त पुण्यको देती है॥ १२६॥

रविसप्तमी बुधाष्टमी सोमवती।

सप्तमी रविवारेण बुधवारेण चाष्टमी।
अमा सोमसमायुक्ता सूर्यपर्वशताधिका॥ १२७॥

अर्थ–किसीभी महीनेके किसीभी पक्षकी सप्तमी रविवारको हो तो वह रविसप्तमी कहाती है। अष्टमी बुधवारी हो तो बुधाष्टमी कहती है। तथा कोईभी अमावास्या सोमवारी हो तो वह सोमवती कहलाती है ये तीनों पर्व प्रत्येक सौ सूर्यपर्वसे अधिक हैं॥ १२७॥

स्कन्दपुराणे क्षेत्रमाहात्म्यम्।

रेवा च सरितां श्रेष्ठा भुवि पुण्या कृताधिका।
तस्मादिष्टतरं क्षेत्रं कुरूणां वै सुरोत्तमाः॥ १२८॥
तस्माच्छतगुणं मन्ये प्रयागं तीर्थमुत्तमम्।
तस्माद्दशगुणा काशी काश्या दशगुणा गया॥
ततो दशगुणा प्रोक्ता कुशस्थलयातिपुण्यदा॥ १२९॥

अर्थ––नदियोंमें रेवा (नर्मदा) नदी श्रेष्ठ और अधिक पुण्य देनेवाली है, रेवासेभी अधिक पुण्य देनेवाला कुरुक्षेत्र है। कुरुक्षेत्रसे शतगुण पुण्य देनेवाला प्रयाग

तीर्थ है । प्रयागसे दशगुण काशी है । काशीसे दशगुण गया है गयासेभी दशगुणा कुशस्थली (द्वारका) पुण्यको देनेवाला है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अवन्तिकाखण्डे ।

गाङ्गं च सकलं पुण्यं नार्मदं यामुनं तथा ।
जायते चन्द्रभागं च सङ्गमेश्वरदर्शनात् ॥ १३० ॥

अर्थ–गंगाजीके स्नानमें, नर्मदास्नानमें, यमुनास्नानमें और चन्द्रभागा नदीके स्नानमें जो पुण्य है वह समस्त पुण्य संगमेश्वर महादेवके दर्शनसे होते हैं ॥१३० ॥

क्षिप्रानदीप्रशंसा ।

क्षिप्राक्षिप्रेति यो ब्रूयाद्यत्र कुत्रापि मानवः ।
स एव शिवतां याति न जाने स्नानजं फलम् ॥ १३१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य जिस किसी जगहपर रहकरभी क्षिप्रा क्षिप्रा कहता है वह शिव हो जाता है फिर स्नान करनेसे तो क्या फल होगा उसको नहीं जानता अर्थात् अनन्त पुण्य होता है ॥ १३१ ॥

मुण्डनविधिः ।

मुण्डनं चोपवासं च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां गिरिजां गयाम् ॥ १३२ ॥

अर्थ–जितने उत्तम तीर्थ पृथ्वीपर हैं उन सबोंमें मुण्डन और उपवास अवश्य करना चाहिये यह विधि है परन्तु कुरुक्षेत्र, विशाला (उज्जयिनी), गिरिजा और गया इन तीर्थोंमें मुण्डन और उपवास करना वर्जित है ॥ १३२ ॥

आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मृत्युलोके महाकालं लिंगत्रय नमोस्तु ते ॥ १३३ ॥

अर्थ–आकाशमें तारकलिंग, पातालमें हाटकेश्वरलिंग, मृत्युलोकमें महाकाललिंग (उज्जयिनीमें) इन तीनों लिंगोंको नमस्कार करते हैं ॥ १३३ ॥

महादिकालाख्य उतात्र सेवे श्रीसुन्दरं तीर्थमिदं ह्यवन्त्याः ।
न द्वारका नो मथुरा न काशी गदाधरं यस्य समं न तीर्थम् ॥

अर्थ–जिस लिये अवन्ती (उज्जयिनी) पुरी महाकालसे सेवित है इस लिये उज्जयिनी सुन्दर तीर्थके बराबर द्वारका, मथुरा, काशी और गदाधरतीर्थ गयातीर्थ भी नहीं है ॥ १३४ ॥

संतर्पिता ये पितरो जलेन वाञ्छन्ति भूयो न च पिण्डदानम् ।
अत्राम्बरापीडनतोयलेशं सुधाधिकं तिष्ठति पूर्वजानाम् १३५

अर्थ–जिस गदाधर गया तीर्थमें एक वार केवल जलमात्रसे पितरोंका तर्पण करनेसे फिर वे पितर पिण्डदानकोभी नहीं चाहते और जिस गदाधर तीर्थमें वस्त्र-निष्पीडनजलका एक विन्दु मात्र पूर्वजों (पितरों) को अमृतसेभी अधिक होकर प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥

संवीक्ष्यते प्रेतगणः सदैव ह्येकाञ्जलिं यच्छति गोत्रजातः ।
ते ब्रह्मलोके निवसन्ति हृष्टा लोकाः सदैवात्र च ये म्रियन्ते १३६॥

अर्थ–जो इस लोकमें मरकर प्रेतयोनिको प्राप्त हो जाते हैं वे सर्वदा अपने गोत्रजको एक अञ्जलि जलके लिये देखते रहते हैं जब उनको गयाजीमें एक अञ्जलि जल मिल जाते हैं तो वे लोक ब्रह्मलोकमें जाकर हर्षपूर्वक वास करते हैं ॥

श्रीकालिदासः ।

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनल-
श्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणप्रेताधिपाद्या ग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरः सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः
स्वामी शक्तिधरश्च लांगलधरः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥ १३७॥

अर्थ–ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वायु, इन्द्र, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कुवेर, वरुण, यम-राज आदि देवता और ग्रह (मंगलादिक) प्रद्युम्न, नलकूबर, ऐरावत हस्ती, चिन्तामणि, कौस्तुभमणि, शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी (कार्तिकेय) और बलभद्रजी हमारा मंगल करैं ॥ १३७ ॥

दीनानाथः पर्वनिर्णये ।

सर्वास्तिथयो दैवे औदयिक्यः, पितृकर्मण्यपराह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः।

अर्थ–पर्वोंके लिये सामान्य नियम यह है कि देवकर्मोंमें उदयव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये और पितृकर्ममें अपराह्णव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये ॥

गौरीव्रते चतुर्थीयुतैव तृतीया ग्राह्या ।

अर्थ–भाद्रशुक्ल तृतीया गौरीतीज कहाती है सो चतुर्थी मिली लेनी चाहिये ।

भाद्रशुक्लचतुर्थी गणेशचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या, संकटचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, उभयव्याप्तौ पूर्वा अव्याप्तौ परा ॥

अर्थ-भाद्रशुक्ल चतुर्थी गणेशचतुर्थी कहाती है वह मध्याह्न व्यापिनी ग्राह्य है तथा हरेक (बारहों) मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्थी संकट चतुर्थी कहाती है वह चन्द्रोदय व्यापिनी लेनी चाहिये दोनों दिन चन्द्रोदय व्यापिनी होनेसे पूर्व दिन और किसी दिनभी चन्द्रोदय व्यापिनी नहीं होनेसे पर दिनकी ग्राह्य है ॥

रामकृष्णजयन्त्यौ सूर्योदयानन्तरं स्वल्पे अपि वैष्णवैर्ग्राह्ये ।

अर्थ-रामजयन्ती (चैत्रशुक्लनवमी), कृष्णजयन्ती (भाद्रकृष्णाष्टमी) ये दोनों सूर्योदयके पीछे अल्प घट्यादि होनेपरभी वैष्णवोंसे ग्राह्य हैं ॥

आश्विनशुक्लाविजयादशमी सायंकाले श्रवणयुतातिश्रेष्ठा ।

अर्थ-आश्विन शुक्लदशमी विजया दशमी कही जाती है वह सायंकालमें श्रवण नक्षत्रसे युक्त होनेपर अतिश्रेष्ठ होती है ॥

एकादशीव्रते स्मार्त्तानां किंचिद्द्वादश्यामपि पारणमवश्यम् । वैष्णवानां तु स्वस्वमताच्छेषार्द्धरात्राष्टपञ्चचतुर्घट्युत्तरा दशमी विद्धैकादशी वर्ज्या, दशम्यादिदिनत्रयक्षयवृद्धौ द्वादशीव्रतं त्रयोदश्यां पारणम् ॥

अर्थ-हरेक एकादशीव्रतमें स्मार्त्तोंके लिये यह नियम है कि, थोडीसे थोडीभी द्वादशी होनेपर द्वादशीमेंही अवश्य पारणा होनी चाहिये । तथा वैष्णवोंको तो अपने अपने मतके अनुसार आधी रातसे ऊपर आठ घटी, पाँचघटी और चार घटी दशमी होनेसे दशमी विद्धा एकादशी समझी जाती है अर्थात् कोई अठावन घटीसे ऊपर दशमी पर वेध मानते हैं और कोई पचपन घटीसे ऊपर तथा कोई छप्पन घटीसे ऊपर दशमी होनेसे दशमीविद्धा एकादशी मानकर एकादशी त्याग देते हैं और द्वादशीका व्रत करते हैं तथा दशमी आदि तीन तिथियोंके क्षय या वृद्धि होनेसे द्वादशीका व्रत और त्रयोदशीको पारण करते हैं ॥

प्रदोषस्तु सूर्यास्तानन्तरं द्विघटीपर्यन्तं त्रयोदशीसत्त्वे उत्तमः तदूर्ध्वं द्विघटीपर्यन्तं मध्यमः, तदूर्ध्वं द्विघटीपर्यन्तमधमः ॥

अर्थ—प्रदोषव्रत प्रत्येक पक्षमें प्रदोषसमयमें त्रयोदशी होनेसे होता है, सूर्यास्तसे पीछे छः घटीपर्यन्त प्रदोष माना जाता है तिसमें यह नियम है कि सूर्यास्तसे पीछे दो घटीके भीतर त्रयोदशी मिले तो उत्तम प्रदोष होता है तथा सूर्यास्तानन्तर दो घटीके पीछे और चार घटीके भीतर त्रयोदशी आ जाय तो मध्यम और चार घटीके पीछे छः घटीपर्यन्त त्रयोदशीका लाभ हो तो अधम जानना ॥

शिवरात्रिव्रते मध्यरात्रव्यापिनी कृष्णचतुर्दशी ग्राह्या,
व्याप्ताव्याप्तौ परा ॥

अर्थ—प्रत्येक मासकी कृष्णचतुर्दशी शिवचतुर्दशी या शिवरात्रि कही जाती है वह मध्यरात्रिव्यापिनी होनी चाहिये उसमें दोनों दिन मध्यरात्रिव्यापिनी हो तो पर दिन और दोनों दिनमें मध्यरात्रिव्यापिनी नहीं हो तोभी पर दिन व्रतमें लेना चाहिये ॥

दीपमाली सन्ध्याकाले कार्त्तिककृष्ण अमा व्याप्ताव्याप्तौ परा ।

अर्थ—कार्त्तिक कृष्ण अमावास्याको सन्ध्याकालमें दीपमालिका होती है वह यदि दोनों दिन सायंकालव्यापिनी हो तो पर दिन और दोनों दिनभी यदि सन्ध्यासमयमें न हो तोभी परदिन होनी चाहिये । इसमें प्रदोषसमयमें लक्ष्मी पूजन लिखा है परन्तु लोगोंने चौघडिया आदि देखकर फेरफार करते हैं सो ठीक नहीं ॥

होलिका फाल्गुने विष्टिं विना रात्रौ पूर्णिमायां विष्टिसत्त्वे
पुच्छे कार्या ॥

अर्थ—फाल्गुनकी पूर्णिमामें होलिका दहन होता है सो सायंकालमें होनाचाहिये परन्तु पञ्चदशी (पूनम) के पूर्वार्द्धमें भद्रा होती है सो यदि सायंकालमें पड जाय तो भद्रा विताकर पीछे रात्रिके किसी समयमें होलिका दाह करे और यदि सम्पूर्ण रात्रि भद्रासे आक्रान्त हो और दूसरे दिन दिनहीमें पूर्णिमाका अन्त हो तो भद्राके पुच्छमें अर्थात् भद्राके आखरी तीन घटीमें होलिका दहन करे ॥

समरसार वादजयदौषधी ।

चक्रमर्दकगोजिह्वा शिखिचूडाजटास्वपि ।
एकैका वादजयदा पुष्याकातास्य मूर्धगा ॥ १३८ ॥

अर्थ—चक्रमर्द (पमाड) गोजिह्वा (गोभी) शिखिचूडा और जटामाँसी इनमें से कोई एक भी औषधी पुष्यार्क (रविवारको पुष्य नक्षत्र) में उखाडकर मुखमें वा मस्तक पर धारण करनेसे शत्रुओंके साथ विवादमें जय देती है ॥ १३८ ॥

दीनानाथः ।

कृतार्थवांछा पुनरेकहीना धनं२ग्रहं९षोडश१६सप्त७चाष्ट ८॥
तिथि १५दिगीशं१०प्रथमं च कोष्टं१शेषेषु खा२सी७त६गि-
३ हा८क १ वी ४ णः ५ ॥ १३९ ॥

अर्थ-इच्छाके आधा करे उसमें फिर एक घटादे २।९।१६।७।८।१५।१० को प्रथम कोष्टमें जाने । बाकीमें २।७।६।३।८।१।४।५ जाने ॥ १३९ ॥

वांछात्रिघ्ना पुरा यन्मिथुनविषमकाद्ये २क १हीना क्रमात्स्या-
च्छेषार्द्धं तात्रिनिघ्नं३यदि युगविषमाद्यंतकौ स्तस्तदा ताः ॥
वेदा४श्चैवं विलोमे ऽन्यय ३इति समयोर्द्वा २ वथैको १ऽयुजोर्वा
षट्त्रिघ्नै१८र्हारयेत्सा द्वियुग४मनुहर्तिं संनिहत्यैव वाच्या॥१४०

अर्थ—पहले इच्छा जो हो उसको तीनसे गुणा करे यदि सम इच्छा हो तो २ घटादे, विषम हो तो एक घटादे । शेषके आधा करके तीनसे गुणा करे यदि समविषमाद्यंतक हो अर्थात् आदिमें सम हो और अन्तमें विषम हो तो ४ जानना, विलोम होय अर्थात् आदिमें विषम अन्तमें सम हो तो ३ जानना, आदि और अन्त दोनोंमें सम हो तो २ जानना, विषम हो तो १ जानना । उसको १८ से भागदे उससे (द्वियुग ४ मनुहार्तिं) ३ को गुणा करके जो हो लब्धि सो कहना ॥ १४० ॥

अथ मनुयुगादि पुण्यातिथयः पूर्णिमांतमानात् ।											
चै	वै	ज्ये	आ	श्रा	भा	कु	का	अ	पौ	मा	फा
३ १५	त्रे ३	१५	१० १५		३ कृ ८ कृ ३०	९ क १३कृ	१२ १५ ९ स		११	७	१५ द्वा ३० कृ

	दिनमाने ३० समयाः			
६	१२	१८	२४	३०
प्रातः	संगव	मध्याह्न	पराह्न	सायं

विष्टिपुच्छ मुखे नारदमतं भद्रायामंत्यघाटत्रयं पुच्छं								
४	८	११	१५	३	७	१०	१४	आसु तिथिषु भद्रायां
८	१	६	३	७	२	५	४	प्रहरे अंत्यघटित्रयं पुच्छं
५	२	७	४	८	३	६	१	प्रहरे आदि पंच घटयःमुखं

अथ सर्वसिद्धिकरं श्रीयंत्रम् । विधिस्तुमहादधौ।

मंत्र

२	७	६
९	५	१
४	३	८

२० यंत्र

२	९	२	७
६	३	६	५
८	३	८	१
१४	५	४	७

स्वस्तिके २० यंत्र

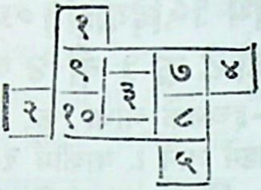

ओ श्रीमन्तव मन्दिरे यदि नरो यं कञ्चनाङ्कं वदेत्तं रामै३र्गुणितं विलोचन२युतं दिग्भिर्गुणं कारयेत् ॥ तिथ्या१५प्तं पुनरेव शेषमिति यत्तद्विंशति२०घ्नं स्फुटं तावत्वं धनधान्यसन्ततियुतो राज्याधिकारी भव ॥ १४१॥

अर्थ–हे श्रीमन् ! मनुष्य तुम्हारे भवनमें जिस किसी अङ्कको बोले उसको तीनसे गुणा करके दो जोडनेसे जो हो उसको दशसे गुणा करके पन्द्रहसे भाग दे शेष जो कुछ रहे उसको वीस २० से गुणा करके जितनी संख्या हो तत्संख्यक वर्षपर्यंत लक्ष्मी, अन्न, सन्तानोंसे संयुक्त होकर अधिकारी राजा अर्थात् सार्वभौम राजा होवो ॥ १४१ ॥

माण्डव्यः ।

दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तंत्रविद्दष्ट एव ॥ करणभगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहस्तत्र नक्षत्रसूची ॥ १४२ ॥

अर्थ–सिद्धान्तके जाननेवाले जो हैं उनके दर्शनसे दश दिनके किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है । तन्त्रके जाननेवाले तीन दिनके किये हुए पापोंको नष्ट करते हैं, करण और भगणको जाननेवाले अहोरात्रिके किया हुआ पापको नष्ट करते हैं । उसमें नक्षत्रसूची वहुत पापको करता है अर्थात् नक्षत्रसूचीके दर्शनसे मनुष्यको पापके भागी होना पडता है । सिद्धान्त उसको कहते हैं जिसमें कल्पादिसे ग्रहानयन किया गया है अर्थात् सिद्धान्तशिरोमणि आदि । जिसमें युगादिसे ग्रहानयन किया जाता है वह तन्त्र है मकरन्द आदि । जिसमें शकसे ग्रहानयन है वह करण कहलाता है ग्रहलाघवआदि ॥ १४२ ॥

वराहसंहितायाम् ।

तिथ्युत्पत्तिं न जानन्ति ग्रहाणां नैव साधनम् ॥
परवाक्येन वर्तंते ते वै नक्षत्रसूचकाः ॥ १४३ ॥

अर्थ–तिथिके उत्पत्ति अर्थात् किसका नाम तिथि है उसको और ग्रहोंके साधन अर्थात् कौन ग्रह किस तरहसे बनता है उस प्रक्रियाको जो नहीं जानते हैं दूसरेसे पूछकर एकादशी आदि व्रतादिको घूम २ कर घर २ में कहते फिरते हैं वे नक्षत्रसूची हैं ॥ १४३ ॥

मूलसूत्रे ।

वेदेषु विद्यासु च ये प्रदिष्टाः कालानुपूर्वाविहिताश्च यज्ञाः ॥
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स एव यज्ञम् ॥ १४४ ॥

अर्थ–वेदों और यज्ञोंमें कालके आश्रय करके यज्ञका आरम्भ कहा गया है इसलिये कालको जनानेवाले इस ज्योतिःशास्त्रको जो जानते हैं वही यज्ञको जानते हैं ॥ १४४ ॥

दीनानाथः ।

हरीभास्येशदुर्गेनस्मरणादेव तत्क्षणात् ॥
नश्यन्ति दोषाः पापानि जन्मान्तरकृतान्यपि ॥ १४५ ॥

अर्थ–(हरि) विष्णु, (इभास्य) गणेश, (ईश) महादेव, दुर्गा, इन (सूर्य) इन पञ्चदेवताओंके स्मरणसे अवश्यही उसी समयमें सब दोष और पूर्वजन्मको किया हुआ पाप सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १४५ ॥

लक्ष्मीकान्तं भवभयहरं गव्यवन्तीनिवासं
तार्क्ष्यारूढं कमलनयनं चन्द्रवक्त्रं प्रसन्नम् ।
श्वेताभाढ्यं कजकजगदाचक्रहस्तं शुभाङ्गं
वन्दे सत्यं बहुसुखकरं व्यासवंशाभिवन्द्यम् ॥ १४६ ॥

इति श्रीकृष्णविलासात्मजदीनानाथविरचिते सर्वसंग्रहे

मुहूर्ताध्यायः पञ्चमः ॥

अर्थ–संसारके भयको दूर करनेवाले, जो गोलोकमें रहनेवाले, गरुडपर स्थित, कमलके सदृश नेत्रवाले, चन्द्रमाके सदृश मुखवाले प्रसन्न, स्वच्छ प्रभासे युक्त,

कमल शंख गदा चक्रोंको हाथमें धारण किये हुए, बहुत सुखको देनेवाले, व्यासके वंशसे पूजित, सत्य अर्थात् भूत भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें रहनेवाले जो लक्ष्मीपति हैं उनको प्रणाम करता हूं ॥ १४६ ॥

पृथक् पृथक् नवकोष्टेपि ३६९. ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् कर्णेष्वपि ३६९. कठिनमिदं

१५	२६	९२	६	७४	४३	२४	६५	३४
६१	५१	११	७९	४२	२	७०	३३	२०
४७	१६	६०	३८	७७	८	२९	२५	६९
१४	५५	५४	५	७३	४५	२३	६४	३६
६३	५०	१०	८१	४१	१	७२	३२	१९
४६	१८	५९	३७	९	७७	२	२७	६८
१३	५७	५३	४	६९	४८	२२	६६	३९
६२	४९	१२	८०	४०	३	७१	३१	२१
५८	१७	३ ५८	३९ ४	८	७६	३०	२६	६७

पंचदश्यावाङ्कितं ३६९ यंत्रमिदम् .

७

२	११	१६	१५	५६	४	५७	४७	५२	५१	६
	१८	१४	१०	६३	५९	५५	५४	५०	४६	
	१३	१२	१७	५८	५७	६२	४९	४८	५३	
	७४	७९	७८	३८	५ ४३	४२	२	७	६	
९	८१	७७	७३	४५	४१	३७	९	५	१	१
	७६	७५	८०	४०	३९	४४	४	३	८	
	२९	३४	३३	२०	२५	२४	६५	७०	६९	
	३६	३२	२८	२७	२३	१९	७२	६८	६४	
४	३१	३०	३५	२२	३१	२६	६७	६६	७१	८

३

दीनानाथः सच्छेदः २० यंत्रं			एककर्णान्तरं साधनयोग्यं २० यंत्रं			पंचदश्या १५ वेष्टितं २० यंत्रं		
८ ३	२८ ३	२४ ३	८	९	३	२	७	६
३६ ३	२० ३	४ ३	२	७	११	९	१०	१
१६ ३	१२ ३	३२ ३	१०	४	५	४	३	८

पंचदशी द्विद्विवारेण २०यंत्र					
२	७	६	२	७	६
९	५	१	९	५	१
४	३	८	४	३	८
२	७	६	२	७	६
९	५	१	९	५	१
४	३	८	४	३	८

पंचदशी द्विगुणितेन ३० यंत्रं		
४	१४	१२
१८	१०	२
८	६	१६

इति श्रीमिथिलादेशान्तर्गतकनिगामग्रामवास्तव्यबबुएशर्मात्मजस्वर्गीयज्योतिर्विद्भूषणबच्चूशर्मकृतायां सर्वसंग्रहभाषाटीकायां मुहूर्ताध्यायः पञ्चमः ॥ ५ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम प्रेस,
कल्याण–मुंबई

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम प्रेस,
खेतवाडी–मुंबई.

जाहिरात ।

अयोध्याजातक–भाषाटीकासमेत. ....

अर्घप्रकाश–भाषाटीकासमेत। इसमें तेजी मन्दी वस्तु देखनेका विचार भलीभाँति लिखा गया है. ....

आनन्दप्रकाश–भाषाटीकासमेत । यह ग्रन्थ ज्योतिषीयोंको अतीव उपयोगी है । इसमें–रोगकी स्थिति, असाध्यरोग किस प्रकार शान्त होगा तथा रोगमुक्ति, स्नानदानादि कितनेही उत्तम विषय लिखे गये हैं..... ....

आर्यभटीय–(ज्योतिषशास्त्र) संस्कृतटीका भाषाटीकासमेत.... ....

कर्णकुतूहल–सटीक तथा उदाहरणसहित । ब्रह्मपक्षीय गणित ग्रन्थ ....

करणेन्दुशेखर–इसमें रव्यादि ग्रहोंकी सारणी भलीभांति दीगई है । तथा सिद्धान्तोक्त सब विषय संक्षेपसे इसमें आगये हैं. ....

क्रीडाकौशल्य–भाषाटीकासमेत । इसमें–मुहूर्त्त, प्रश्न, मन्त्रयन्त्रादि साधन पाँशे, गँजीफे. ताश, दशावल्लरी; ज्ञानपद, श्मशानदूत, साक्षिक्रीडा, विधिक्रीडा, इष्टदेवतादर्शन, शतरंजके अनेकप्रकारके विचित्र खेल और बालक्रीडा, रसक्रीडा आदिका वर्णन चित्रोंसमेत है ग्लेज कागज....

" तथा रफ कागज ....

केशवीजातक–सान्वय सोदाहरण जगदीशत्रिपाठीकृत भाषाटीकासहित । इस ग्रन्थका गणित जन्मपत्रिका बनानेमें अपूर्व है । ग्लेज ....

" तथा रफ..... ....

केरलीय प्रश्नरत्न- ज्योतिर्वित् पं० नन्दरामजीकृत मूल तथा ज्योतिर्वित् पं०सुन्दरलालकृत भाषाटीकासहित–इसमें मूकप्रश्न; मुष्टिप्रश्न आदि नाना प्रकारके प्रश्न कहनेके लिये बहुतही चमत्कारीक अवश्य फल घटानेवाले उपाय हैं और सरलताके लिये चक्रभी लगे हुएहैं ....

केरलतत्त्वप्रश्नसंग्रह–भाषाटीकासमेत । प्रश्न कहनेमें यह ग्रन्थ तात्कालिकहै

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई